गोमूत्रं द्विगुणं देयं काञ्जिकं च तथैव च ॥ ३ ॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ अक्षभर लेकर कल्क करे। इस कल्क में एक प्रस्थ तिल का तेल डालकर तेल पकावे। पाक के लिये गौमूत्र दो प्रस्थ तथा कांजी दो प्रस्थ डालकर तेल पका लेवे ॥ ३ ॥

पुनर्नवाद्यमेतत्तु बस्तौ पाने तथोत्तमम्।

कट्यूरुपृष्ठमेढ्रेषु कुक्षौ च वृषणाश्रितम्॥

कफवातोद्भवं शूलमन्त्रवृद्धिं विनाशयेत् ॥ ४ ॥

यह पुनर्नवाद्य तेल बस्ति में तथा पीने में उत्तम है। कटि, उरु, पीठ, लिंग, कुक्षि, अण्डकोष इन में होनेवाला कफवात से उत्पन्न हुआ २ शूल इस तेल के सेवन से नष्ट होता है तथा अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ४ ॥ इत्यन्त्रवृद्धिचिकित्सा ॥

अथ वर्ध्मचिकित्सामाह।

अथ बिल्वादिचूर्णम्—मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः

श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम्।

कृष्णाग्रन्थिकवेल्लपञ्चलवणं क्षाराजमोदान्वितं

पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं वर्ध्मजित्१

बिल की जड़, कैथ की जड़, अरलु की जड़, चीतामूल, छोटी कटेली की जड़, बड़ी कटेली की जड़, कालीत्रिवी की जड़, पूतिकरंज की जड़, सुहांजने की जड़, सोंठ, भिलावां, पिप्पली, पिप्पलामूल, वायविडंग, पांचों लवण, यवक्षार, अजमोद इन में से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को कांजी या कोसे जल में मिलाकर अथवा दही के मठे से मिलाकर पिलावें तो वर्ध्मरोग दूर होता है ॥ १ ॥ इति बिल्वादिचूर्णम् ॥

एरण्डतैलादिः—भृष्टश्चैरण्डतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः।

कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वर्ध्मरोगहरः परः ॥ १ ॥

बड़ी हरड़ का चूर्ण एरण्ड के तेल में भून लेवें। फिर पिप्पली तथा सेंधा नमक मिलाकर खावें तो वर्ध्मरोग को नष्ट करने में उत्तम है ॥ १ ॥

अथ श्वदंष्ट्रादिः—श्वदंष्ट्रासिन्धुविश्वाब्ददारुक्रिमिहराश्मभित्।

लोध्रचूर्णं घृतेनाद्याद्वातवर्ध्महरं परम् ॥ २ ॥

गोखरू, सेंधानमक, सोंठ, मोथा, देवदारु, विडंग, पाषाणभेद, लोध इन सब को समभाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को घी से मिलाकर सेवन करें तो वातज वर्ध्मरोग को नष्ट करने में यह चूर्ण श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलं वचा।

ह्रीबेरं मधुकं भार्ङ्गी देवदारु सनागरम् ॥ ३ ॥

सेंधा लवण, मैनफल, कूठ, सौंफ, समुद्रफल, बच, बाल', मुलठ्ठी, भारंगी, देवदार, सोंठ ॥ ३ ॥

कट्फलं पौष्करं मेदा चविका चित्रकं सटी।
विडङ्गातिविषे श्यामा हरेणुर्नीलिनी स्थिरा ॥ ४ ॥

कायफल, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, विडंग, अतीस, काली त्रिवी, रेणुका, नील, शालपर्णी ॥ ४ ॥

बिल्वाजमोदा रास्ना च दन्ती कृष्णा च तैः समैः।
साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुत् ॥ ५ ॥

बिल, अजमोद, रास्ना, दन्ती, पिप्पली, इन में से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर एरण्ड का तेल पकावे। अथवा साधारण तिल का तेल ही पका लेवे। इस प्रकार से सैंधवादि द्रव्यों से पकाये हुए ये दोनों तेल कफ वात को नाश करते हैं ॥ ५ ॥

वर्ध्मोदावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान्।
आनाहमश्मरीं चैव हन्यात्तदनुवासनात् ॥ ६ ॥

वर्ध्मरोग, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, प्लिहा, प्रमेह, आढ्यवात, आनाह तथा अश्मरीरोग ये सभी रोग इस तेल को अनुवासन बस्तिद्वारा देने से अच्छे होते हैं ॥ ६ ॥ इति सैंधवाद्यं तैलम् ॥

अजाजादिलेपः—**अजाजी हपुषा कुष्ठं गोमयं बदरान्वितम्।**
काञ्जिकेन तु संपिष्टं कुर्याद्वर्ध्मप्रलेपनम् ॥ १ ॥

श्वेत जीरा, हाऊबेर, कूठ, गोबर सूखा, बेर इन सब को समभाग लेकर पीस ले। कांजी से मिलाकर इसका वर्ध्म पर लेप करे तो वर्ध्म या बद को आराम होता है ॥ १ ॥

काकमलप्रलेपः—**सद्योमृतस्य काकस्य मलेन परिलेपनम्।**
वर्ध्मरोगः प्रयात्याशु रविणा तिमिरं यथा ॥

तुरन्त ही मरे हुए कौए के मल से वर्ध्म को परिलिप्त करने से वर्ध्म इस प्रकार शीघ्र नष्ट होजाता है जैसे सूरज से अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥

अथ पक्वेक्रिया-**पक्वेऽत्र दारणं कृत्वा प्रकर्तव्या व्रणक्रिया ॥ २ ॥**

जब वर्ध्म या बद पक जावे तो चीर फाड़कर व्रण के समान शोधन रोपण आदि क्रियायें करे ॥ २ ॥ इति वर्ध्मचिकित्सा ॥

अथ कुरण्डचिकित्सा।

यः पित्तदोषेण कुरण्डरोगो भवेच्छिशोर्दक्षिणमुष्कभागे।
तस्योर्ध्वभागं श्रवणस्य विध्येद्वामस्य वामप्रभवेऽपरस्य ॥ १ ॥

जो पित्त के दोष से बच्चे के दाहिने अण्डकोष में कुरण्डरोग अर्थात् अण्ड-

वृद्धि हो जावे तो उसके दायें कान की ऊपर की शिरा बींध देवे। यदि वाम अण्ड कोष में बच्चे को कुरण्डरोग हो जाये तो वाम कान की शिरा बेधन करदे ॥ १ ॥

अथैरण्डतलादियोगः—**एरण्डतैलसंमिश्रं कासीसं सैन्धवं पिबेत्।**
वस्त्रेण वृषणं बद्धं कुरण्डज्वरनाशनम् ॥ १ ॥

एरण्ड के तेल में शुद्ध कसीस और सेंधानमक मिलाकर पीवे। और अण्ड-कोषों को वस्त्र से बांध देवे। तो कुरण्ड ज्वर का नाश होता है ॥ १ ॥

अथेन्द्रवारुण्यादि—**इन्द्रवारुणिकामूलं तैलं पुष्करजं तथा।**
संमर्द्य च सगोदुग्धं पिबेज्जन्तुः कुरण्डजे ॥ १ ॥

इन्द्रायण की जड़, पोहकरमूल का तेल अथवा एरण्ड का तेल और पोहकर मूल का चूर्ण इन सबका एकत्र सम्मर्दन करके गोदूध से मिलाकर पीवे तो कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥ अथ सैन्धवादिलेपः—

संचूर्णितं सैन्धवमाज्ययुक्तं संमर्द्य तोयास्थितमेव सोष्णम्।
महुर्मुहुर्यः कुरुते प्रलेपं विलीयते तस्य कुरण्डरोगः ॥ १ ॥

सेंधानमक का बारीक चूर्ण करे। उसमें गौ का घी मिलावे। उसे पानी में रखकर गरम करे जब पानी गरम होगा तो घी भी गरम हो जायगा। इस गरम गरम घी का ही लेप करदे। इस लेप के बार २ करने से कुरण्ड रोग विलीन हो जाता है ॥१॥ इति सैन्धवादिलेपः।

अथ सैन्धवादिः—**गवां घृतेन संयुक्तं क्षिपेत्सैन्धवचूर्णकम्।**
पिबेत्सप्तदिनं यावत्तावल्लेपः कुरण्डजे ॥ १ ॥

गौ के घी में सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर सात दिन पीवे, और सात दिन ही इसका प्रलेप करे। तो कुरण्डरोग अच्छा होता है ॥ १ ॥

अथ घृपुटलेपः—**तण्डुलवारिविमिश्रं घृतपुरसंज्ञं यदुच्यते लोके।**
तन्मूलपिष्टलेपं कुरण्डगलगण्डयोः कुर्यात् ॥ २ ॥

चावलों के धोवन से (घृतपूर्णः घृतकरंजे) घृतकरंज को जड़ को पीसकर लेप करने से कुरण्ड और गलगण्ड रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

ईश्वरीमूलादि-**ईश्वरीमूलमेरण्डमूलं मूषकचर्म च।**
प्रलेपः स्यात्कुरण्डानां रोगविच्छेदकारकः ॥ ३ ॥

बांझ ककोड़ा की जड़, एरण्ड की जड़, चूहे की खाल इन तीनों को पीसकर प्रलेप करन से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

ब्राह्मणयष्टि मूलप्रलेपः—

सुपेषितं ब्राह्मणयाष्टिकाया मूलं समं तण्डुलधावनेन।
निहन्ति लेपाद्गलगण्डमालां कुरण्डमुख्यानखिलान्विकारान् ॥४॥

भारंगी की जड़ को पीसकर चावलों के धोवन से मिलाकर लेप करें तो गण्डमाला, कुरण्ड आदि सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

अथैन्द्रवारुणीमूलम्—वातारितैलमृदितं सुरवारुणीजं
मूलं नरः पिबति यो मसृणं विचूर्ण्य।
गव्ये निधाय पयसि त्रिदिनावसाने
तस्य प्रणश्यति कुरण्डकृतो विकारः ॥ ५ ॥

एरण्ड के तेल में इन्द्रायण की जड़ को पीसकर यदि गौ के दूध के साथ पीवें तो तीन दिन में उसका कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अथ सिद्धहरीतकी—

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम्।
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानान्निहन्ति कुरण्डमतीव वृद्धम् ॥ ६ ॥

हरड़ों को गोमूत्र में रखकर भावित कर लें। फिर एरण्ड के तेल में डाल कर हरड़ों को भून लेवें। फिर सेंधानमक मिलाकर चूर्ण करलें। इस चूर्ण को कोसे जल से खाने से अत्यन्त बढ़ा हुआ कुरण्डरोग भी नष्ट होजाता है ॥ ६ ॥

शम्बूकयोगः—शम्बूकोदरनिहितं गव्यं सप्ताहमातपे सर्पिः।
स्थितमपहरति कुरण्डं सैन्धवचूर्णान्वितं लेपात् ॥ ७ ॥

शम्बूक अर्थात् घोंघे के पेट में गौ का घी भरकर एक सप्ताह तक धूप में रखें। फिर इस घी में सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर लेप करें तो कुरण्डरोग नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ इति कुरण्डचिकित्सा ॥

अथ पथ्यापथ्यम्।

संशोधनं बस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ १ ॥

संशोधन कर्म, बस्तिकर्म, रक्त निकलवाना, स्वेद देना, प्रलेप लगाना, लाल शाली, एरण्ड का तेल, गौ का मूत्र, धन्व जीवों का मांस, सुहांजने की फली, परवल ॥ १ ॥

पुनर्नवागोक्षुरकाग्निमन्थं ताम्बूलपथ्यारसनारसोनम्।
वान्त्यङ्गनागृञ्जनकं मधूनि कौम्भं घृतं तप्तजलं च तक्रम् ॥ २ ॥

पुनर्नवा, गोखरू, अरणी, पान खाना, हरड़, रास्ना, लशुन, वमन कराना प्रियंगु, गाजर, शहद, सौ वर्ष का पुराना घृत, गरम जल, तक्र पीना ॥ २ ॥

अर्धेन्दुवद्वङ्क्षणयोश्च दाहो व्यत्यासतो बाहुशिराव्यधश्च।
यथामयं शस्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्वर्ध्मवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥३॥

अर्धचन्द्राकार दाह वंक्षणसंधियों में देना, बाहु की शिराओं को व्यत्यसभाव से बींधना अर्थात् वाम ओर रोग हो तो दायीं बांह की शिरा बींधना, दहनी ओर हो तो बांयी बांह की शिरा को बींधना। रोगानुसार शस्त्रचिकित्सा तथा रोगनाशक पदार्थों का सेवन करना ये सभी उपाय वर्ध्म तथा वृद्धि रोग वालों के लिये हितकारी है ॥ ३ ॥

आनूपमांसानि दधीनि माषाः पिष्टानि दुष्टान्नमुपोदिका च ।
गुरूणि शुक्रोत्थितवेगरोधाः स्युर्वर्ध्मवृद्ध्यामयिनाममित्राः ॥४॥

परन्तु आनूपमांस, दही, उड़द, पीठी, दुष्टअन्न, बड़ी पोई का शाक, गुरु पदार्थ, वीर्य के उठे हुए वेग को रोकना, ये सभी बातें वर्ध्म तथा वृद्धि रोगियों के लिये अहित हैं ॥ ४ ॥

अथ वृन्दात्—वेगाहतिं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं तथा ।
अत्यशनमथाध्वानमुपवासं परित्यजेत् ॥ १ ॥

वेगों को रोकना, पीठ पर चढ़ना, व्यायाम तथा मैथुन करना, अत्यन्त भोजन करना, मार्ग चलना, तथा उपवास करना ये सभी बातें त्याग देवे ॥ १ ॥

इति मुष्कान्त्रवृद्धिवर्ध्मकुरण्डचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्यरत्नगर्भानाम्निटीकायां मुष्कान्त्रवृद्धिवर्ध्मकुरण्डरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदनिदानमाह ।

अथ गलगण्डादिनिदानमाह—निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले ।
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥१॥

जिसके गले में सूजन होकर अण्डकोष के समान लटकती हो, वह सूजन अधिक हो वा कम हो, उसे गलगण्ड कहते हैं ॥ १ ॥

यथोक्तं भोजेनापि—महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम् ।
लम्बन्तं मुष्कवद् दृष्ट्वा गलगण्डं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

हनु, मन्या तथा गले में आश्रित होकर अण्डकोष के समान लटकती हुई थोड़ी वा बड़ी सूजन को गलगण्ड कहते हैं ॥ १ ॥

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये तु संश्रित्य तथैव मेदः ।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥२॥

गले में वात, कफ प्रदुष्ट होकर अथवा मेद प्रदुष्ट होकर मन्याओं को आश्रय करके गण्ड को उत्पन्न कर देता है। उसे क्रमशः वातगण्ड, कफगण्ड, मेदगण्ड कहते हैं। इनको अपने २ लक्षणों से पहचाना जाता है ॥ २ ॥

अथ तत्र वातिकमाह—

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु ।
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥३॥

वातिक गलगण्ड में तोद होता है, वह काली नसों से घिरा हुआ होता है,

सांवला या लालरंग का होता है, कठोर होता है, देर में बढ़ता है तथा पकता नहीं, और कभी स्वयं ही पक भी जाता है ॥ ३ ॥

वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥

ऐसे रोगी के मुंह का स्वाद विरस होता है, उसके तालु तथा गला सूखे रहते हैं॥

अथ श्लैष्मिकमाह—

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥४॥

कफज गलगण्ड स्थिर होता है, सवर्ण अर्थात् शरीर के रंग जैसा रंगदार होता है। भारी होता है, तथा उसमें खुजली बहुत होती है । शीत होता है, बड़ा होता है ॥ ४ ॥

चिराभिवृद्धिं भजतेऽचिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ।
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

बहुत देर में बढ़ता है, अथवा शीघ्र ही कभी पक जाता है, मन्द २ पीड़ा भी उस में होती है। ऐसे रोगी के मुंह का स्वाद मीठा होता है तथा तालु और गला प्रलिप्त अर्थात् कफ से भरा हुआ सा रहता है ॥ ५ ॥

अथ मेदोजमाह—

स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवः कण्डुयुतोऽल्परुक्च ।
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥

मेद से हुआ २ गलगण्ड स्निग्ध होता है, भारी होता है, श्वेत रंग का होता है तथा अनिष्ट गंधवाला होता है। उस में खुजली होती है तथा थोड़ी पीड़ा भी होती रहती है । वह तुंबी के समान गले में लटकता है। और वह जड़ के पास से पतला होता है । मनुष्य की देह के बढ़ने से यह बड़ा हो जाता है, और देह के क्षीण होने से यह गण्ड भी क्षीण होता जाता है ॥ ६ ॥

स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुतेऽतिमात्रम् ॥

ऐसे रोगी के मुंह में चिकनाहट रहती है तथा गले में अत्यन्त अनुशब्द होता है अर्थात् जो कुछ वह शब्द बोलता है गले में भी उसी का अनुकरण होता है ॥

अथासाध्यत्वमाह—

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ।
क्षीणं च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेद्धि ॥७॥

जो गलगण्ड का रोगी कष्ट से सांस लेता हो, सारे अंग जिस के कोमल हो, एक साल रोग हुए २ हो गया हो, अरुचि हो, तथा रोगी क्षीण हो और यदि स्वर भी टूटता हुआ निकलता हो तो ऐसा गलगण्डरोगी असाध्य होता है॥७॥

अथ स्थानतुल्यतया गण्डमालामिहैवाऽऽह—

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवङ्क्षणेषु ।
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः ॥१॥

छोटा जंगली बेर (जिसे गीदड़बेर भी कहते हैं), बड़ा बेर, आंवला इन के बराबर कक्षा में, कंधे में, मन्या में, गले में, वंक्षण में बहुत सी गिल्टियें या गण्ड होकर गण्डमाला हो जाता है। यह गिल्टियें मेद तथा कफ से होती हैं तथा देर में मन्द २ पकती रहती है ॥ १ ॥

यदाह भोजः—**वातापित्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समन्वितम् ।**
जङ्घयोः कण्डरां प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान्बहून् ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ, मेद ये सभी बढ़े हुए जंघा की कन्डराओं को प्राप्त होकर मछली के (मच्छ के) अण्डे के समान बहुत सी गांठों या गिल्टियों को कर देते हैं ॥ १ ॥

कुर्वन्ति ग्रन्थींस्तांस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः ।
तान्दोषानूर्ध्वगो वक्षःकक्षामन्यागलाश्रितः ॥ २ ॥

उन से फिर प्रकुपित हुई २ ऊपर जानेवाली वात, उन दोषों को नाना प्रकार के कर के वक्ष, कक्षा, मन्या और गले में आश्रय कर के ठहरती है ॥२॥

नानाप्रकारान्कुरुते ग्रन्थीन्सा त्वपची इव ।
अपची कण्ठमन्यासु कक्षावङ्क्षणसंधिषु ॥
गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥ ३ ॥

और नाना प्रकार की गांठों को कर देती है, वह गांठें अपची के समान होती है। अपची कण्ठ तथा मन्याओं में तथा कक्षा और वंक्षण संधियों में होती है। गण्डमाला अपची के तुल्य लक्षणोंवाली होती है ॥ ३ ॥

अथ गण्डमालातुल्यतयाऽपचीमाह—

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ।
कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १ ॥

उन ग्रन्थियों में से कुछ पक जाती हैं और बहती हैं और नष्ट हो जाती हैं, कुछ अन्य होती जाती है। तथा अति काल तक रहती है। बहुत से वैद्य इन गण्डमाला की ग्रन्थियों को ही अपची कहते हैं। (चरक मे यह ग्रन्थियें गण्ड-माला में पढ़ी हैं परन्तु संग्रहकार नें इन्हें अपची में पढ़ा है) ॥ १ ॥

तस्याः साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ॥

ये ग्रन्थियें साध्य होती हैं । परन्तु पीनस, पार्श्वशूल, कास, ज्वर तथा वमन से युक्त ये ग्रन्थियें असाध्य होती हैं ॥

अथापचीरूपगुणतया ग्रन्थिकानाह—

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥१॥

वात पित्त कफ प्रदुष्ट होकर अर्थात् बढ़कर मांस, रक्त, मेद तथा शिराओं को प्रदुष्ट करके गोल, उठी हुई, गांठदार शोथ को कर देते हैं इसी गांठदार सूजन को ग्रन्थि कहते हैं ॥ १ ॥

अथ वातिकमाह—

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाऽऽततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥२॥

वातिक ग्रन्थि में ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई खींचकर लम्बा कर रहा हो, कोई काट रहा हो, पीड़ा कर रहा हो, कोई फैंक रहा हा, मथ रहा हो और फाड़ रहा हो । तथा काले रंग की कोमल बस्ति के समान यह ग्रन्थि फैली हुई होती है । जब फूट जाती है तो स्फटिक के समान स्वच्छ स्राव इनमेंसे निकलता है२

अथ पैत्तिकमाह—

दंदह्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ।
रक्तः स पीतोऽप्यथ वाऽपि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्टमतीव चास्रम् ३॥

पैत्तिक ग्रन्थि में अत्यन्त दाह होता है, धुंआ सा उठता है, मानों कोई (सींगादि से) चूस रहा हो, मानों गांठ (क्षार से) पक रही हो, मानों आग से भस्म हो रही हो। इसके फूट जाने पर लाल या पीले रंग का अत्यन्त दुष्ट स्राव निकलता है ॥ ३ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह—

शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिपाण्डुः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ।
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

कफजग्रंथि स्पर्श में शीतल होती है, और स्वाभाविक कफ के वर्ण की होती है । अथवा थोड़ी विवर्ण होती है (विवर्ण अथवा अविवरण इति पाठद्वयमुपलभ्यते) उसमें थोड़ी २ पीड़ा होती है, अति श्वेत वर्ण की होती है, पत्थर के समान कठोर होती है । देर में बढ़ती है, जब फूटती है तो श्वेतरंग का गाढा पीप निकलता है ॥ ४ ॥

अथ मेदोजमाह—

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कंडुयुतोऽल्परुक्च ।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं च मेदः ॥ ५ ॥

मेदोजग्रन्थि शरीर की वृद्धि केसाथ बढती है, शरीर की हानि के साथ क्षीण होती है । स्निग्ध होती है, अत्यन्त खुजली युक्त होती है तथा थोड़ी पीड़ा युक्त होती है । इसके फूटने पर तिलों के कल्क के समान अथवा घी के समान मेद

निकलता है ॥ ५ ॥

उक्तं च भोजेन—**मेदो वायुर्यदा मांसे निक्षिपेदथवा त्वचि ।**
तत्र मेदोभवो ग्रन्थिः श्यावो भवति पाण्डुरः ॥ १ ॥

जब वायु मांस में अथवा त्वचा में मेद को ला फेंकती है । तब मेदोजग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। वह ग्रन्थि श्याव रंग की अर्थात् सांवली अथवा पाण्डुवर्ण की अर्थात् श्वेत रंग की होती है ॥ १ ॥

कृशः कृशे महान्स्थूले ग्रन्थिश्छिन्नश्च पीडितः ।
तिलकल्कनिभः स्रावो घृतवच्चास्य जायते ॥ २ ॥

रोगी के कृश होने पर वह ग्रन्थि कृश हो जाती है, रोगी के स्थूल हो जाने पर वह ग्रन्थि स्थूल हो जाती है । पीड़ित करने और फूटने पर उस में से तिल के कल्क के समान या घी के समान स्राव निकलता है ॥ २ ॥

अथ शिराजग्रन्थेः संप्राप्तिमाह—

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ।
संकुच्य संपीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥
ग्रन्थिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥१॥

बलवान पुरुष से युद्ध आदि व्यायाम के करने से निर्बल मनुष्य के शिराजालों को वायु संकुचित करके, संपीडित करके तथा विशोषण करके उन्नत, गोल ग्रन्थि को शीघ्र ही उत्पन्न कर देता है । वह शिराज ग्रन्थि यदि पीड़ा करती हो तथा चलायमान हो तो कष्ट साध्य होती है ॥ १ ॥

अथ तस्यासाध्यत्वमाह—

स चारुजश्चाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥१॥

वह शिराज ग्रन्थि यदि पीड़ा रहित हो, चलायमान न हो, महान हो अथवा मर्म स्थान में वा हड्डी में उत्पन्न ("मर्मोत्थितश्चापि" यह पाठ भी है) हो तो असाध्य होती है ॥ १ ॥

उक्तं भोजेन—**पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन्मर्मजानचलांस्त्यजेत् ।**
कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्याश्च संधिषु ॥ १ ॥

इन पांचों ग्रन्थियों को तथा अचल मर्मस्थानीय ग्रन्थि को यदि ये पीड़ा रहित हों तथा अचल हों तो असाध्य समझकर त्याग देवें । तथा कपोल, गले, मन्या और संधिस्थानों में हुई २ ग्रन्थियों को कष्टसाध्य समझना चाहिये ॥१॥

अथार्बुदान्याह—तस्य संप्राप्तिमाह—

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ १ ॥

गात्र के किसी प्रदेश में भी वातादि दोष संमूर्च्छित होकर अर्थात् बढ़कर वा दूष्यों के साथ मिलकर मांस तथा रक्त को दूषित कर के गोल, कोमल, मन्द २ पीड़ा वाले, बहुत बड़े तथा बड़ी जड़वाले देर में बढ़नेवाले और देर में पकने वाले, अति दूर तक प्रविष्ट हुए २ अर्थात गहरे मांस की उन्नति या ऊंचाई को करते हैं उसे ही शास्त्रवेत्ता लोग अर्बुद कहते हैं ॥ १ ॥

अथ तस्य संख्यामाह—

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च।
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २ ॥

वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस और मेद इन से छह प्रकार के अर्बुद होते हैं। वातजार्बुद, पित्तज अर्बुद, कफज अर्बुद, रक्तजार्बुद, मांसजर्बुद तथा मेदोज अर्बुद ये छह अर्बुद है। इन के लक्षण ग्रन्थि के समान होते हैं ॥ २ ॥

अथ रक्तार्बुदमाह—

दोषाः प्रदुष्टाः रुधिरं शिराश्च संकुच्य संपीड्य गतास्त्वपाकम्।
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धिम् ॥ ३ ॥

(वात पित्तकफमेद की ग्रन्थियों के समान ही इन २ अर्बुदों के लक्षण हैं) प्रदुष्ट हुए २ दोष रुधिर और शिराओं को संकुचित तथा संपीडित कर के (अपाकंगताः) कुछ २ पक कर के स्रावसहित मांसपिण्ड को ऊंचा कर देते हैं। तथा वह मांसपिंड मांस के अंकुरों से व्याप्त तथा शीघ्र ही बढ़नेवाला होता है ॥ ३ ॥

कुर्वन्त्यजस्रं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु।
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ ४ ॥

तथा उस में से निरन्तर रुधिर निकलता रहता है (यह रुधिर शिराओं में से आता है, पककर नहीं आता) ऐसा रुधिरवाला अर्बुद असाध्य होता है। ऐसे अर्बुद से पीड़ित रोगी रक्तक्षय होने वाले उवद्रवों से पीड़ित होने के कारण पाण्डु अर्थात् श्वेत रंग के हो जाते हैं ॥ ४ ॥

मांसजस्य संप्राप्तिमाह—

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेत्तु शोथम्।
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ १ ॥

मुक्का मारने आदि प्रहारों से अङ्गों के पीड़ित होने पर प्रदुष्ट हुआ २ मांस, शोथ को उत्पन्न कर देता है। इस शोथ में पीड़ा नहीं होती, वह स्निग्ध होता है, मांस के सदृश ही इस का रंग होता है, यह पकता नहीं, पत्थर के समान कठोर होता है, हिलता डुलता नहीं प्रत्युत् स्थिर रहता है। जो मनुष्य अधिक मांस खाते हैं

उन का मांस दूषित होने से ही यह प्रायः हो जाता है। (रक्तजअर्बुद में पित्त भी आरंभक होता है, मांसजअर्बुद में वायु भी आरंभक होता है) ॥ १ ॥

अथास्यासाध्यत्वमाह—

मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ॥
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ २ ॥

यह मांसार्बुद असाध्य है, साध्यअर्बुदों में भी आगे लिखे अर्बुद असाध्य होते हैं। जो अर्बुद बह रहा हो, जो मर्म में उत्पन्न हुआ २ हो, अथवा जो नासिकादि स्रोतों में उत्पन्न हुआ २ हो तथा जो स्थिर हो ॥ २ ॥

अध्यर्बुदलक्षणमाह—

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः।
यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ३ ॥

जो अर्बुद पहले हुए २ अर्बुद पर उत्पन्न हो गया हो उसे अध्यर्बुद कहते हैं। जो एक साथ ही दो अर्बुद हो गये हों अथवा क्रमशः दो अर्बुद हुए हों तो ये भी असाध्य होते हैं ॥ ३ ॥

उक्तं भोजेन—**अर्बुदे त्वर्बुदं जातं द्वंद्वजं चानुजं च यत्।**
द्विरर्बुदमिति ज्ञेयं तच्चासाध्यं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

एक अर्बुद पर दूसरा अर्बुद एक साथ हुआ हो, अथवा एक के पीछे दूसरा अर्बुद एकत्र हुए हों तो इन्हें द्विरर्बुद कहते हैं और यह असाध्य होते हैं ॥१॥

अर्बुदानां पाकाभावे हेतुमाह—

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु।
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ १ ॥

सभी प्रकार के अर्बुद पकते नहीं। क्योंकि इनमें कफ अधिक होता है तथा मेद बहुत होती है। विशेष करके दोष स्थिर होकर रहते हैं (अपची के समान कम अधिक नहीं होते) तथा इसमें दोष प्रथित होते हैं। तथा स्वभाव से भी अर्बुद पकता नहीं है ॥१॥ इति गलगण्डादिनिदानम्।

अथ गलगण्डचिकित्सा।

स्वेदोऽनिलोत्थे गलगण्ड आदौ नाड्यानिलघ्नौषधपत्रपिण्डैः।
स्वेदोपनाहौ कफसंभवेऽपि कृत्वा क्रमं श्लेष्महरं विदध्यात् ॥१॥

वातज गलगण्ड में पहले नाड़ी स्वेद देवे। वातघ्न औषधों, वातघ्न पत्तों तथा वातघ्न बालुकापिण्डादि से स्वेदन देवे। तथा कफ से हुए २ गलगण्ड में भी स्वेद तथा उपनाह देवे फिर कफनाशक क्रम करे ॥ १ ॥

अथ वातगण्डे—**निचुलं शिग्रुमूलानि दशमूलमथापि च।**
आलेपनं वातगण्डे सुखोष्णं संप्रशस्यते ॥ १ ॥

समुद्रफल, सुहांजने की जड़ और दशमूल के द्रव्य इन सबको पीसकर जल से कल्क करके कोसा २ लेप करे तो वातगण्ड में लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ कफगण्डे—**देवदारु विशालां च कफगण्डे प्रलेपनम्।**
छर्दनं शीर्षरेकश्च सर्वो रेचनिको हितः ॥ १ ॥

देवदारु तथा इन्द्रायण की जड़ इन दोनों को पीसकर कफज गण्ड पर लेपन करदे। वमन करावे, सिर को विरेचन करने वाले पदार्थों की नस्य लेवे, तथा सभी प्रकार की रेचन कराने वाली औषधें सेवन करावे इससे कफज गलगण्ड अच्छा होता है ॥ १ ॥

अथ मेदोगण्डे—

मेदःसमुत्थेऽत्र यथोपदिष्टां विध्येच्छिरां स्निग्धतनोर्नरस्य।
श्यामासुधालोहपुरीषदन्तीरसाञ्जनैश्चापि हितः प्रलेपः ॥१॥

मेदोज गलगण्ड में रोगी का शरीर पहले स्निग्ध कर लेवे फिर जैसी विधि पूर्व कही है वैसी ही विधि से उचित शिरा को बीधे। तथा श्यामत्रिवी या श्यामालता, चूना, लोहे का मैल या मण्डूर, दन्तीमूल, रसौंत इन सबको समभाग लेकर पीसकर लेप करे ॥ १ ॥

अथ सामान्ययोगः—**तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः।**
हितः कर्णे पलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ १ ॥

ढाक की जड़ को चावलों के धोये हुए जल से पीसकर कान पर प्रलेप लगाने से गलगण्ड प्रशान्त होता है ॥ १ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्त्वा गोमूत्रगालितम्।
पिबेत्कोद्रवतक्राशी गलगण्डनिवृत्तये ॥ २ ॥

जलकुम्भी की भस्म गोमूत्र में डालकर पकाकर पीवे। इसके साथ कोदों तथा तक्र का भोजन करे तो गलगण्ड दूर होता है ॥ २ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं संस्थितं घटे मासम्।
अन्तर्धूमविदग्धं मधुना गलगण्डनाशनं लीढम् ॥ ३ ॥

भैंस के मूत्र में लोहे की मैल अर्थात् मण्डूर को डालकर एक मास तक घड़े में पड़ा रहने देवे। इसे फिर अन्तर्धूम भस्म कर लेवे। इस भस्म को शहद से मिलाकर चाटे तो गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

सूर्यावर्तरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहनम्।
स्फोटास्रावैः शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥ ४ ॥

सूर्यावत या हुलहुल और लहसुन इन दोनों को समभाग लेकर पीस लेवे। इस से गलगण्ड पर उपनाह या पुल्टिश बांधे तो फूटकर और सब स्राव बाहिर निकल कर गलगण्ड शान्त होता है इस में कोई सन्देह नहीं ॥ ४ ॥

सर्षपाः शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवाः।

मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ५ ॥

सरसों, सुहांजने के बीज, सन के बीज, अलसी, जौ, मूली के बीज इन सब को मिलाकर खट्टी तक्र अर्थात् छाछ से पीस लेवे ॥ ५ ॥

गण्डानि ग्रन्थयश्चैव गण्डमालास्तथैव च।
लेपनात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति वाऽचिरात् ॥ ६ ॥

इस के लेप करने से गण्ड, ग्रन्थियें, गण्डमाला शीघ्र ही शान्त होजाती है और नष्ट होजाती है ॥ ६ ॥

अथ नस्यम्—जीर्णकर्कारुकरसो बिडसैन्धवसंयुतः।
नस्येन तरुणं हन्ति गलगण्डं न संशयः ॥ ७ ॥

पुराने पेठे का रस विड्लवण और सेंधालवण से मिलाकर नस्स देने से तरुण गलगण्ड को निस्सन्देह नष्ट करता है ॥ ७ ॥

अथ श्वेतापराजिता प्रयोगः—श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः।
सर्पिषा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥८॥

श्वेत अपराजिता या विष्णुक्रान्ता की जड़ पीसकर घी में मिलाकर प्रातःकाल पीवे तो गलगण्ड दूर होता है। पथ्य सेवन करना आवश्यक है ॥ ८ ॥

अथ जलपानविधिः—तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम्।
गलगण्डं निहन्त्याशु पानात्पथ्यानुशीलिनः ॥ ९ ॥

पके हुए कड़वी तुम्बी के फल में से गूदा निकाल कर उस में जल भरदे। इस जल को एक सप्ताह फल में भरा रहने दे। इस जल को पीने से और पथ्य सेवन करने से गलगण्ड शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥

अथामृतादितैलम्—

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिहिङ्गुनिम्बाभयावृक्षकपिप्पलीभिः।
सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगे ॥१॥

गिलोय, हींग, नीम की छाल, हरड़, कुड़े की छाल, पिप्पली, बला, अतिबला, देवदारु इन सब को समभाग लेकर कल्क करे इस से चौगुना तिल का तेल डाले और तेल से चौगुना पानी डालकर पका लेवे। तेलमात्र शेष रहे तो छानकर रखे। इस के लगाने से गलगण्डरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ तुम्बीतैलम्—विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः।
कटुतुम्बीफलरसैः कटुतैलं विपाचितम्।
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ १ ॥

वायविडंग, यवक्षार, सेंधानमक, बच, रास्ना, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, देवदारु इन सब को समभाग लें। इन के कल्क से चौगुना सरसों का तेल लें

और तेल से चौगुना कड़वी तुम्बी के फलों का रस लें। इनको एकत्र पाक करे। तेलमात्र रहे तो छानकर रखे। इस की नस्य लेने से पुराना गलगण्ड भी नष्ट हो जाता है॥ १॥

अथ वेधविधिः—जिह्वाधः पार्श्वयोर्मूलाच्छिरा द्वादश कीर्तिताः।
तासां स्थूले शिरे द्वे च छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः॥१॥

जीभ के नीचे दोनों ओर बारह शिरायें हैं। उन में से दो शिरायें स्थूल हैं उन को शनैः २ छेदे॥ १॥

बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान्।
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम्॥ २॥

बडिशयंत्र से पकड़ कर कुशपत्र यंत्र से छेदे। रक्त निकलजाने पर उस व्रण में गुड और अदरक का रस मिलाकर लगावे॥ २॥

भोजनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते।
यवमुद्गपटोलादि कटु रूक्षं तु भोजनम्।
छर्दिं च रक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत्॥ ३॥

जो भोजन अभिष्यन्दी न हो वह देवे तथा कुलथी का यूष देवे। जौ, मूंग, परवल आदि कटुरस वाले तथा रूखे भोजन देवे। गलगण्ड में वमन तथा रक्तमोक्षण कराता रहे॥ ३॥ इति गलगण्डचिकित्सा॥

अथ गण्डमालापचीचिकित्सा।

ब्रह्मदण्डीयमूलं तु पिष्टं तण्डुलवारिणा।
स्फुटितां हन्ति लेपेन गण्डमालां न संशयः॥ १॥

ब्रह्मदण्डी की जड़ को चावलों के जल से पीसकर फूटी हुई गण्डमाला पर लेप करनें से गण्डमाला के व्रण नष्ट होते हैं तथा गण्डमाला भी निस्सन्देह नष्ट हो जाती है॥ १॥

अथ मुण्डीप्रलेपः—निजद्रवेण संपिष्टं मुण्डीमूलं प्रलेपयेत्।
गण्डामाला क्षयं याति तद्द्रवं च पिबेत्पलम्॥ २॥

मुण्डी बूटी की जड़ को मुण्डी के स्वरस में पीसकर गण्डमाला पर लेप करे। और मुण्डी के स्वरस को एक पल भर पीवे तो गण्डमाला नष्ट हो जाती है॥२॥

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत्।
गण्डमालां तथा क्वाथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः॥ ३॥

कचनार की छाल का क्वाथ करके सोंठ का चूर्ण मिलाकर पिलावे। अथवा वरुण की छाल का क्वाथ शहद मिलाकर पिलानेसे भी गण्डमाला नष्ट हो जाती है३

अथ लेपः—जलेन पेषयेत्तुल्यं काञ्चनी चित्रकं विषम्।
सप्ताहं लेपयेद्यस्य यदि स्याद्गण्डमालिका॥

स्फुटन्ती नात्र संदेहः स्फोटे लेपमिमं कुरु ॥ ४ ॥

कचनार की छाल, चीता, शोधित विष इनको समभाग लेकर जल से पीस लेवे फिर इसको एक सप्ताह तक गण्डमाला पर लेप करे॥ इस लेप से गण्डमाला की गांठें फूट जाती हैं। फूट जाने पर आगे लिखा हुआ लेप करे ॥ ४ ॥

आरग्वधशिफां पिष्ट्वा सम्यक्तण्डुलवारिणा।
तस्य नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥ ५ ॥

अम्लतास की जड़ को चावलों के जल से अच्छी प्रकार पीसकर नस्य देवे और इसी का प्रलेप करे। इससे गण्डमाला भली प्रकार नष्ट होती है ॥ ५ ॥

अथ त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः—षट्पलं त्रिकटु ज्ञेयं त्रिफलाऽत्र पलद्वयम्।
काञ्चनारत्वचाचूर्णं योजयेद्द्वादशं पलम् ॥१॥

सोंठ दो पल, मिरच का चूर्ण दो पल, पीपल का चूर्ण दो पल ले। हरड़ बहेड़ा, आंवला तीनों के चूर्णों को समभाग लेकर मिलित दो पल लेवे। कचनार की छाल का चूर्ण १२ पल लेवे ॥ १ ॥

गुग्गुलुः सर्वतुल्यः स्यात्सर्वमेकत्र कुट्टयेत्।
क्षौद्रं पलशतं देयं गुटिकां कर्षसंमिताम्।
भक्षयेद्गण्डमालार्तो गलग्रन्थिं च नाशयेत् ॥ २ ॥

शुद्ध गूगल सारे चूर्णों के समान भाग लेवे। इन सबको एकत्र करके कूट लेवे। शहद एक सौ पल देवे। सबको एकत्र करके एक कर्ष के समान गोली बनावे। इसे गण्डमाला रोगी खावे तो गण्डमाला और गले की गांठें नष्ट होती हैं ॥२॥

अथ काञ्चनारगुग्गुलुः—पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारत्वचो बुधैः।
षट्पला त्रिफला ग्राह्या व्योषं ग्राह्यं पलत्रयम्॥१॥

कांचनार की छाल दस पल लें, त्रिफला का समभाग चूर्ण कर मिलित छः पल लें। सोंठ, मिरच, पीपल को समभाग लेकर चूर्ण करके तीन पल लेवें ॥१॥

पलैकं वरुणस्यापि त्वगेलापत्रकं तथा।
कर्षकर्षमितं ग्राह्यं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥

बरणे की छाल एक पल लें। दारचीनी, इलायची, तेजपात इन में से प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष लेवें। इन सबको एकत्र मिलाकर चूर्ण कर ले ॥२॥

सर्वं चूर्णमिदं यावत्तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः।
संमर्द्य गुटिकाः कार्याः शाणमात्रास्ततो बुधैः ॥ ३ ॥

जितना सारा चूर्ण मिल करके हो उतना ही शुद्ध गूगल मिलावे। सबको कूट पीसकर एक शाण भर की गोलियें बना लेवें ॥ ३ ॥

एकैकां भक्षयेत्प्रातर्बुद्धिमांश्च सदा नरः।
गण्डमालां जयेदुग्रामपचीमर्बुदानि च ॥ ४ ॥

प्रातःकाल एक २ गोली खिलाते रहें। इसके सदा खाते रहने से उग्र गण्ड-माला, अपची, अर्बुद ॥ ४ ॥

ग्रन्थीन्नृणां सगुल्मांश्च कुष्ठानि च भगंदरम्।
अनुपाने प्रयोक्तव्यः क्वाथो मुण्डीसमुद्भवः।
क्वाथो वा खदिरस्यापि पथ्याक्वाथोऽथ चाल्पकः ॥ ५ ॥

अन्यान्य सभी ग्रन्थियां, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर ये सब रोग नष्ट होते हैं। परन्तु अनुपान में मुण्डी का क्वाथ पिलावें या खैर का क्वाथ पिलावें। अथवा थोड़ा सा हरड़ का क्वाथ पिलावें ॥ ५ ॥

अथाजमोदादितैलम्—अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्वयम्।
क्षारद्वयं फेनयुतं सार्धकं सरलोद्भवम् ॥ १ ॥

अजमोद, सिन्दूर, हड़ताल, हल्दी, दारुहल्दी, यवक्षार, सज्जीक्षार, समुद्रफेन श्रीवेष्टक ॥ १ ॥

इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलीकन्दकैः समैः।
एभिः सार्षपकं तैलमजामूत्राष्टयोजितम् ॥ २ ॥
मृद्वग्नौ पाचयेद्तत्स्नुह्यर्कक्षीरसंयुतम्।
अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥ ३ ॥

इन्द्रायण, अपामार्ग, केले की जड़ इन सबको समभाग लेकर कल्क करे। इससे चौगुना सरसों का तेल लें। और तेल से आठगुणा बकरी का मूत्र लेवें। इन सब को मन्द २ अग्नि पर पकावें। इसमें थोहर तथा आक का दूध भी कल्क द्रव्यों में डालें। तथा मन्द २ अग्नि पर तेल पका लें। तेल मात्र शेष रहने पर उतार कर छान लें। इस तेल के लगाने से गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

आमां विदग्ध्वा तु पचेत्पक्वां चैव विशोधयेत्।
रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥ ४ ॥

कच्ची गण्डमाला को विदग्ध करके पहले पकावे। पकने के बाद फाड़कर विशोधन करे। फिर इस तेल से व्रणरोपन तथा मृदुभाव करे ॥ ४ ॥

अथ निर्गुण्डीतैलम्—निर्गुण्डीस्वरसेनाथ लांगलीमूलकल्कितम्।
तैलं नस्येन हन्त्याशु गण्डमालां सुदुस्तराम् ॥ १ ॥

लांगली विष की जड़ का कल्क करे, इस कल्क से चौगुना सरसों का तेल ले। और तेल से चौगुना निर्गुण्डी के पत्तों का स्वरस डाले। इसको पकाकर तेल मात्र शेष रखे। इस तेल की नस्य लेने से भयंकर गण्डमाला भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अथ छुच्छुन्दरीतैलम्—छुच्छुन्दर्या विपक्वं तु क्षणात्तैलवरं ध्रुवम्।
अभ्यङ्गान्नाशयेन्नृणां गण्डमालां सुदारुणम् ॥ १ ॥

छुछुन्दर का मांस एक पाव, सरसों का तेल एक सेर, पाकार्थ जल ४ सेर, इनको एकत्र पाक करे। जब मांस गलकर तेल पाक ठीक हो जाये तो छान लेवे इस तेल की मालिश से भयंकर गण्डमाला भी नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अथ गुञ्जातैलम्—गुञ्जामूलफलैस्तैलं तोयद्विगुणितं पचेत्।
तस्याभ्यङ्गेन शमयेद्गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ १ ॥

गुञ्जा अर्थात् रतियों की बेल की जड़ और रतियां दोनों को समभाग लेकर कल्क करे। इस कल्क से चौगुना सरसों का तेल और तेल से दुगुना पानी मिलाकर एकत्र पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर उतार लेवे। इस तेल की मालिश से भयंकर गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अथ गन्धकादियोगः—गन्धकं टङ्कणं सिन्धुकाञ्चनीनवसारकम्।
सौवर्चलं यवक्षारं काचं रक्तं सुवर्चलम् ॥ १ ॥

गन्धक, सुहागा, सेंधा नमक, कचनार, नौसादर, सौंचलनमक, जौखार, काचलवण, सिन्दूर, सोंचललवण ॥ १ ॥

सितं रक्तं च पाषाणं मूषकोत्थं नियोजयेत्।
जेपालबीजमज्जा च सर्वं जम्बीरपीडितम् ॥ २ ॥

श्वेत संखिया, लाल संखिया, जमालगोटे के बीज की गिरी, इन सबको समभाग पीसकर जम्बीरी नीबू के रस में घोटे ॥ २ ॥

शस्त्रैश्छित्त्वा प्रदातव्यं वेष्ट्यमेरण्डपत्रकैः।
एवं त्र्यहात्स्फुटन्त्यत्र दध्यन्नं बन्धयेत्ततः ॥ ३ ॥

फिर गण्डमाला को शस्त्र से काटकर इन द्रव्यों का प्रलेप करदें और एरण्ड के पत्तों से लपेट कर बांध देवें। इस प्रकार से तीन दिन करने से गण्डमाला फूट जाती है। फूटने पर दही और अन्न मिलाकर बांध देवे ॥ ३ ॥

गण्डमालाग्रन्थ्यपच्यो बहिर्नियान्ति नान्यथा।
अभिमन्त्र्य सितं सायं रवौ प्रातः समाहरेत् ॥ ४ ॥

इस प्रकार से करने पर गण्डमाला, ग्रन्थियें और अपची सब निस्सन्देह बाहर निकल आते हैं। शनिवार की सायंकाल श्वेत पेटारी की जड़ को अभिमन्त्रित करके प्रातःकाल रविवार के दिन उसे उखाड़ लावे ॥ ४ ॥

पेटारीमूलकं धूपैर्धूपयित्वाऽथ खण्डयेत्।
चतुर्दशगुणैः सूत्रैर्बद्ध्वा ग्रन्थि गले स्थितम् ॥ ५ ॥

फिर धूप से धूपित करके (जिससे सूक्ष्म कीटाणु आदि कोई भी रोग के करने वाले औषध पर बैठे न रहें) उसके खण्ड २ कर लेवे। फिर चौदह गुना (सूत के) धागों से उसे बांधकर गले में गांठ पर बांध रखे ॥ ५ ॥

मन्त्रः—ॐ गुडं प्रसाहि तिरि तिरि चित्रपुटक भुगनाङ्गते पापट-

गालापरदशमूलवासुकालदेपालरेदं गुरुप्रसादात् ॥

मंत्रः—ॐ गुडं प्रसाहि तिरि तिरि चित्रपुटक भुगनांगते पापटगालापरदश-मूलवासुकालदेपालरेदं गुरुप्रसादात्। " इस मन्त्र से औषध को अभिमंत्रित करे।

अथ गन्धकादिलेपः—गन्धकं सूतकं तुल्यमर्कक्षीरं ससैन्धवम्।
पिष्ट्वा च काञ्चनीमूलं लेपोऽयं गण्डमालिके ॥ १ ॥

शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, आक का दूध, सेंधानमक, कचनार की जड़ इन सबको समभाग लेकर गण्डमाला पर लेप करे तो गण्डमाला नष्ट हो जाती है १

अथ जेपालपत्रवटीः—पिष्ट्वा जेपालपत्राणि स्वरसेन ततो वटी।
छायाशुष्का ततो लेपाद्गण्डमाला विनश्यति ॥ १ ॥

जमालगोटे के पत्तों को पीसकर उसी के स्वरस से गोली बनाकर छाया में सुखा लेवे। इस के लेप करने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ भल्लातकादिलेपः—

भल्लातकासीसहुताशदन्तीमूलं गुडस्नुग्रविदुग्धदिग्धैः।
लेपान्वितैर्गच्छति गण्डमाला समीरवेगादिव मेघमाला ॥ १ ॥

भिलांवा, कसीस, चीता, दन्तीमूल, गुड, थोहर का दूध, आक का दूध इन सब को समभाग लेकर खरल कर के लेप करने से गण्डमाला ऐसे नष्ट होती है जैसे वायु के वेग से मेघमाला नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ गण्डमालाकण्डनो रसः—

कर्षसूतं शुद्धमस्य गन्धकं त्वर्धमुत्तमम्।
सार्धकर्षं ताम्रभस्म मृतं किटं त्रिकर्षकम् ॥ १ ॥

शुद्ध पारा एक कर्ष लें, शुद्ध गन्धक आधा कर्ष लें दोनों की कज्जली करें। फिर ताम्रभस्म डेढ कर्ष लें, मण्डूरभस्म ३ कर्ष लें ॥ १ ॥

व्योषं षट्कर्षतुलितमक्षार्धं सैन्धवं सितम्।
काञ्चनारत्वचश्चूर्णं पलत्रयमितं क्षिपेत् ॥ २ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल तीनों का समभाग चूर्ण मिलित छह कर्ष लें। श्वेत सेंधा नमक आधा अक्ष लें। कचनार की छाल का चूर्ण ३ पल डालें ॥२॥

पलत्रयं गुग्गुलोश्च शुद्धस्य समुपाहरेत्।
एतद्युक्त्या तु संमेल्य दृढं सुरभिसर्पिषा ॥ ३ ॥

शुद्ध गुग्गुलु ३ पल डालें। इन सब को विधिपूर्वक मिलाकर गौ के घी से अत्यन्त घोटे ॥ ३ ॥

गण्डमालाकण्डनोऽयं रसो माषत्रयात्मकः।
भुक्तो निहन्ति गण्डानि गण्डमालां च दारुणाम् ॥ ४ ॥

इस रस को गण्डमाला कण्डनरस कहते हैं। इसे ३ माषे (मात्रा एक

माषा से आरम्भ करे) क्रमशः बढाकर सेवन करे। इसे सेवन करने से भयंकर गण्ड और गण्डमाला नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥ इति गण्डमालाचिकित्सा ॥

अथापचीचिकित्सा—**अलम्बुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया।**
अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥ १ ॥

मुण्डी का स्वरस २ पल प्रतिदिन पिलावें तो अपची, गण्डमाला तथा कामला का नाश करता है ॥ १ ॥

नवकार्पासमूलयोगः—**नवकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम्।**
पक्त्वा च पोलिकां खादेदपचीनाशनाय च ॥ २ ॥

नई कपास की जड़ को चावलों के जल से पीसकर पोलिका पकाकर खावे तो अपची का नाश होता है ॥ २ ॥

सौभाञ्जनादिलेपः—**सौभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम्।**
कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ ३ ॥

सुहांजना की छाल या जड़, देवदारु की छाल दोनों को समभाग लेकर कांजी से पीसकर कोसा कर के लेप करें तो अति भयंकर अपची का नाश होता है ॥ ३ ॥

सर्षपादिलेपः—**सर्षपारिष्टपत्राणि दन्त्या भल्लातकैः सह।**
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं विलेपनम् ॥ ४ ॥

सरसों, नीम के पत्ते, दन्तीमूल, भिलावे इन को समभाग लेकर बकरे के मूत्र से पीसकर लेप करें तो अपची का नाश होता है ॥ ४ ॥

अश्वत्थादिलेपः—**अश्वत्थकाष्ठनिचुलं गवां दन्तं च दाहयेत्।**
वराहमज्जसंयुक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥ ५ ॥

पीपलवृक्ष की लकड़ी, समुद्रफल, गौ के दांत इन सब को समभाग लेकर भस्म करे इस भस्म को सूअर की मज्जा से मिलाकर लेप करे तो अपची के व्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अपरउपायः—**मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक्।**
अङ्गुलान्तरितं सम्यगपचीविनिवृत्तये ॥ ६ ॥

मणिबंध अर्थात् हाथ की कलाईयों से ऊपर की ओर एक २ अंगुली के अन्तर को छोड़कर तीनरेखा चिन्हों को कर देवे। इस से अपची नष्ट होती है ॥६॥

अथ चन्दनादितैलम्—**चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी।**
एतत्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ १ ॥

लाल चन्दन, हरड़, लाख, बच, कुटकी इन सब को समभाग लेकर इन से चौगना सरसों का तेल डालकर, और तेल से चौगना जल डालकर पकावे। तैलमात्र शेष रहने पर छानकर रखे। इस तेल के पीने से अपची समूल नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ व्योषाद्यं तैलम्—व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च।
तैलमेभिः शृतं नस्यात्कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत् ॥१॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलट्ठी, सेंधा नमक, देवदारु इन को समभाग लेकर कल्क कर के, चतुर्गुण सरसों का तेल विधिपूर्वक पकायें। इस तेल की नस्य दें तो भयंकर अपची भी नष्ट होती है ॥ १ ॥ इत्यपचीचिकित्सा। इति गण्डमालापचीचिकित्सा ॥

अथ ग्रन्थिचिकित्सा।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक्शोथप्रतिक्रियाम्।
पक्वानापाट्य संशोध्य रोपयेद्व्रणभेषजैः ॥ १ ॥

आम ग्रन्थियों अर्थात् जो गांठें न पकी हों उन को तो शोथरोग के समान चिकित्सा करे। पकी हुई ग्रन्थियों को पाटन कर के शोधन करे और व्रणरोपक औषधों से व्रण को रोपण करे ॥ १ ॥

हिंस्रा सरोहिण्यमृताऽथ भार्ङ्गी स्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः।
गोमूत्रपिष्टाः सह तालपत्र्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ २ ॥

कटेली, कुटकी, गिलोय, भारंगी, श्योनाक की छाल, बिल की छाल, अगर, सुहांजने की छाल (तालपत्री, सौंफ या मूसली काली, मूषकपर्णी, जंगली सौंफ) और काली मूसली इन सब को पीसकर वातिक ग्रन्थि पर लेप कर दे। इस से वह ग्रन्थि क्रमशः नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

जलायुकाः पित्तकृते हिताः स्युः क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च।
द्राक्षारसेनेक्षुरसेन चापि चूर्णं पिबेद्वाऽपि हरीतकीनाम् ॥ ३ ॥

पित्तजग्रन्थि में जोंक लगाकर खून निकलवा दे। दूध में पानी मिलाकर ग्रन्थि पर सिंचन करे। दाख के स्वरस वा गन्ने के स्वरस का सिंचन करे। अथवा हरड़ों का चूर्ण दाख के रस वा गन्ने के स्वरस से पीवे ॥ ३ ॥

मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवचारयेच्च।
हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्वं ग्रन्थेर्भिषक् श्लेष्मसमुत्थितेषु ॥ ४ ॥

कफजग्रन्थि में महुआ, जामुन, अर्जुन, बेत इन की छालों को पीसकर लेप करे। परन्तु पहले दोषों को वमन विरेचनादि से दूर कर लेवे ॥ ४ ॥

अमर्मजातं शममप्रयातं तत्पक्वमेवापहरेद्विचार्य।
देहस्थिते वाससि सिद्धकर्म सद्यः क्षतोक्तं च विधिं विदध्यात् ॥५॥

यदि ग्रन्थि मर्मस्थान में न हो, तथा शान्त भी न होती हो, और पकी हुई हो तो वैद्य विचार कर के उसे चीर दे और साफ कर दे। और कपड़े से बांधना आदि सिद्ध कर्म करें। तथा सद्य व्रण की सब विधि करे ॥ ५ ॥

शस्त्रेण चोत्कृत्य सुपक्वमाशु प्रक्षालयेत्पथ्यतमैः कषायैः।

संशोधनैस्तं च विशोधयेत्तु क्षारोत्तरैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः ॥ ६ ॥

सुपक्क अर्थात् अच्छी प्रकार से पकी हुई ग्रन्थि को शस्त्र से उखाड़कर शीघ्र ही पथ्यतम रक्तनाशक कषायों से व्रण को धोवे । फिर क्षार से युक्त घी तथा शहद से मिले हुए संशोधन द्रव्यों से व्रण को शोधन करे ॥ ६ ॥

सिञ्चेच्च तैलं त्वपचारणीयं विडङ्गपाठारजनीविपक्कम् ।
मेदःसमुत्थे तिलकल्कदिग्धैः कृत्वोपरिष्टाद्‌द्विगुणं पटान्तम् ॥७॥

फिर वायविडंग, हल्दी तथा पाठा इनसे पकाये हुए तेल से व्रण को सिंचन करे और फिर तेल की गद्दी व्रण पर रख देवे । परन्तु यदि मेदोज ग्रन्थि को काटा गया हो तो तिल का कल्क करके उससे व्रण को लीप देवे और उसके ऊपर दोहरा कपड़ा रख के बांध देवे ॥ ७ ॥

हुताशतप्तेन मुहुः प्रमृज्याल्लोहेन धीमान्न च वर्धिताय ।
प्रलिप्तदर्व्या त्वथ लाक्षया वा प्रतप्तयाऽऽश्च्योतनमस्य कार्यम् ॥८॥

फिर अग्नि से तपे हुए लोहे से बार २ छुए । फिर लाख से कड़छी को लीप कर तप्त करके बार २ इस व्रण पर आश्च्योतन करे ॥ ८ ॥

निपात्य वा शस्त्रमपोह्य मेदो देहत्सुपक्कं त्वथ वा विदार्य ।
प्रक्षाल्य मूत्रेण तिलैः सुपिष्टैः सुवर्चलाढ्यैर्हरितालमिश्रैः ॥ ९ ॥

अथवा शस्त्र से छेदन करके मेद को व्रण में से साफ करके जला देवे । अथवा पकी हुई गांठ को फाड़कर गोमूत्र से धोवे । फिर अच्छी प्रकार ले तिलों को पीस ले, उनमें सोंचलनमक हरिताल ॥ ९ ॥

ससैन्धवैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः क्षारोत्तरैरेनमभिप्रशोध्य ।
तैलं विदध्याद्‌द्विकरञ्जगुञ्जावंशावलेष्विङ्गुदमूत्रसिद्धम् ॥ १० ॥

सेंधानमक, शहद तथा घी और यवक्षारादि क्षारपदार्थ मिलाकर लेप करे । इससे व्रण को शुद्ध करले । फिर दोनों प्रकार के करंज, रत्तियां, बांस, (अवला= प्रियंगो, गलगण्डे । आवलीकन्द—मालाकन्दे) प्रियंगु,या मालाकन्द, हिंगोट इन सबको समभाग लेकर कल्क करे । इस कल्क से चौगुना तिल को तेल, और तेल से चौगुना गौ का मूत्र डालकर तेल पका ले । इस तेल को ऊपर लगा देवे। तो ग्रन्थि नष्ट हो जाती है ॥ १० ॥ इतिराजमार्त्तण्डात् ।

विष्णुक्रान्ता च पेटारी काञ्जिकेन सुपेषिता ।
कालस्फोटं हरेल्लेपाद्‌दुष्टग्रन्थिषु का कथा ॥ १ ॥

विष्णुक्रान्ता, पेटारी इन दोनों को ले कांजी से पीसकर लेप करें तो कालस्फोट को भी यह नष्ट कर देता है तो दुष्ट ग्रन्थियों को तो अवश्य ही नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत्।
कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्यात्सवेदनम् ॥ २ ॥

जियापोते के बीज की गिरी को जल में पीसकर प्रलेप करे। तो वेदनायुक्त यमराज के घर पहुंचाने वाले फोड़े या कालस्फोट को तथा विष वाले फोड़े को शीघ्र ही नष्ट कर देता है ॥ २ ॥ तथा कक्षा में होने वाली ग्रन्थि, कान की ग्रन्थि और गले की ग्रन्थि को भी यह लेप नाश करता है।

कक्षाग्रन्थिं कर्णग्रन्थिं गलग्रन्थिं च नाशयेत्।
राजिकालशुनं पेष्यं लेपो हृद्गलग्रन्थिहा:।
गन्धोऽर्कदुग्धतालेन जेपालेन च नाशयेत् ॥ ३ ॥

राई और लहसन इन दोनों को पीसकर लेप करें तो हृदय और गल की ग्रन्थियें नष्ट हो जाती हैं। तथा गन्धक, आक का दूध, हरताल, जमालगोटा इन सबको पीसकर लेप करने से भी ग्रन्थियें नष्ट हो जाती हैं ॥ ३ ॥ इति ग्रन्थिचिकित्सा।

अथार्बुदचिकित्सा।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥१॥

ग्रन्थि और अर्बुद में कोइ विशेष अन्तर नहीं, क्योंकि स्थान, कारण, आकार, दोष तथा दूष्य एक समान ही दोनों में होते हैं। इस लिये ग्रन्थि के समान ही अर्बुदों की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

वातार्बुदं क्षीरघृताम्लसिद्धैरुष्णैः सतैलैरुपनाहयेत्तु।
कुर्यात्तु मुख्यान्युपनाहनानि सिद्धैश्च मांसैरथ वेसवारैः ॥ २ ॥

वातिक अर्बुद को दूध, घी अम्ल से युक्त पकाये हुए गरम २ तेलों से उपनाह करे। तथा पके हुए मांस तथा वेशवारों से उपनाह करे ॥ २ ॥

स्वेदं विदध्यात्कुशलश्च नाड्या शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च।
वातघ्ननिर्यूहपयोम्लभागैः सिद्धां शताह्वां त्रिवृतां पिबेद्वा ॥ ३ ॥

नाड़ी स्वेद कुशलता से देवे तथा सींग से रक्त अनेक बार निकलवाये। तथा वातनाशक क्वाथ, दूध तथा अम्ल इनसे सिद्ध की हुई सौंफ या त्रिवी को पीवे ॥ ३ ॥

स्नेहोपनाहा मृदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे काथविरेचनं च।
विकृष्य सौदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ ४ ॥

पित्तार्बुद में स्नेह देना तथा मृदु उपनाह करना पित्तनाशक क्वाथ देने तथा विरेचन देना ये सभी पथ्य हैं। फिर उस को नरम कर के उदम्बर या गूलर के शाक और गोजी के पत्तों से पीसकर शहद मिलाकर व्रण को लीप देवें।

इस प्रकार पित्तार्बुद शान्त होता है ॥ ४ ॥

शुद्धस्य जन्तोः कफजेऽर्बुदे च रक्ते च सिक्ते स्रवतोऽर्बुदं यत्।
मेदःकृते मांसकृतेऽपि कार्यं व्रणोदितं सर्वचिकित्सितं च ॥ ५ ॥

कफजअर्बुद में वमन विरेचन से शुद्ध हुए २ रोगी को, रक्तार्बुद में रक्त निकलते हुए रोगी को, मेदःकृत अर्बुद में सभी व्रणोचित चिकित्सा वैद्य करे ॥५॥

इति राजमार्त्तण्डात् ॥

लिप्तं यवक्षारविडङ्गबीजं गन्धोपलैः स्यात्सुमणीकृतैर्यत्।
रक्तेन मिश्रैः सरटस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैतत् ॥ १ ॥

यवक्षार, वायविडंग के बीज, गन्धक इन सब को अत्यन्त पीसकर गिरगट के खून में मिलाकर लेप करने से अर्बुद शान्त होजाता है। यह निस्सन्देह है ॥१॥

उपोदिकरसाभ्यक्ता तत्पत्रपरिवेष्टिता।
प्रणश्यत्यचिरान्नृणां पिटिकार्बुदजातयः ॥ २ ॥

पोई शाक के रस से पिड़िका और अर्बुद को लेप करदे और ऊपर से पोईशाक के पत्ते लपेट देवे। इस प्रकार से करने से अनेक प्रकार की पिडिका और अर्बुदरोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा तयोपनाहो लवणेन सार्धम्।
दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ३ ॥

पोईशाक को कांजी तथा तक्र में पीसकर सेंधानमक मिलावे। इस से उपनाह करे तो अर्बुद नष्ट होते हैं। अनेक वैद्यों का मत है कि इसी को दिन२ में उपनाह करने से अर्बुद नष्ट होते हैं और रात में इस का उपनाह करें तो मर्मज अर्बुद नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गन्धशिलाविश्वौषधविडङ्गनागभस्मभिः समैश्चूर्णम्।
कृकलासरक्तयुक्तं लेपात्सद्योऽर्बुदध्वंसि ॥ ४ ॥

गन्धक, मनसिल, सोंठ, विडंग, सीसे की भस्म इन सब को समभाग लेकर गिरगट के खून से मिलाकर लेप करें तो शीघ्र ही अर्बुद नष्ट हो जाते हैं ॥४॥

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च।
लवणेनाथ वा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ ५ ॥

थोहर तथा (गण्डीरिका स्नुहीवृक्षे, मनसासिजु तेकांरासिजु, मंजिष्ठायां, शाकविशेष रक्तकांचनवृक्षे) त्रिकांडथोहर दोनों को पीसकर गरम कर के स्वेद देवें तो अर्बुद नष्ट होते हैं। सेंधानमक की पोटली गरम कर के उस से स्वेद देवे। अथवा सीसे के डले को गरम कर के उस से स्वेद देवे तो भी अर्बुद अच्छे होते हैं ॥ ५ ॥

हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगुडधूमो मनःशिला।

मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोर्बुदहरः परः ॥
एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ ६ ॥

हल्दी, लोध, पत्तंग की लकड़ी, गुड़, रसोई घर का धुंआं, मनसिल इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर शहद से मिलाकर गाढ़ा २ लेप करें तो यह मेदोऽर्बुद को नाश करने में श्रेष्ठ है ॥ शर्करार्बुद में इसी प्रकार की सब क्रियायें करें ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुराणघृतपानं च जीर्णलोहितशालयः ।
यवा मुद्गाः पटोलं च रक्तशिग्रुः कठिल्लकम् ॥ १ ॥

पुराने घी को पीवे, पुराने लाल शाली चावल खावे । जौ, मूंग, परवल, लाल सुहांजना, करेला ॥ १ ॥

शालिञ्च शाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च ।
दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥ २ ॥

शालिञ्चशाक, बेत का अगला भाग, रूखे तथा कटु पदार्थ, सब दीपन पदार्थ, गूगल, शिलाजीत ॥ २ ॥

गलगण्डे गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदान्तरे ।
यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥

ये सभी पदार्थ गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि तथा अर्बुद इनमें दोष तथा अवस्थानुसार पथ्य कहे हैं ॥ ३ ॥

दुग्धेक्षुविकृतीः सर्वा मांसं चानूपसंभवम् ।
पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥ ४ ॥

परन्तु दूध, गन्ना तथा दूध और गन्ने से बने अन्य दही खांड आदि पदार्थ, आनूपमांस, पीठी, अम्ल, मधुर, भारी तथा अभिष्यन्दी पदार्थ ॥ ४ ॥

गलगण्डं गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान् ।
चिकित्सन्नगदंकारो यशोऽर्थी परिवर्जयेत् ॥ ५ ॥

ये सभी पदार्थ गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थी तथा अर्बुद इन रोगों में अपथ्य समझकर यश की इच्छा वाला चिकित्सक त्याग करा देवे ॥ ५ ॥ इत्यर्बुदचिकित्सा ।

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्यरत्नगर्भानाम्नीटीकायां गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुद प्रकरणं समाप्तम् ।

अथ श्लीपदनिदानम् ।

मेदोमांसाश्रयं शोफं पादयोः श्लीपदं वदेत् ।
स्वलिङ्गदर्शिभिर्दोषैस्त्रेधा स्याच्च कफोत्तरम् ॥ १ ॥

मेद और मांस को आश्रय करके जो सूजन पैरों में हो जाती है उसे श्लीपद कहते हैं । यह श्लीपद अपने लक्षणों वाले वातादि दोषों से तीन प्रकार का होता है । इन तीनों में कफ प्रधानता से होता है ॥ १ ॥

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—

यः सज्वरो वंक्षणजो भृशार्तिः शोफो नृणां पादगतः क्रमेण ।
तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥४॥

जो ज्वरसहित अति पीड़ा देती हुई सूजन वंक्षण में होकर क्रम से पैरों की ओर जाती है उसे श्लीपद कहते हैं । कुछ आचार्य इस सूजन को कान, हाथ, नेत्र लिङ्ग, होंठ तथा नाक पर होने से भी श्लीपद ही मानते हैं (शिलावत्पदं श्लीपदम् यह भी निरुक्ति इसकी की जाती है) ॥ २ ॥

अथ वातजमाह—**वातजं कृष्णरूक्षं तु स्फुटितं तीव्रवेदनम् ।**
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ ३ ॥

वातज श्लीपद में सूजन काली, रूखी, फूटी हुई या फटी हुई होती है, उसमें तीव्र पीड़ायें होती हैं । बिना कारण के ही पीड़ा होती है और बार बार ज्वर होता है ॥ ३ ॥

अथ पित्तजमाह—**पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ।**

पित्तज श्लीपद पें सूजन पीले से रंग की होती है, दाह तथा ज्वर होता है, तथा स्पर्श में कोमल होती है ।

अथ श्लेष्मजमाह—**श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डुं गुरु स्थिरम् ॥४॥**

श्लैष्मिक सूजन चिकने से रंग की होती है, श्वेत होती है या पाण्डु अर्थात् श्वेत पीली मिली जुले रंग की होती है । भारी तथा स्थिर होती है ॥ ४ ॥

अथैषामसाध्यत्वमाह—**वाल्मीकमिव संजातं कण्टकैरिव संचितम् ।**
सर्वात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ५ ॥

यह श्लीपद बढ़कर जब बल्मीक या बांबी के समान अनेक शिखरोंवाला हो जाता है तथा कण्टक अर्थात् गांठों से जब भर जाता है, सब लक्षणों से युक्त होता है तथा महान होता है तो इसकी चिकित्सा न करे । यह असाध्य होता है (अन्यत्र "सर्वात्मकं" के स्थान पर "अब्दात्मकं" पाठ है जो कि सुश्रुत के मतानुसार संगत है । अर्थात् एक वर्ष बीत जाने पर श्लीपदरोग अन्यान्य लक्षणों से युक्त हो तो असाध्य होता है । सुश्रुत ने स्पष्ट लिखा है "तत्र संवत्सरातीतमतिमहद्वल्मीकमिवसंजातं संप्रस्रुतमिति वर्जनीयानि भवन्ति" सु० नि०

स्था० अध्याय १२) ॥ ५ ॥

अथ श्लीपदे कफस्याव्यभिचारेण प्राधान्यमाह—

त्रीण्येतानि विजानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात्।
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति कफाद्विना ॥ ६ ॥

ये तीनों ही श्लीपद कफ की अधिकता से होते हैं। अर्थात् वातिक, पैत्तिक श्लीपद में भी कफ का अनुबन्ध अवश्य ही होता है। क्योंकि गुरुता और महान् होना ये कफ के विना नहीं हो सकता ॥ ६ ॥

अथ श्लीपदसम्भवे हेतुनिर्देशमाह—

पुराणोदकभूयिष्ठः सर्वर्तुषु च शीतलाः।
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ७ ॥

पुराने पानी की जहां अधिकता रहे अर्थात् वर्षा में पानी बरस कर आनूप देशों में नीचाई के कारण पड़ा सड़ता रहता है, और सभी गरमी आदि ऋतुओं में भी नहीं सूखता क्योंकि धूप वहां पूरा प्रभाव नहीं करती (जांगल देश ऊंचाई पर होते हैं इसलिये न तो पानी वहां एकत्रित होकर सड़ता है न वहां गरमीं आदि में शीतलता अधिक होती है क्योंकि धूप पड़ने से जलादि शुष्क होकर वह स्थान गरम होजाता है) तथा जहां सभी ऋतुओं में शीतलता रहती हो, ऐसे देशों में प्रायः श्लीपदरोग होजाते हैं ॥ ७ ॥

अथ पुनरसाध्यत्वमाह—

यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य।
सास्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ८ ॥

जो श्लीपद कफ प्रकृतिवाले पुरुष को कफकारक आहार मधुरद्रव्यादि तथा कफकारक विहार अर्थात् दिन में सोना आदि सेवन करने से हुआ हो। जो वह रहा हो तथा जो श्लीपद अत्यन्त बढ़ गया हो तथा जिस में अपने दोष के सभी लक्षण अत्यन्त बढ़ गये हों, तथा जिस में खुजली होती हो, और जो कफयुक्त हो वह असाध्य है ॥ ८ ॥ इति श्लीपदनिदानम् ॥

अथ श्लीपदचिकित्सा।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तसेचनैः।
प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ १ ॥

उपवास कराकर, लेप करा के, स्वेद देकर, विरेचन द्रव्य देकर, रक्त निकलवा कर, प्रायः श्लेष्मानाशक गरम आहार तथा औषधों को देकर श्लीपद रोग की चिकित्सा करे ॥ १ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक्।
कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत्तु चतुरङ्गुले ॥ २ ॥

वातजश्लीपद में स्नेहन, स्वेदन तथा उपनाह करे। और ये सब कर्म करने के पीछे गुल्फ अर्थात् गिट्टे के ऊपर चार अंगुली पर शिरा बींध देवे॥ २॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसंभवे।
पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत्॥ ३॥

पित्तज श्लीपद में गुल्फ के नीचे की शिरा बींध देवे। तथा पित्तार्बुद और विसर्परोग के समान ही पित्तनाशक क्रियायें करें॥ ३॥

मञ्जिष्ठामधुकं रास्नामहिंस्रां सपुनर्नवाम्।
पिष्ट्वाऽऽरनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये॥

मंजीठ, मुलठ्ठी, रास्ना, कटेली, पुनर्नवा, इन सब को कांजी से पीसकर लेप करें तो पित्तश्लीपद शान्त होता है॥

शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे॥ ४॥

श्लेष्मजश्लीपद में अंगूठे की सुपरिचित शिरा को बींधे॥ ४॥

सिद्धार्थसौभाञ्जनदेवदारुविश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलेपयेत्।
पुनर्नवानागरसर्षपाणां कल्केन वा काञ्जिकमिश्रितेन॥ ५॥

श्वेत सरसों, सुहांजना, देवदार, सोंठ इन सब को समभाग लेकर गोमूत्र से पीसकर प्रलेप करे तो कफजश्लीपद शान्त होता हैं। अथवा पुनर्नवा, सोंठ, सरसों इन के समभाग कल्क को लेकर कांजी से मिलाकर पीसकर लेप करे तो भी श्लीपदरोग नष्ट होता है॥ ५॥

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः।
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम्॥ ६॥

धतूरे के पत्ते, एरण्ड की जड़ वा पत्ते, निर्गुण्डी के पत्ते, पुनर्नवा, सुहांजना, सरसों इन सब को कल्क कर के प्रलेप करने से, पुराना भयंकर श्लीपद भी अच्छा हो जाता है॥ ६॥

हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवदारु च।
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः॥ ७॥

चीता तथा देवदार का नित्य प्रलेप करे। अथवा श्वेत सरसों तथा सुहांजने को समभाग मिलाकर गोमूत्र में पीसकर कल्क बना नित्य लेप करे। इन प्रयोगों से श्लीपद शान्त होजाता है॥ ७॥

प्रपिबेद्वाभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन वा।
पिबेदेवं गुडूचीं च नागरं भद्रदारु वा॥ ८॥

हरड़ का कल्क गौ वा भैंस आदि के किसी मूत्र से पीवे। इसी प्रकार से गिलोय को गौ वा भैंस आदि के मूत्र से पीवे। अथवा सोंठ और देवदारु का कल्क सरसों के तेल से मिलाकर पीवे तो श्लीपदरोग नष्ट होता है॥ ८॥

पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये।
पूतीकरञ्जच्छदजं रसं वापि यथाबलम् ॥ ९ ॥

पूतिकरंज के पत्तों के स्वरस को यथाबल पीने से भी श्लीपदरोग नष्ट होता है॥९

अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकजं रसम्।
प्रयुञ्जीत भिषक्प्राज्ञः कालसात्म्यविभागतः ॥ १० ॥

इसी प्रकार से जियापोते के पत्तों के रस को काल तथा सात्म्य देखकर उचित मात्रा में वैद्य प्रयोग करावे ॥ १० ॥

पलाशमूलस्वरसं पिबेद्वा तैलेन तुल्यं सितसर्षपाणाम्।
मूत्रेण पथ्यामरदारुविश्वं सगुग्गुलुं श्लीपदिभिर्निषेव्यम् ॥११॥

ढाक की जड़ के स्वरस को श्वेत सरसों के तेल से समभाग मिलाकर पीवे। अथवा हरड़, देवदार, सोंठ, गूगल इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करके गोमूत्र से पिलावें तो श्लीपदरोग में लाभ होता है ॥ ११ ॥

वृद्धदारकचूर्णं वा मूत्रसौवीरकादिभिः।
शीलितं श्लीपदं हन्ति कृच्छ्रं संवत्सरोषितम् ॥ १२ ॥

विधायेर का चूर्ण गोमूत्र तथा सौवीरक आदि से निरन्तर सेवन करने से एक साल के पुराने कष्टसाध्य श्लीपद को भी नष्ट करता है ॥ १२ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम्—

पिप्पली त्रिफला दार्वी नागरं सपुनर्नवम्।
भागैर्द्विपलिकैस्तेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥ १ ॥

पिप्पली, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी, सोंठ, पुनर्नवा, प्रत्येक द्रव्य दो २ पल लेवे। इन सबके समान विधारा लेवें ॥ १ ॥

काञ्जिकेन तु तच्चूर्णं पिबेत्कर्षप्रमाणतः।
जीर्णे वा परिहीनं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥ २ ॥

इन सब द्रव्यों को एकत्र करके चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को कांजी से मिलाकर एक कर्ष तक खावें। इसके पच जाने पर सब दोषों को नाश करने वाला अल्प भोजन करें ॥ २ ॥

श्लीपदं वातरोगांश्च प्लीहगुल्ममरोचकम्।
अग्निं च कुरुते घोरं भस्मकं च प्रयच्छति ॥ ३ ॥

इससे श्लीपद, वायु के रोग, प्लीहा, गुल्म तथा अरुचि नष्ट होते हैं। अग्नि दीप्त होती है, तथा भस्मकरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ कृष्णाद्यो मोदकः—कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्धपलं पलम्।
विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य च पलद्वयम्।
मधुना सह संयुक्तं श्लीपदं हन्ति दारुणम् ॥ १ ॥

पिप्पली एक कर्ष, चीता आधा पल, दन्तीमूल एक पल ले। हरड़ बड़ी २

२० संख्या ले। गुड दो पल ले। इन सबको पीसकर शहद से मिलाकर चाटे तो भयंकर श्लीपद भी दूर होता है ॥ १ ॥

अथ विडङ्गादितैलम्—विडङ्गसारिवार्केषु नागरे चित्रके तथा।
भद्रदार्वेलकाख्येषु सर्वेषु लवणेषु च ॥
तैलं पक्कं पिबेद्वाऽपि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ १ ॥

विडंग, सारिवा, आक, सोंठ, चीता, देवदार, इलायची, पांचों लवण प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर कल्क करे। इस कल्क से चौगुना सरसों का तेल, और तेल से चौगुना जल डालकर तेल पाक करे। इस तेल की मालिश करने से और पीने से श्लीपद रोग निवृत्त होता है ॥ १ ॥

अथ सौरेश्वरघृतम्—सुरसा देवकाष्ठं च त्रिफला त्रिकटुर्गजा।
लवणानि च सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ १ ॥

तुलसी, देवदार, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, गजपीपल, पांचों लवण, वायविडंग, चीता ॥ १ ॥

चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुं हपुषा वचा।
यवाग्रजः सपाठश्च चव्यैलं वृद्धदारकः ॥ २ ॥

चव्य, पिप्पलीमूल, गूगल, हाऊबेर, बच, यवक्षार, पाठा, चव्य, इलायची, विधारा ॥ २ ॥

कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥ ३ ॥

इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष लेकर सबका कल्क करे। गौ का घी एक प्रस्थ लेवे। दशमूल का क्वाथ एक प्रस्थ, धान्यों का यूष एक प्रस्थ ॥ ३ ॥

दधिमण्डसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक्।
पक्कं स्यादुद्धृतं कल्कात्पिबेत्कर्षत्रयं हविः ॥ ४ ॥

दही का मांड अर्थात् दही का पानी एक प्रस्थ ले। इन सबको पृथक् २ डालकर घी पका लेवे। पकने पर कल्क को छानकर घी मात्र शेष रखे। इसमें से तीन कर्ष घी पीवे ॥ ४ ॥

श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितं च यत्।
मेदःश्रिताभिघातोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ ५ ॥

कफवात से हुए २ श्लीपद, मांसरक्ताश्रित श्लीपद, मेदः श्रित तथा अभिघातज श्लीपद इस घी से सभी नष्ट हो जाते हैं इसमें कोई संशय नहीं ॥ ५ ॥

अपची गलगण्डानि अन्त्रवृद्धिं तथाऽर्बुदम्।
नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजान्यपि ॥ ६ ॥

अपची, गलगण्ड, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, ग्रहणी के दोष, सूजन तथा बवासीर के मस्से ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठक्रिमिविनाशनम्।
घृतं सौरेश्वरं नाम श्लीपदं हन्ति सेवितम् ॥ ७ ॥

अग्नि को अत्यन्त दीपन करता है, हृदय को हितकारी है, तथा कोष्ठ के क्रिमियों को नष्ट करता है। यह सौरेश्वर घृत सेवन करने से श्लीपद को नाश करता है ॥ ७ ॥

जीवकेन घृतं ह्येतद्रोगानीकविनाशनम्।
यवान्नं कूर्ममांसं च कटुतैलं च योजयेत्।
श्लीपदानां प्रशान्त्यर्थं मांसान्तं दाहमग्निना ॥ ८ ॥

यदि इस घृत में जीवक या जीवनीयगण के औषध डालकर पकाया जाय तो अनेकों रोग नष्ट हो जाते हैं। जौ का भोजन, कछुए का मांस, सरसों का तेल खावे। श्लीपदों को नाश करने के लिये अग्नि से मांस के अन्त तक दाह कर देना चाहिये ॥ ८ ॥

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति।
श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ ९ ॥

एरण्ड के तेल में भूनी हुई हरड़ को गौ के मूत्र से जो सेवन करता है, वह रोगी सात रात में ही श्लीपद के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥ ९ ॥

अथ गुडूच्यादिलेपः—गुडूचीकटुकाशुण्ठीदेवदारुविडङ्गकम्।
पिष्ट्वा गोमूत्रसंयुक्तं लेपाच्छ्लीपदनाशनम् ॥१॥

गिलोय, कुटकी, सोंठ, देवदार, वायविडंग इन सबको पीसकर गोमूत्र से मिलाकर लेप करे तो श्लीपद रोग का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ धान्याम्लादि—धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम्।
दीपनं चाऽऽमदोषघ्नं मेदःश्लीपदनाशनम् ॥१॥

धान्याम्ल अर्थात् कांजी तेल से मिलाकर पीने से कफवात का नाश होता है। अग्नि दीपन होती है, आमदोष का नाश होता है तथा मेदःश्लीपद का नाश होता है ॥ १ ॥

पिण्डारकादि-पिण्डारकतरुसंभवबन्धूकशिफा जयति सर्पिषा पीता।
श्लीपदमुग्रं नियतं बद्ध्वा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥ २ ॥

पिण्डारा या बइंचीगाछ के पेड़ पर उत्पन्न हुए २ बन्धूक अर्थात् दोपहरिया की जड़ के चूर्ण को घी से मिलाकर पीवे, तथा सूत से लपेट कर इसी जड़ को जांघ पर बांधने से अवश्य ही भयंकर श्लीपद का नाश होता है ॥ २ ॥

संपिष्टामारनालेन रूपिकामूलवल्कलम्।
प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम् ॥ ३ ॥

आक के जड़ की छाल को कांजी से पीसकर प्रलेप करें तो बद्धमूल दृढ श्लीपद भी इस से नष्ट होता है ॥ ३ ॥

अथ भोजन—**यवान्नं कटुतैलं च कूर्ममांसं च योजयेत् ।**
श्लीपदानां प्रशान्त्यर्थं मासान्ते दाहमग्निना ॥ ४ ॥

जौ, कड़वा तेल और कछुए का मांस खावें तो श्लीपद की शान्ति होती है। तथा मांस के अन्दर तक अग्नि से दाह कर देवे ॥ ४ ॥

पादकण्डूदाहहरौ योगौ—**पादकण्डूहरं कुर्यान्नवनीतेन माक्षिकम् ।**
पाददाहहरं खादेत्तिलाद्द्विगुणबाकुचेः ।
चूर्णं तु मधुसर्पिर्भ्यां कर्षमार्तिप्रशान्तये ॥ ५ ॥

मक्खन तथा शहद मिलाकर खावे तो पैरों की कण्डू नष्ट होती है । और तिल एक भाग, बावची दो भाग इन का मिलित चूर्ण कर के एक कर्ष लेकर शहद तथा घी से मिलाकर खावें तो सभी प्रकार के श्लीपद के कष्ट तथा पैरों की दाह नष्ट होती है ॥ ५ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम् ।
वार्ताकसौभाञ्जनकारवेल्लं पुनर्नवामूलमुपोदिका च ॥ १ ॥

पुराने साठी के चावल, पुराने शाली धान्य, जौ, कुलथी, लसुन, परवल बैंगन, सुहांजना, करेला, पुनर्नवा की जड़, पोईशाक ॥ १ ॥

एरण्डतैलं सुरभीजलं च कटूनि तिक्तानि च दीपनानि ।
एतानि पथ्यानि भवन्ति पुंसां रोगे सति श्लीपदनामधेये ॥ २ ॥

एरण्ड का तेल, गौ का मूत्र, कटु पदार्थ, तिक्त पदार्थ, अग्निदीपन पदार्थ, ये सभी पदार्थ श्लीपद रोगवालों के लिये पथ्य हैं ॥ २ ॥

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामिषम् ।
स्वाद्वम्लं पारियात्रं च सिन्धुविन्ध्यनदीजलम् ।
पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥ ३ ॥

परन्तु पीठी, दूध के विकार दही आदि, गुड, आनूप मांस, स्वादु, अम्ल रस विशिष्ट पदार्थ, पारियात्र, सिन्धुनदी तथा विन्ध्यपर्वत की नदियों का जल, पिच्छिल पदार्थ, गुरु, अभिष्यन्दी पदार्थ । ये सभी पदार्थ श्लीपदरोगी त्याग देवे ॥ ३ ॥ इति श्लीपदरोगचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्सा विशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां श्लीपदरोगप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ विद्रधिनिदानम् ।

तस्य संप्राप्तिमाह—त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ।
दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥

अस्थि अर्थात् हड्डी में स्थित अति प्रकुपित हुए २ दोष त्वचा, रक्त, मांस तथा मेद इनको प्रदूषित करके धीरे २ अत्यन्त बड़ी सूजन को कर देते हैं ॥१॥

तत्संख्यालक्षणे चाह—महामूलं रुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथ वाऽयतम् ।
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः॥१

वह सूजन महान जड़ वाली होती है । उसमें पीड़ा होती रहती है । वह गोल या लम्बी होती है इसी को विद्रधि कहते हैं । (इसका नाम वृत्त वा आयत होने के कारण विद्रधि है अथवा चरक ने इसे शीघ्र विदाही होने के कारण विद्रधि माना है यथा, " स वै शीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधीत्यभिधीयते ।" चरक सूत्र० अ० १७) । यह विद्रधि छह प्रकार की होती है ॥ २ ॥

पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ।
षण्णामपि च तेषां तु लक्षणं संप्रचक्षते ॥ २ ॥

वातिक, पैत्तिक तथा कफज ये तीनों पृथक २ दोषों से होती हैं तथा सन्निपातजविद्रधि त्रिदोषों के एकत्र होने से होती है। क्षत से क्षतज विद्रधि तथा रक्त से रक्तज विद्रधि होती है ॥ ३ ॥

अथ वातिकमाह—कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः ।
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ १ ॥

वातज विद्रधि काले या लाल रंग की होती है । विषम अर्थात् कभी छोटी कभी बड़ी होती है । तथा अत्यन्त पीड़ा वाली होती है । इसका उत्पन्न होना तथा पकना चित्र अर्थात् नाना प्रकार का होता है ॥ १ ॥

अथ पैत्तिकमाह—पक्वोदुम्बरसंकाशः पीतो वा ज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ १ ॥

पैत्तिकविद्रधि पके हुए गूलर के समान आकार में होती हैं, (" पीतो वा " के स्थान में " श्यावो वा " अर्थात् श्याम रंग की होती है ऐसा पाठ भी है), यह विद्रधि उत्पन्न होते ही ज्वर तथा दाहवाली होती है (पाककाल में तो ज्वर तथा दाह और भी प्रबल हो जाते हैं) और शीघ्र ही उत्पन्न होती और पक जाती है ॥ १ ॥

अथ श्लेष्मजमाह—शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः ।
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफ संभवः ॥ १ ॥

कफजविद्रधि शराव अर्थात् प्याले के समान बड़े आकार की होती है । पाण्डु अर्थात् श्वेत रंग की होती है । शीतल होती है, स्निग्ध होती है, अल्प

वेदना वाली होती है । देर में उत्पन्न होती तथा देर में पकती है ॥ १ ॥

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥ १ ॥

इन विद्रधियों में से जो आस्राव या रस निकलता है । वह वातिकविद्रधि में पतला और वातिक रंग का काला या लाल सा होता है । पित्तविद्रधि में स्राव का रंग पीला होता है । कफविद्रधि में स्राव का रंग श्वेत होता है ॥ १ ॥

अथ सांनिपातिकमाह—**नानावर्णरुजास्रावो घाटालो विषमो महान् । विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सांनिपातिकः ॥१॥**

सन्निपातज विद्रधि नाना रंगों की अर्थात् काली पीली श्वेत होती है तथा नाना पीड़ाओं वाली अर्थात् तोददाह कण्डू आदि वाली तथा नाना आस्रावों वाली अर्थात् पतला, पीला, श्वेत रंग के स्रावों वाली होती है (" घाटालः " घाटास्यास्ति इति घाटालः) आगे से अत्यन्त उठी हुई होने के कारण (घाटाः— उन्नताननेन, शिरः पश्चात्सन्धौ वा) घाड़ के समान होती है । यह विषम होती है अर्थात् असाध्य होती है तथा बहुत बड़ी होती है । और पकती भी विषम है अर्थात् शीघ्र या देर में पकती है, गहरी या उठी हुई रहकर पकती है तथा ऊपर या कुछ नीचे से पकती हैं । ऐसी विद्रधि सान्निपातिक विद्रधि कहाती है ॥ १ ॥

अथाभिघातसंप्राप्तिमाह—**तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः । क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥१॥**

काष्ठ लोष्ठ पाषाण आदि से चोट लगने पर तथा क्षत होजाने पर अपथ्य करनेवाले रोगी के क्षत और चोट की गरमी वायु से विस्तारित होकर अर्थात् फैलकर रक्तसहित पित्त को कुपित करती है ॥ १ ॥

ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः ।
आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येष पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ १ ॥

उस से ज्वर, प्यास और दाह उस रोगी को होजाते हैं । यह आगन्तुक विद्रधि कहाती है तथा इस के लक्षण पित्तविद्रधि के समान होते हैं ॥ १ ॥

अथ रक्तजमाह—**कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः । पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १ ॥**

रक्तजविद्रधि काले फोड़े या फुंसियों से युक्त होती है ("कृष्णः स्फोटावृतः" ऐसे पाठ भी मिलते हैं वहां पर काले रंग की, तथा पिड़िकावाली होती है) । श्याम रंग की होती है, तीव्रदाह तीव्रपीड़ा तथा तीव्रज्वर होता है । पित्तविद्रधि के लक्षण इस रक्तविद्रधि में होते हैं ॥ १ ॥

उक्ता विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥ १ ॥

इन सब विद्रधियों में सान्निपातिक विद्रधि असाध्य है ॥ १ ॥

अभ्यन्तरविद्रधिकारणमाह—

अभ्यन्तरानतस्तूर्ध्वं विद्रधीन्संप्रचक्षते।
गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कसंसृष्टभोजनात्॥ १॥

अब आगे अभ्यन्तर विद्रधियों को कहेंगे। गुरु, असात्म्य, विरुद्ध अन्नों के खाने से, शुष्क भोजन तथा संसृष्ट भोजन खाने से॥ १॥

अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः।
पृथक्संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम्।
वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम्॥ २॥

अत्यन्त मैथुन करने से, अत्यन्त व्यायाम करने से, वेगों के रोकने से, अत्यन्त विदाही पदार्थ खाने से वातादि दोष पृथक् २ रहकर या एकत्र कुपित होकर गुल्म के सदृश घनी तथा वल्मीक के समान चारों ओर से उठी हुई अन्तर्विद्रधि को कर देते हैं॥ २॥

अथ संस्थानमाह—**गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा।**
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति क्लोम्नि वाऽप्यथवा हृदि॥१॥

गुदा में, बस्ति के मुख में अर्थात् बस्ति के मुंह में आश्रित मांसादि में, नाभि में, कुक्षि में तथा वंक्षण की दोनों सन्धियों में, दोनों वृक्क अर्थात् गुर्दों के अंदर, तिल्ली के अन्दर, यकृत् के अन्दर, क्लोम (अर्थात् यकृत के नीचे दाईं ओर तिलक नाम का स्थान जिस को क्लोम कहते हैं) अथवा हृदय में ये अन्तर्विद्रधि होती है॥ १॥

अथैषां लक्षणम्—**एवमुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः।**
अधिष्ठानविशेषेण लक्षणानि निबोध मे॥ १॥

इस प्रकार की विद्रधियों के लक्षण बाहर की विद्रधिबों के समान ही होते हैं। स्थान भेद से पृथक् २ लक्षणों को आगे लिखते है॥ १॥

गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता।
नाभ्यां हिध्मा तु साटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम्॥ २॥

जब विद्रधि गुदा में होती है तो अधोवायु रुक जाती है। जब बस्ति के मुंह में या बस्ति के अन्दर होती है तो कष्ट से थोड़ा २ मूत्र निकलता है। जब नाभि में होती है तो हिचकी आती है तथा पेट में आटोप अर्थात् गुडगुडाहट होती है। कुक्षि में अर्थात् दोनों पसवाड़ों के नीचे के भाग में यदि विद्रधि हो जाये तो मार्गों के रुक जाने से वायु का प्रकोप हो जाता है॥ २॥

कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्षणस्थे तु विद्रधौ।
वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्नि श्वासनिरोधनम्॥ ३॥

वंक्षणस्थ सन्धियों में जब विद्रधि हो जाये तो कमर और पीठ में तीव्र

पीड़ा होती है। दोनों गुर्दों में यदि विद्रधि हो तो पार्श्व संकुचित होते जाते हैं। प्लीहा या तिल्ली के अन्दर यदि विद्रधि हो जाये तो श्वास अथवा उच्छ्वास का निरोध अर्थात् रुकावट (Suffocation) होती हैं ॥ ३ ॥

सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते।
श्वासो यकृति हिक्का च पिपासा क्लोमजेऽधिका ॥ ४ ॥

यदि हृदय में विद्रधि हो तो सारे अंगों में तीव्र पीड़ायें होती हैं, तथा खांसी भी होती है। यदि यकृत् में विद्रधि हो तो श्वास तथा हिचकी होती है। और यदि क्लोम में विद्रधि हो तो प्यास अधिक लगती है ॥४॥

अथ स्रावनिर्गममाह—**नाभेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः।**
अधः स्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ १ ॥

नाभि से ऊपर के स्थान में हुई २ अन्तर्विद्रधियें फूटकर ऊपर मुंह आदि स्रोतों के मार्ग से रक्तपीप के रूप में निकलते हैं। नाभि से नीचे बस्ति आदि में होने वाली विद्रधियें गुदादि नीचे के मार्गों से रक्त पीप आदि द्वारा निकल जाती हैं। परन्तु नाभि में होने वाली विद्रधि दोनों ओर के मार्गों से अर्थात् मुंह और गुदा के मार्गों से फूटकर निकल जाती हैं। जो विद्रधियें फूटकर गुदा के मार्ग से निकल जाती हैं उनके होने पर मनुष्य जीवित रह जाता है। परन्तु जो विद्रधियें मुंह के मार्ग से फूटकर निकलती हैं उनके रहने पर मनुष्य नहीं जीता ॥ १ ॥

उक्तं हारीतेन—**ऊर्ध्वं प्रपन्नेषु मुखान्नराणां प्रवर्ततेऽसृक्सहितो हि पूयः।**
अधःप्रपन्नेषु च पायुमार्गाद्द्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह नाभिजे च१॥

यदि बिद्रधियें ऊपर होकर फूटती हैं तथा नाभि से ऊपर के स्थानों में होती हैं तो रक्त तथा पीप मुंह से निकलता है। यदि विद्रधियें नाभि से नीचे होती हैं और नीचे के मार्ग से फूटती हैं तो गुदा द्वारा पीप तथा रक्त निकलता है यदि नाभि में विद्रधि होती है तो ऊपर मुंह से तथा नीचे गुदा से दोनों ओर से रक्त तथा पीप फूटकर निकलती है ॥ १ ॥

अथ स्रावविषयं साध्यासाध्यत्वमाह—

हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः।
जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ १ ॥

हृदय, नाभि तथा बस्ति की विद्रधियों के अतिरिक्त शेष जितनी अन्तर्विद्रधियें हैं वे यदि बाहर की ओर मुंह करके शरीर से बाहर फूट निकलें तो रोगी कभी जी भी जाता है। परन्तु हृदय, नाभि तथा बस्ति में अर्थात मर्मस्थानों में होनेवाली ये तीनों विद्रधियां बाहर फूटें या अन्दर इन से रोगी कभी नहीं बचता। अर्थात् अवश्य मृत्यु होती है ॥ १ ॥

अथोक्तं भोजेन—**असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्वोऽपक्वश्च विद्रधिः।**

संनिपातोत्थितोऽप्येवं पक्क एव तु बस्तिजः ॥ १ ॥

मर्मस्थान पर होनेवाला विद्रधि पक्क हो या अपक्व हो वह असाध्य होता है। सन्निपातज विद्रधि भी पक्व हो या अपक्व वह भी असाध्य होता है। बस्ति में हुआ २ विद्रधि पकने पर असाध्य होता है ॥ १ ॥

त्वग्जो नाभेरधो यश्च साध्यो नोपरि नाभिजः ॥ २ ॥

जो विद्रधि नाभि से नीचे त्वचा पर हो वह साध्य होता है और जो विद्रधि नाभि के ऊपर होता है वह असाध्य होता है ॥ २ ॥

पुनः साध्यासाध्यत्वमाह—साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सांनिपातिकः।
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥ १ ॥

शेष पांचों विद्रधियें साध्य हैं, केवल सान्निपातिक विद्रधि असाध्य है। आम, पक्क तथा विदग्धत्व, शोथ के समान ही विद्रधियों का जानना चाहिये ॥१॥

अथ तेषामभ्यन्तरेष्वसाध्यमाह—

आध्मानबद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम्।
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥
आमो वा यदि वा पक्को महान्वा यदि वेतरः।
सर्वो मर्मोत्थितत्वात्तु विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥ २ ॥

जिस विद्रधि रोगी को आध्मान हो, मूत्र रुक जाये, वमन हो, प्यास हो तथा हिचकी हो, पीड़ा होती हो, श्वास होता हो तो ऐसा रोगी नहीं बचता है। विद्रधि चाहे आम अर्थात् अपक्व हो चाहे पक्व हो, महान हो या छोटी हो, सभी प्रकार की मर्म पर उत्पन्न हुई २ विद्रधि कष्ट साध्य होती है ॥ २ ॥

हृन्नाभिबस्तिजः पक्को वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः।
मुष्टिप्रमाणो गुल्मस्तु विद्रधिस्तु ततः परम् ॥ ३ ॥

हृदय, नाभि तथा बस्ति में होने वाली विद्रधि यदि पक जाये तो असाध्य होती है। सान्निपातिक विद्रधि भी असाध्य है।

मुष्टि के प्रमाण गुल्म होता है, और बिद्रधि उस से भी बड़ी होती है ॥३॥

गुल्मस्तिष्ठति कोष्ठेषु विद्रधिर्मांसशोणिते।
विद्रधिः पच्यते यस्माद्गुल्मश्चात्र न पच्यते ॥ ४ ॥

गुल्म तो कोष्ठों में उत्पन्न होता है और विद्रधि मांस और खून में होती हैं। विद्रधि इसी कारण पक जाती है और गुल्म नहीं पकता है ॥ ४ ॥ इति विद्रधिनिदानम् ॥

अथ स्तनविद्रधिनिदानम्।

एवमेव स्तनशिराः संवृता वाऽथ योषिताम्।
सूतानां गर्भिणीनां च संभवेच्छ्वयथुर्घनः ॥ १ ॥

इसी प्रकार से प्रसूता स्त्रियों की तथा गर्भवती स्त्रियों की स्तन की शिरायें संवृत अर्थात् रुक जाती हैं और घनी सूजन वहां होजाती हैं इसे स्तनविद्रधि कहते हैं ॥ १ ॥

स्तने स्त्रियाः सदुग्धे वा बाह्यविद्रधिलक्षणः।
नाडीनां सूक्ष्मवक्त्रत्वात्कन्यानां न स जायते ॥ २ ॥

स्त्री के स्तन दूध से युक्त हों तो वह स्तनविद्रधि बाह्यविद्रधि के लक्षणों जैसा होता है। कन्याओं की नाडियें तथा शिरायें सूक्ष्म तथा वक्र अर्थात् टेढ़ी होती है इस कारण कन्याओं को स्तनविद्रधि नहीं होती है ॥२॥ इति स्तनविद्रधिनिदानम् ॥

अथातो विद्रधिचिकित्सां व्याख्यास्यामः।

रसालफलतुल्यो यः शोफो बाह्योऽथ वाऽऽन्तरः।
पृथग्दाहरुजानाहकारको विद्रधिः स्मृतः ॥ १ ॥

आम के फल के समान जो सूजन अन्दर अथवा बाहर पृथक् २ हुई हो। जिस में दाह हो, आनाह हो ऐसी सूजन को विद्रधि कहते हैं ॥ १ ॥

अथ जलौकापातनम्—जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ।
मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २ ॥

सभी प्रकार की विद्रधियों में जोंक लगाकर खून निकलवा देना चाहिये। मृदु विरेचन देना चाहिये, हलका अन्न खिलाना चाहिये तथा पित्तविद्रधि के अतिरिक्त स्वेद देना चाहिये ॥ २ ॥

अथ वातविद्रधौ—व्याघ्रीमूलककल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः।
सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ १ ॥

छोटी कटेली की जड़ का कल्क कर के बसा, तेल तथा घृत से मिलाकर कोसा २ लेप अनेक बार करने से वातविद्रधि में लाभ होता है ॥१॥

स्वेदोपनाहाः कर्तव्याः शिग्रुमूलसमान्विताः।
पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भसा।
गुग्गुल्वेरण्डतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ २ ॥

सुहांजनें की जड़ के कल्कादि से मिलाकर स्वेद तथा उपनाह करने चाहियें। तथा पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, दशमूल के दश द्रव्य, हरड़, इन सब का क्काथ कर के उस क्वाथ में गूगल वा एरण्ड का तेल मिलाकर पिलावे तो वातविद्रधि शान्त हो जाती है ॥ २ ॥

अथ पित्तविद्रधौ—पैत्तिके सारिवालाजामधुकैः शर्करायुतैः।
प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥ १ ॥

शारिवा, लाजा, मुलठ्ठी, खांड इन सबको पीसकर पैत्तिक विद्रधि पर लेप

करे । अथवा क्षीर काकोली या बिदारी, खस और चन्दन इन सबको पीसकर दूध से मिलाकर लेप करे तो भी पित्तज विद्रधि शान्त होती है ॥ १ ॥

अथ त्रिफलादिः—पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ।
पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ॥ २ ॥

अथबा त्रिफला के क्वाथ में त्रिवी का एक अक्षभर कल्क मिलाकर पिलावें । और पञ्चवल्कल अर्थात् बड़, पीपल, गूगल, पिलखन, बेत इनकी छाल के कल्क को घी से पीसकर लेप करें तो भी पित्तविद्रधि शान्त होता है ॥२॥

अथ श्लेष्मविद्रधौ—त्रिफलाशिग्रुवरुणदशमूलाम्भसा पिबेत् ।
गुग्गुलुं मूत्रसंयुक्तं विद्रधौ कफसंभवे ॥ १ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, सुहांजने की जड़, वरने की जड़, दशमूल के द्रव्य इन सब में से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर सबको समभाग कर क्वाथ करले । इस क्वाथ में शुद्ध गूगल और गौ का मूत्र मिलाकर पिलावें तो कफज विद्रधि शान्त होता है ॥ १ ॥

अथ स्वेदनम्—इष्टकासिकतालोहाश्वशकृत्तुषपांसुभिः ।
मूत्रैरुष्णैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधौ ॥ २ ॥

ईंट, रेता, लोहा, घोड़े की लीद, तुष की धूलि, गरम २ गोमूत्रादि मूत्र इन में से किसी एक से भी निरन्तर कफज विद्रधि को स्वेद करता रहे ॥ २ ॥

अथ रक्तागन्तुजौ—विद्रधौ कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तजे ।
पित्तविद्रधिवत्कुर्यात्क्रियां निरवशेषतः ॥ १ ॥

रक्तज विद्रधि तथा आगन्तुक विद्रधि में कुशल वैद्य पित्त विद्रधि के समान ही सब क्रिया करे ॥ १ ॥

अथ सामान्यविधिः—

शिग्रुदीप्यवरुणद्वियामिनीकुञ्जराशनकृतः कषायकः ।
बोलचूर्णसहितोऽन्तरुत्थितं विद्रधिं विदलयेदसंशयम् ॥१॥

सुहांजने की जड़, लालचीता या काली जीरी, बरने की छाल, अजवायन तथा अजमोद, पिप्पल वृक्ष की छाल इन सबको समभाग लेकर क्वाथ बनाकर बोल चूर्ण डालकर पिलाने से अन्तर्विद्रधि को निस्सन्देह नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

इति सौभाञ्जनादिक्वाथः ।

अथ वरुणादिक्वाथः—कासीससैन्धवशिलाजतुहिङ्गुचूर्ण-
मिश्रीकृतो वरुणवल्कलजः कषायः ।
अभ्यन्तरोत्थितमपक्वमतिप्रमाणं
नृणामयं जयति विद्रधिमुग्रशोफम् ॥ १ ॥

वरने की छाल का क्वाथ करे उसमें शुद्ध कासीस, सेंधानमक, शिलाजीत

और हींग इन सबका चूर्ण डालकर पिलावे तो अन्तर्विद्रधि यदि अपक्क हो, अति महान हो तथा भयंकर सूजन वाली हो तो भी इससे नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अथ श्वेतपुनर्नवादिः—**श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं च वरुणस्य च।**
जलेन क्वाथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ १ ॥

श्वेत पुनर्नवा की जड़ तथा वरणे की जड़ इन दोनों का क्वाथ एकत्र कर पिलावें तो अपक्क विद्रधि दूर हो जाती है ॥ १ ॥

अथ यवादिलेपः—**यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत्।**
विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ॥ १ ॥

जौ गेहूं और मूंग इनको पकाकर पीस ले और इसका प्रलेप कर दे तो अपक्क विद्रधि क्षण में ही दूर हो जाती है ॥ १ ॥

अथ दशमूलादिः—**दशमूली छिन्नरुहा पथ्या दारुपुनर्नवा।**
ज्वरविद्रधिशोफेषु शिग्रुविश्वयुतो हितः ॥ १ ॥

दशमूल के दश द्रव्य, गिलोय, हरड़, देवदारु, पुनर्नवा, सुहांजना तथा सोंठ इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करके पिलावें तो ज्वर में तथा विद्रधि और शोथ में हितकर है ॥ १ ॥

अथ वरुणादिगणः—**वरुणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ।**
ऊषकादिप्रतीवापं पिबेत्संशमनाय वै ॥ १ ॥

वरुणादिगण का क्वाथ अर्थात् वरना, श्वेतझिण्टी, नीलीझिण्टी, शतावर, चीता, अंकोल, बिल, मेढासिंही, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, दोनों प्रकार के करञ्ज, अरणी, हरड़, सुहांजना, दर्भ की जड़, हिन्ताल या महाताल इन सब द्रव्यों का क्वाथ कर के ऊषकादिगण का प्रक्षेप डालकर (ऊषकादिगण में ऊषक क्षारमृत्तिका, नीलाथोथा, हींग दोनों प्रकार के कसीस, सेंधानमक तथा शिलाजीत इन सब को ऊषकादि कहते हैं) पिलावें तो अपक्क मध्यविद्रधि शान्त होती है ॥१॥

अथ मानकमूलादि—

शमयति मानकमूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्भसा पीतम्।
अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ १ ॥

मानकन्द की जड़ को शहद तथा चावलों के जल से मिला पिलावें तो अन्तर्विद्रधि शीघ्र ही नष्ट होजाती है ॥ १ ॥

अथ हरीतक्यादिचूर्णम्—

हरीतकीसैन्धवधातकीनां रजो घृतक्षौद्रयुतं प्रयुक्तम्।
निहन्ति लीढं ध्रुवमेव पुंसामन्तर्भवं विद्रधिमुग्ररूपम् ॥ १ ॥

हरड़, सेंधानमक, धाय के फूल इन को समभाग लेकर चूर्ण करले इसे घी तथा शहद से मिलाकर चटावें तो मनुष्यों की उग्र रूपवाली अन्तर्विद्रधि भी

अवश्य नष्ट होजाती है ॥ १ ॥

अथ सौभाञ्जनादि—सौभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः।
अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ १ ॥

सुहांजने की छाल वा जड़ का क्वाथ हींग और सेंधानमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल पिलाने से शीघ्र ही विद्रधि को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ सौभाञ्जनलेप—शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रलेपयेत्।
तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ २ ॥

सुहांजने की जड़ जल से धोकर शिला पर पीसकर विद्रधि पर लेप करदे। तथा उस के निकले हुए रस को शहद से मिलाकर पीवे तो अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है ॥ २ ॥

अथ त्रिफलागुग्गुलुः—

त्रीणि पलानि फलत्रितयस्य द्वे तु पले तुलिते मगधायाः।
पञ्च पलानि भवन्ति पुरस्य स्यात्स फलत्रिकगुग्गुलुयोगः ॥ १ ॥
पक्केषु विद्रधिषु पूयमतिस्रवत्सु
नाडीषु च व्रणगदेषु भगंदरेषु।
स्याद्गण्डमालिषु फलत्रिकगुग्गुलुः स्यात्
पथ्यं फलत्रिकपुरे घृतभोजनं च ॥ २ ॥

हरड़ एक पल, बहेड़ा एक पल, आंवला एक पल, पीपल दो पल, शुद्ध गूगल पांच पल इन सब को पृथक २ पीसकर चूर्ण कर के एकत्र मिला लेवे। इसे त्रिफलागुग्गुलु कहते हैं। जो विद्रधियें पक गई हों जिन में से अत्यन्त पीप निकलता हो, नाडीव्रणों में, व्रणों में, भगन्दर में। और गण्डमाला में, रोगियों को यह त्रिफला गूगल सेवन कराना चाहिये। इस में पथ्य के लिये घी से मिला हुआ भोजन देना चाहिये ॥ २ ॥

अथ वरुणकादिघृतम्—

सिद्धं वरुणादिगणेन विधिना तत्कल्कपाचितं सर्पिः।
अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्द्यं च ॥ १ ॥

पूर्वलिखित वरुणादि गण के क्वाथ, तथा वरुणादिगण के कल्क से विधिपूर्वक घी पकालें। अर्थात् वरुणादिगण का क्वाथ ४ सेर, गौ का घी १ सेर, वरुणादिगण का कल्क एक पाव, एकत्र मिलाकर घृतपाक कर लें। इस घी के सेवन से उग्र अन्तर्विद्रधि, माथे का शूल और अग्निमांद्य ॥१॥

गुल्मानपि पञ्चविधान्नाशयतीदं यथाऽम्बु वायुसखम्।
एतत्प्रातः प्रपिबेद्भोजनसमये निशास्येऽपि ॥ २ ॥

तथा पांचों प्रकार के गुल्म इस प्रकार से नष्ट होते हैं जैसे जल से अग्नि।

इसे प्रातःकाल पीवे, भोजन के समय पीवे तथा रात के आरम्भ में पीवे ॥२॥ इति वरुणकादिघृतम् ॥

अथ रसगन्धकयोग—**वरुणादिकषायेण रसगन्धककज्जलीम् ।**

भुक्त्वा निहन्ति माषैकां बाह्यमन्तश्च विद्रधिम् ।

शुद्ध पारा तथा शुद्ध गन्धक की कज्जली करे । इस कज्जली को एक माषा भर खाकर (एक रत्ति से आरम्भ करके क्रमशः बढ़ावे) साथ में वरुणादिगण का क्वाथ पीवे तो बाहर की विद्रधि तथा अन्तर्विद्रधि दोनों नष्ट होती हैं ॥१॥

अथ पक्वे क्रिया—**अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तद्व्रणवत्क्रिया ॥ १ ॥**

ये सभी क्रियायें अपक्व विद्रधि के लिये कही हैं । पक्वविद्रधि में व्रण की चिकित्सा के समान सभी चिकित्सा करे ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

आमस्थे रेचनं चैव लेपः स्वेदोऽस्रमोक्षणम् ।

जीर्णाः श्यामाककलमाः कुलत्था लशुनानि च ॥ १ ॥

आम अर्थात् अपक्व विद्रधि में विरेचन देवे, लेप करे, स्वेद देवे, रक्त निकलवावे । पुराने सांवां, कलमधान्य, कुलथ तथा लसुन खावे ॥ १ ॥

रक्तशिग्रुश्च निष्पावः कारवेल्लं पुनर्नवा ।

श्रीपर्णं चित्रकं क्षौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः ॥ २ ॥

लाल सुहांजना, सेम, करेला, पुनर्नवा, गणयारी, चीता, शहद तथा शोथरोग में कहे हुए सभी पथ्य सेवन करे ॥ २ ॥

पक्वावस्थे शस्त्रकर्म पुराणा रक्तशालयः ।

घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसाः ॥ ३ ॥

जब विद्रधि पक्वावस्था में हो तो शस्त्र से काम लेकर काट छांट करे । पुराने शाली चावल खिलावे । घी, तेल, मूंग का रस, विलेपी तथा धन्वमांस के रस पिलावे ॥ ३ ॥

शालिञ्चशाकं कदली पटोलं हिमवालुका ।

चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वं चापि व्रणोदितम् ॥ ४ ॥

शालिञ्चशाक, केला, परवल, कपूर, चन्दन, गरम करके शीतल किया हुआ पानी, तथा अन्य सभी व्रणरोग में कहे हुए पथ्य देवे ॥ ४ ॥

नराणां विद्रधौ व्याधौ यथावस्थं यथाबलम् ।

पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभिः ॥ ५ ॥

मनुष्यों के विद्रधि रोग में अवस्था तथा बलानुसार ये सभी पथ्य महर्षियों ने कहे हैं ॥ ५ ॥

शोफिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामपि यानि च ।

क्रमादामे च पक्के च विद्रधौ वर्जयेन्नरः ॥ ६ ॥

जो अपथ्य शोथरोग में कहे हैं वे ही अपक्व विद्रधि में समझने चाहियें। तथा जो अपथ्य व्रण में कहेंगे वे पक्व विद्रधि में समझ कर त्याग देने चाहियें ६

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भा नाम्नि भाषाटीकायां विद्रधिचिकित्सा समाप्ता।

अथ व्रणशोथनिदनाम्।

अथ तस्य प्राग्रूपम्—एकदेशोत्थितः शोफो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ॥ १ ॥

शरीर में एक स्थान में सूजन हो तो व्रण का पूर्वरूप समझो ॥ १ ॥

अथ तस्य संख्यामाह—षड्विधः स्यात्पृथक्सर्वशोणितागन्तुभेदतः ॥ १ ॥

व्रण का शोथ छह प्रकार का होता है। वातजव्रणशोथ, पित्तजव्रणशोथ, कफज व्रणशोथ, सन्निपातजव्रणशोथ, रक्तजव्रणशोथ तथा आगन्तुक कारणों से होने वाला आगन्तुज व्रणशोथ ॥ १ ॥

अथ तेषां लक्षणमाह—शोफाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोफलक्षणैः।
विशेषः कथ्यते चैषां पक्वापक्वविनिश्चये ॥ १ ॥

ये छह प्रकार के शोथ पूर्व कहे हुए शोथ रोग के लक्षणों के अनुसार ही लक्षण वाले होते हैं। परन्तु शोथ के पक्व या अपक्व का निश्चय करने के लिये विशेष लक्षण लिखते हैं ॥ १ ॥

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिराच्चिरम्।
कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागन्तुसमुद्भवः ॥ २ ॥

वातिक व्रणशोथ विषम पकता है अर्थात् सूजन का कुछ भाग पकता है कुछ नहीं। पैत्तिकव्रणशोथ शीघ्र ही पक जाता है, कफ का शोथ देर में पकता है। रक्तज शोथ तथा आगन्तुक शोथ पित्तशोथ के समान ही शीघ्र पकते हैं ॥ २ ॥

आमशोथ लक्षणम्—मन्दोष्मताल्पशोफत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता।
मन्दवेदनता चैव शोफानामामलक्षणम् ॥ ३ ॥

मन्द २ ऊष्मा या गरमी का रहना, थोड़ी सूजन होना, सूजन का स्थान कठिन होना, त्वचा के साथ सूजन का रंग मिलना, मन्द २ वेदना होना ये सभी शोथों के आमावस्था के लक्षण हैं ॥ ३ ॥

पच्यमानशोथ लक्षणम्—दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव विपच्यते।
पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ४ ॥

सूजन के अन्दर का स्थान आग से जलता हुआ सा प्रतीत होता है, क्षार से मानों विपक्व अर्थात् पक रहा होता है। मानों कीड़ियों के दल के दल उस

स्थान को काट रहे हों। तथा वह स्थान (छिद्यते) अन्दर से कट रहा हो ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते।
पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ५ ॥

मानों शस्त्र से भेदन किया जा रहा हो, मानों डण्डे से पीड़ित किया जा रहा हो। मानो हाथों से दबा कर पीड़ित किया जा रहा हो, अन्दर से सुईयों से मानों चुभोया जारहा हो ॥ ५ ॥

सोषचोषो विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावपीड्यते।
आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ ६ ॥

(सोषचोषः) दाहयुक्त होता है तथा ऐसा प्रतीत होता है मानों पास अग्नि रखने से (जैसा उस का) सन्ताप प्रतीत होता हो उस सन्ताप से युक्त होता है। विवर्ण अर्थात् त्वचा के रंग सा कुछ कुम्हलाया हुआ सा मैला होता है। उंगलि से मानो अवपीड़ित होरहा|हो ॥ आसन पर, पलंग पर सोने के समय तथा स्थान में अर्थात् चलते फिरते उठते बैठते ऐसा प्रतीत होता है मानों उस स्थान पर बिच्छुओं ने डंक मारा हुआ हो ॥ ६ ॥

न गच्छेदाततः शोफो भवेदाध्मातबस्तिवत्।
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

फैला हुआ शोथ कम नहीं होता। आध्मात अर्थात् वायु से पूर्ण हुई २ बस्ति के समान शोथ फैला हुआ निरन्तर रहता है। ज्वर, तृष्णा और अरुचि यह पच्यमान शोथ के लक्षण हैं अर्थात् जब शोथ पक रहा होता है तब ये लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

अथ पक्वशोथ लक्षणम्-वेदनोपशमः शोफोऽलोहितोऽल्पो न चोन्नतः।
प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥

दाहादि वेदना की शान्ति होती है। सूजन का रंग अलोहित अर्थात् श्वेत-पीला वा भूरा रंग का होता है, सूजन छोटी होती है तथा ऊंची उठी हुई नहीं होती। सूजन पर मांस शिथिल हो जाने के कारण झुर्रियें पड़ जाती हैं। तोद अर्थात् चोभ होती है तथा कण्डु अर्थात् खुजली बार २ होती है (ये दोनों वात कफ के चिन्ह हैं) ॥ ८ ॥

उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम्।
बस्ताविवाम्बुसंचारः स्याच्छोफेऽङ्गुलिपीडिते ॥ ९ ॥

ऊषा चोष तृष्णादि उपद्रव प्रशान्त हो जाते हैं। सूजन कुछ नीची होजाती है अथवा अंगुली से दबाने से नीची हो सकती है। कुछ २ त्वचा फट जाती है। बस्ति में अर्थात् चमड़े के किसी गोले में पानी भरें उसे दबाने से जैसे वह पानी

इधर उधर हिलता है इसी प्रकार पक्व शोथ को उंगली से दबाने पर पीप इधर उधर हिलती है ॥ ६ ॥

पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते।
भक्ताकाङ्क्षा भवेच्चैव शोफानां पक्वलक्षणम् ॥ १० ॥

सारे शोथ को दबावें तो एक स्थान में ही पीड़ा होगी अन्यत्र नहीं। भूख लगती है। ये सभी लक्षण शोथ के पक्व जाने पर होते हैं ॥ १० ॥

नर्तेऽनिलाद्रुङ्न विना च पित्तं दाहः कफं चापि विना न पूयः।
तस्माद्धि सर्वं परिपाककाले दोषैस्त्रिभिर्यान्ति गदा विपाकम् ॥ ११ ॥

वात के बिना तोदादि रूप पीड़ा नहीं होती। पित्त के बिना दाह नहीं होता है। तथा कफ के बिना पीप नहीं बनती। इस कारण सभी रोग परिपाक के समय तीनों दोषों से पकते हैं॥ ११॥ पाककाले त्रिदोषसंबंधमाह—

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य।
पचत्यतः शोणितमेष पाको मतः परेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १२ ॥

कालान्तर से कुपित हुआ २ पित्तदोष, वात और कफ को वश में करके अर्थात् हीन करके रक्त को पकाकर पूय अर्थात् पीप बनाता हैं। कुछ विद्वान इसे द्वितीय पाक मानते हैं (अर्थात् प्रथम मत में कफ से पीप बनता है और त्रिदोष मिलकर बनाते हैं। इस दूसरे मत में त्रिदोष तथा रक्त मिलकर रक्त का पीप बनाते हैं।) ॥ १२ ॥

कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक्।
पक्वलिङ्गं ततः स्पष्टं यत्र स्याच्छोथशीतता ॥
त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ १३ ॥

कफज शोथों में रक्त गम्भीर पाक को प्राप्त होता है अर्थात् अन्दर से सूजन गहराई तक पक्व जाती है। उस समय पक्व लक्षण जानने के लिये यह लक्षण होने चाहियें। कि शोथ का स्थान ऊपर से शीत हो, त्वचा के सवर्ण ही शोथ का रंग हो, अल्प पीड़ा हो, पत्थर के समान घनस्पर्श सूजन हो। ये लक्षण हों तो वैद्य संशय में न पड़कर उस कफज शोथ को पका हुआ समझकर उचित चिकित्सा करे (सुश्रुत ने लिखा है, " कफजेषु खलु शोथेषु गम्भीरगतित्वादभिघातजेषु वा केषुचिदसमस्तं पक्वलक्षणं दृष्ट्वा पक्वमपक्वमिति भिषङ्मोहमुपैति। यत्रहि त्वक् सवर्णता शीतशोथता अल्परुजता अश्मवद्घनता च, न तत्र मोहमुपेयात् " (सु० सू० स्था० अ० १७) ॥ १३ ॥

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वातेरितः संदहति प्रसह्य।
तथैव पूयोऽप्यविनिसृतो हि मांसं शिरास्नायु च खादतीह १४

जैसे अग्नि फूस से भरे कोठे में लगकर वायु से प्रेरित हुई २ अन्दर ही अन्दर फूस को भस्म करती जाती है, इसी प्रकार से यदि पीप को बाहर न

निकालकर अन्दर ही अन्दर रहने दिया जाये तो मांस, शिरा तथा स्नायुओं को वह खाती रहती है ॥ १४ ॥

आमं विपच्यमानं च सम्यक्पक्वं च यो भिषक्।
जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १५ ॥

सूजन की आमावस्था, पच्यमानावस्था तथा पक्वावस्था को जो जानता है वही वैद्य है। शेष सभी अज्ञानी चिकित्सक चौर वृत्ति करने वाले हैं, वैद्य नहीं हैं ॥१५॥

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते।
श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥

जो कच्चे फोड़े को अर्थात् आमावस्था में ही शोथ को छेदन कर देता है या operation करता है तथा जो चिकित्सक पक्वावस्था में अर्थात् फोड़े के पक जाने पर भी उपेक्षा करता है और उसे नहीं चीरता, ये दोनों ही चण्डाल के समान हैं। क्योंकि अनिश्चित कर्म करते हैं निश्चित लाभदायक कर्म नहीं करते १६

द्विधा व्रणः परिज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः।
दोषैराद्यस्ततोऽन्यश्च शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १७ ॥

व्रण दो प्रकार के हैं एक शारीर दूसरा आगन्तुक। शारीरव्रण वातादि दोषों से होते हैं। और आगन्तुक व्रण शस्त्रादि के क्षत के कारण होते हैं ॥ १७ ॥

अथ वातिकमाह—स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः।
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ १८ ॥

वातिकव्रण स्तब्ध अर्थात् अचल होता है, छूने में कठिन होता है, उसमें से मन्द स्राव निकलता है। अत्यन्त पीड़ायुक्त होता है, शूल से मानो कोई चुभो रहा हो ऐसी चोभ वाला होता है। फड़फड़ाता है तथा श्याम रंग का होता है ॥ १८ ॥

अथ पैत्तिकमाह—तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुःखावदारणैः।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ १९ ॥

पैत्तिकव्रण में तृष्णा होती है, मोह होता है, ज्वर होता है, क्लेद अर्थात् आर्द्रता रहती है, दाह होता है त्वचा फट जाती है। व्रण में से दुर्गन्ध आती है और दुर्गन्धित स्राव निकलता है ॥ १९ ॥

अथ कफजमाह—बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ २० ॥

कफज व्रण अति पिच्छिल होता है, भारी होता है, स्निग्ध होता है, निश्चल होता है, मन्द वेदना युक्त होता है, पाण्डु रंग का होता है, कुछ २ गीला होता है तथा देर में पकता है ॥ २० ॥

अथ रक्तजमाह—रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद्द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयः।
त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ॥ २१ ॥

रक्तज व्रण लाल रंग का होता है तथा उस में से रक्त निकलता है । इस रक्तव्रण के अनेक भेद हैं रक्त के साथ एक २ दोष मिलने से द्वन्द्वज या द्विजव्रण कहाता है । तथा रक्त के साथ दो २ दोष मिलने से त्रिजव्रण कहाता है इसी प्रकार से रक्त के साथ तीनों दोष मिलने से सन्निपातजव्रण कहाता है ऐसी कल्पना भी कर लेनी चाहिये । इस प्रकार व्रणों का प्रसार १५ प्रकार का हुआ यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, रक्तज, रक्तवातज, रक्तपित्तज, रक्तकफज, रक्तवातपित्तज, रक्तवातकफज, रक्तपित्त-कफज, रक्तवातपित्तकफज ॥ २१ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—**धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः ।**
गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥ २२ ॥

जो व्रण त्वचा तथा मांस में हों, मर्मरहित स्थानों पर हों, ज्वर तृष्णादि उपद्रवों से रहित हों, नया ही हो अच्छे काल में अर्थात् हेमन्त तथा शिशिर में हुआ हो, ऐसा व्रण तरुण धीमान पुरुष के हो तो सुखसाध्य होता है । और ऊपर लिखे हुए गुणों में से जो कुछ बातों में हीन होता है वह व्रण कष्ट साध्य होता है ॥ २२ ॥

जिस व्रण में पूर्वलिखित कोई गुण न हों तथा अत्यधिक उपद्रवों से युक्त हो वह असाध्य होता है ॥

अथ दुष्टव्रणलिङ्गमाह—**सर्वैर्विहीनोऽसाध्यस्तु तथैवोपद्रवान्वितः ।**
पूतिः पूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्सङ्गी चिरं स्थितः ॥
दुष्टव्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः ॥ २३ ॥

जिस व्रण में से दुर्गन्ध आती हो, पीप आता हो तथा अति दुष्ट रक्त बहता रहता हो, जिसमें कोटर या छिद्र हो गये हों, जो पुराना हो गया हो तथा जिसमें अतिगन्ध आदि आती हो, अर्थात् जिसका वर्ण, स्राव, वेदना, आकृति सब अति अधिक हों तथा दूषित हों, जिसमें शुद्ध लक्षण व्रण के न मिलते हों, ऐसा व्रण दुष्ट होता है ॥ २३ ॥

अथ शुद्धव्रणलक्षणमाह—**जिह्वातलाभः सुश्लक्ष्णः स्निग्धो विगतवेदनः ।**
सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः ॥२४॥

जिह्वा तल के समान है आभा जिसकी ऐसा मुलायम, श्लक्ष्ण तथा स्निग्ध जो व्रण हो, जिसमें वेदना थोड़ी हों, जो सुव्यवस्थित हो अर्थात् ऊंचा नीचा न हो परन्तु सम हों, जिस में से कुछ स्राव न निकलता हो उसे शुद्ध व्रण कहते हैं २४

अथ रोहनोन्मुखम्—**कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ।**
स्थिराश्च पिटिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ॥ २५ ॥

जिस व्रण के किनारे कबूतर के रंग के समान पाण्डु धूसर वर्ण के हों, तथा स्राव से रहित हों स्थिर अर्थात् कठिन हों तथा छोटी २ पिड़िकायें या फुंसियें

उत्पन्न होती जाती हों (" चिपिटिकावन्तः " जहां ऐसा पाठ हो वहां पर अभिप्राय यह है कि किनारों पर चिपिटिका अर्थात् मांस की खाल सी या मांस की झुर्रियां सीं पड़ती जाती हैं) तो समझना चाहिये कि वह व्रण अवश्य रोहन हो हो रहा है अर्थात् भरकर ठीक हो रहा है ॥ २५ ॥

अथ रूढव्रणलक्षणम्—**रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् ।**
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं तमादिशेत् ॥ २६ ॥

जिस व्रण के मार्ग भर गये हों, जिस में गांठें न पड़ी हों अर्थात् ऊंचा न हो । जिस में सूजन न हो, जिस में पीड़ा न हो, जिस का रंग शरीर की त्वचा के समान हो । जिस का तल समान हो अर्थात् जिह्वातल या हाथ के तल के समान हो, नीचा न हो उस व्रण को सम्यग्रूढ अर्थात् अच्छी प्रकार से भरा हुआ कहते हैं ॥ २६ ॥ व्याधि विशेषे व्रणस्य कृच्छ्रसाध्यत्वम्—

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ २७ ॥

कुष्ठरोगी, दूषी विष सेवन किये हुए रोगी, शोषरोगी, मधुमेहरोगी तथा व्रणों में जिन के और २ व्रण निकल आवें।इन सब रोगियों के व्रण कष्टसाध्य होते हैं

वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत् ।
आगन्तुजो व्रणः सिध्येन्न सिध्येद्दोषसंभवः ॥ २८ ॥

जिस रोगी के व्रण से बसा, मेद, मज्जा तथा मस्तक के भेजे का स्राव निकलता हो वह व्रण यदि चोटपेट लगने से आगन्तुक हो तब तो साध्य होता है । परन्तु यदि वातादिदोषों के कारण ऐसा व्रण हो चुका हो और आगन्तुक न हो तो असाध्य होता है ॥ २८ ॥

रिष्टरूपां गंधविकृतिमाह—**मद्यागर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः ।**
सगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥ २९ ॥

जिन के व्रणों में से मद्य, अगर, घी, चमेली के फूल, पद्म, चन्दन तथा चंपा इन के समान गंध आतीं हो अथवा दिव्य गंध अद्भुत पारिजातादि की आती हो तो समझलो कि वे रोगी मरनेवाले है ॥ २९ ॥

पुनश्चासध्यत्वमाह—**ये च मर्मसु संभूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः ।**
दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिःशीताश्च ये व्रणाः ॥ ३० ॥

जो व्रण मर्मस्थानों में उत्पन्न न होकर भी अत्यन्त पीड़ा करते हों ॥ और जो व्रण अन्दर से अत्यन्त दाह कर रहे हों तथा बाहर से शीतल प्रतीत होते हों ॥

प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ।
प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ ३१ ॥

जिन व्रणों के होने पर प्राण तथा मांस का क्षय होता हो, श्वास, खांसी

अरुचि भी हो गई हो, जिन में से पीप तथा खून अत्यन्त बहता रहता हो, तथा जो व्रण मर्मस्थानों में होगये हों ॥ ३१ ॥

क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः।
वर्जयेदेव तान्वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ ३२ ॥

तथा जिन व्रणों की ठीक २ क्रियानुसार चिकित्सा करें तब भी जो ठीक न होते हों। ऐसे व्रणों की चिकित्सा यशस्वी वैद्य न करें ॥ ३२ ॥ इति व्रणशोथ व्रणनिदानम् ॥

अथ व्रणशोथचिकित्सा।

अथ सप्तोपायाः—**आदौ विम्लापनं कुर्याद्द्वितीयमवसेचनम्।**
तृतीयमुपनाहं च चतुर्थी पाटनक्रिया ॥ १ ॥

व्रणशोथ में आरंभ में विम्लापन करे, दूसरे अवसेचन करे, तीसरे उपनाह करे, चौथे पाटन करे ॥ १ ॥

पञ्चमं शोधनं कार्यं षष्ठं रोपणमिष्यते।
एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ॥ २ ॥

पांचवें शोधन करे, छटे रोपण करे, सातवें वैकृतापह अर्थात् विकृति को हटानेवाली क्रिया करे ॥ २ ॥

अथ विम्लापनम्—**अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या शनैः शनैः।**
विम्लापनार्थं गृह्णीत तलेनङ्गुष्ठकेन वा ॥ १ ॥

चारों ओर से व्रण को तेल घी आदि से मलकर, बांस की नाली से धीरे २ स्वेद देकर, तल से या अंगूठे से व्रण को पकड़ कर मलें इस से व्रणशोथ विम्लापन होता है अर्थात् कुम्हलाकर कम हो जाता है ॥ १ ॥

अथावसेचनम्—**रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः।**
शोफे महति संवृद्धे वेदनावति वा व्रणे ॥ १ ॥

आरंभ में ही विद्वान वैद्य रक्त निकलवादे, यदि सूजन अत्यधिक बढ़ गई हो तथा व्रण में पीड़ा होती हो ॥ १ ॥

यो न याति शमं लेपात्स्वेदसेकापतर्पणैः।
सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥ २ ॥

जो शोथ लेप करने से, स्वेद देने से, अवसेक करने से, अपतर्पण करने से भी शान्त न होती हो, वह भी खून निकलवा देने से शीघ्र ही नष्ट होजाती है ॥ २ ॥

एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः।
रक्तं हि विक्रियां याति तन्मोक्षे नास्ति विक्रिया ॥ ३ ॥

एक ओर तो शोथ को नष्ट करने की सारी क्रियायें हैं, और एक ओर अकेला खून निकलवाना है। रक्त ही है जो शोथ के अन्दर विकृत होता रहता है, उस

रक्त के निकलवा देने से कोई विकार नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

अथ वातशोथे लेपः—**मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च सुरदारु महौषधम्।**
अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ १ ॥

बिजौरा नीबू, अरणी, देवदारु, सोंठ, कटेली, रास्ना इन सब को पीसकर लेप करे तो वातिक शोथ इस से नष्ट होती है ॥ १ ॥

शाखोटप्रलेपः—**कल्कः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः।**
सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ २ ॥

सहोड़े की त्वचा को कांजी से पीसकर कल्क करे उस में किंचित् मात्र घी मिलाकर स्निग्ध करें उसे लेप करें तो वात शोथ इस प्रकार से नष्ट होजाती है जैसे गरुड़ से नाग नष्ट होजाते हैं ॥ २ ॥

पित्तशोथे दूर्वादिः—**दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चन्दनं तथा।**
शीतलैश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः पित्तशोफजित् ॥ ३ ॥

हरीदूब घास, नड़े की जड़, मुलठी, चन्दनलाल, तथा अन्य सब शीतल पदार्थों के लेप से पित्तशोथ नष्ट होता है ॥ ३ ॥

कफशोथेऽजमोदादिः—**अजगन्धाऽश्वगन्धा च काला सरलया सह।**
काम्पिल्लका च शृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥४॥

अजमोद, असगन्ध, "काला" अर्थात् काली त्रिवी या कालाजीरा, सरल काष्ठ अर्थात् चील के पेड़ की छाल, कमीला, काकड़ासिंगी इन सब को समभाग पीसकर लेप करे तो कफशोथ का नाश होता है ॥ ४ ॥

कृष्णादिप्रलेपः—**कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक्सिकता शिवा।**
मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ५ ॥

पिप्पली, पुरानी तिलों की खल, सुहांजने की छाल, रेता, हरड़ इन सब को गोमूत्र से पीसकर कोसा २ प्रलेप करे तो कफजशोथ नष्ट होता है ॥ ५ ॥

रक्तजशोथे लेपः—**न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसशेलुभिः।**
चन्दनद्वयमाञ्जिष्ठायष्टीसूरण गैरिकैः ॥६॥

बड़, गूलर, पीपल, पिलखन, बेत, लसूड़ा इन सब वृक्षों की पृथक् २ छालें एक २ भाग लें, श्वेत चन्दन १ भाग, लाल चन्दन १ भाग लें, मंजीठ, सूरण-कन्द, गेरू इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें ॥ ६ ॥

शतधौतघृतोन्मिश्रैर्लेपो रक्तप्रसादनः।
दाहपाकरुजास्रावशोफनिर्वापणः परः ॥ ७ ॥

सब को पीसकर जल से सौ बार धुले हुए घी से मिलाकर रक्तजशोथ पर प्रलेप करे तो इस से रक्त का विकार दूर होकर रक्तप्रसादन होता है। दाह, पाक, पीड़ा, आस्राव तथा शोथ का सर्वथा नाश होता है ॥ ७ ॥

आगन्तुजे रक्तजे च एष लेपोऽतिपूजितः ॥ ८ ॥

आगन्तुज व्रणशोथ में तथा रक्तज व्रणशोथ में यह लेप अत्यन्त गुणदायक माना गया है ॥ ८ ॥

गण्डकोपे लेपः—कटुतैलान्वितैर्लेपः सर्पनिर्मोकभस्मभिः ।
चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् ॥ ९ ॥

सांप की केंचुली की भस्म करके उसमें कड़वा तेल मिलाकर गण्ड पर लेप किया जाये तो गण्ड की सूजन कम हो जाती है । यदि अत्यन्त प्रकुपित हो अर्थात् सूजन बढ़ी हुई हो तो गण्ड शीघ्र ही फूटकर शान्त हो जाता है ॥ ९ ॥

रात्रौलेप निषेधः—न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ।
न च पर्युषितं नैव शुष्यमाणं च धारयेत् ॥ १० ॥

रात के समय लेप नहीं करना चाहिये । लेप करें भी तो सूखकर गिर पड़ता है । बासी पड़ा हुआ भीगा लेप नहीं करना चाहिये । सूखा हुआ लेप भी नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

व्रणमुखेलेप निषेधः—शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ।
न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते ॥ ११ ॥

व्रण को पीड़न करना हो तो सूखे हुए लेप की उपेक्षा करे उतारे नहीं । ऐसे समय व्रण के मुंह को प्रलेप से न लीपे, इससे दोष निकल जाते अथवा अन्दर रह जाते हैं ॥ ११ ॥

अपोनाहनम्—न प्रशाम्यति यः शोफः प्रलेपादिविधानतः ।
द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥ १२ ॥

जिस सूजन की प्रलेपों के करने से भी शान्ति न होती हो उसको उपनाह करने के लिये पाचनीय द्रव्य लगावे ॥ १२ ॥

अथ तिलाद्युपनाहनम्–सतिलाः सातसीबीजा दध्यम्लैः सक्तुपिण्डकाः ।
सकिण्वकुष्ठलवणाः शस्ताः स्युरुपनाहने ॥ १ ॥

तिल, अलसी के बीज, दही, कांजी, जौ के सत्तु, सुराबीज या यीष्ठ, कूठ, सेंधालवण इन सबको पीसकर पुल्टिश बनाकर लगाने से शोथ में लाभ होता है१॥

अथ सक्तुपिण्डादिः—तैलेन सर्पिषा वाऽपि द्वाभ्यां सक्तुकपिण्डिका ।
सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ २ ॥

तेल और घी दोनों से मिलाकर जौ के सत्तुओं का पिण्ड आग पर पकाकर पुल्टिश बनाकर कोसा २ बांध दे या सेंक करें तो शोथ इससे पक जाता है ॥२॥

इत्युपनाहनम् ।

अथ पाटनम्—अन्तःपूयिष्ववक्त्रेषु तथैवोत्सङ्गवत्स्वपि ।
गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं शस्तमुच्यते ॥ १ ॥

जिन व्रणों के अन्दर पीप भरी हुई हो जिनका फूटने के लिये मुंह न बना

हो, जो उभरे हुए या उठे हुए हों तथा जो चलायमान हों ऐसे व्रणादि रोगों में व्रण को फाड़ना चाहिये ॥ १ ॥

बालादिषुव्रणे लेपः—बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि।
मर्मोपरि च जातेषु पक्के शोफे च दारुणे ॥ २ ॥

बालक, बूढ़े, असहनशील, क्षीण, डरपोक, स्त्रियें इनके व्रणों को तथा मर्म स्थान पर हुए व्रणों को तथा पके हुए भयंकर शोथ को ॥ २ ॥

अथ चिरबिल्वादि—चिरिबिल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः।
कपोतकङ्कगृध्राणां मलं लेपेन दारणम् ॥ ३ ॥

चिरबिल्व की छाल, चीता, कनेर, कबूतर की बीठ, चील की बीठ और गीध की बीठ इन सबको पीसकर जल से मिलाकर उन व्रणों पर लेप करदें तो व्रण फूट जाता है ॥ ३ ॥

अथ स्वर्जिकादि—स्वर्जिकायावशूकाद्याः क्षारा लेपेन दारणाः।
हेमकान्त्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः ॥ ४ ॥

सज्जी, यवक्षारादि क्षारों का लेप करने से व्रण फट जाता है। तथा व्रणपर दारुहल्दी का लेप करे तो यह परम दारुण अर्थात् फाड़ने वाला होता है ॥ ४ ॥

अथ शणादिः प्रदेहः—शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः।
सक्तवः किण्वमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥ ५ ॥

सन की जड़, सुहांजने की फली, तिल, सरसों, जौ के सत्तू, सुराबीज, अलसी इन सबको समभाग लेकर पीसकर लेप करें तो यह लेप व्रणों को पकाता है ॥५॥

दन्त्यादिदारणम्—दन्ती चित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसी गुडः।
भल्लातकास्थिकासीससैन्धवैर्दारणः स्मृतः ॥ ६ ॥

दन्ती, चीते की जड़ की छाल, थोहर का दूध, आक का दूध, गुड, भिलावें के बीज, कसीस, सेंधानमक इन सब को मिलाकर लेप करें तो व्रण फूट जाते हैं॥

हस्तिदन्तलेपः—हस्तिदन्तो जले घृष्टो बिन्दुमात्रः प्रलेपितः।
अत्यन्तकठिने चापि शोफे पाचनभेदनः ॥ ७ ॥

हाथी का दांत पानी में घिसकर बूंदभर व्रणशोथ पर लेप कर दें तो अत्यन्त कठिन शोथ को पचाता भी है और भेदन भी कर देता है ॥ ७ ॥

यवादिदारणम्—यवगोधूमचूर्णं च सक्षारं दारणं पृथक्।
हरिद्राभस्मचूर्णाभ्यां प्रलेपो दारणः परः।
अजविट्क्षारमृज्जश्च प्रलेपो व्रणदारणः ॥ ८ ॥

जौ का चूर्ण यवक्षारादि क्षारों से मिलाकर लेप करें तो व्रण फूट जाता है। गेहूं का चूर्ण क्षार से मिलाकर लेप करें तो भी व्रण फूट जाता है। अथवा हल्दी की राख तथा चूने से मिलाकर लेप करे तो भी व्रण फूट जाता है। अथवा

बकरी की मींगनी और क्षारमृत् अर्थात् खारी मिट्टी से उत्पन्न हुआ २ क्षार-लवण इन दोनों को मिलाकर लेप करने से व्रण फूट जाता है ॥८॥ इति पाटनम् ॥

अथ प्रक्षालम्—ततः प्रक्षालने क्वाथः पटोलीनिम्बपत्रजः।
अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥ १ ॥

फिर अशुद्ध व्रण को धोने के लिये पटोलपत्र तथा नीम के पत्तों का क्काथ कर के प्रयोग करे। जब व्रण शुद्ध हो गया हो तो न्यग्रोधादि गण की छालों का क्काथ कर के व्रण को धोवे ॥ १ ॥

धावनकषायः–पञ्चमूलीद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके।
आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

वातज व्रण को विशुद्ध करने के लिये दशमूल का क्वाथ प्रयोग करे। पैत्तिक व्रणशोथ में न्यग्रोधादि गण का क्वाथ प्रयोग करे। कफज व्रण तथा सब अन्य स्थानों में आरग्वधादि गण का क्वाथ धोने में प्रयुक्त करे ॥ २ ॥

अथ शोधनरोपणविधिः।

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुतैः।
त्रिवृन्मधुयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ १ ॥

तिल, सेंधानमक, मुलठ्ठी, नीम के पत्ते, हल्दी, त्रिवृत्, इन सब को पीसकर शहद से मिलाकर लेप करें तो व्रण शुद्ध होजाता है ॥ १ ॥

अथ तिलादिकल्कः–तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्घृतम्।
मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्व्रणशोधनः ॥ २ ॥

तिलों का कल्क, सेंधालवण, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिवी, घी, मुलठ्ठी, नीम के पत्ते इन सब को पीसकर लेप करें तो व्रण शुद्ध होजाता है ॥ २ ॥

अथ निम्बपत्रलेपः—निम्बकोलकपत्राणां लेपः स्याद्व्रणशोधनः।
निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना व्रणशोधनः ॥ ३ ॥

नीमे के पत्ते, बेर के पत्ते, दोनों को समभाग लेकर पीसकर लेप करने से व्रण विशुद्ध होता है। अथवा नीम के पत्ते और तिलों का कल्क दोनों को पीस-कर शहद से मिलाकर लेप करें तो व्रण विशुद्ध होता है ॥ ३ ॥

पुनः निम्बपत्रादिः—निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम्।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥ ४ ॥

नीम के पत्ते, तिल, दन्तीमूल, त्रिवी, सेंधानमक, शहद इन सबको मिलाकर लेप करें तो दुष्ट व्रण को शान्त करता है, शोधन तथा रोपण करता है ॥४॥

गंभीरव्रणशोधनम्—अभयात्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः।
सुषवीपत्रधत्तूरकर्ममोटकुठेरिकाः ॥ ५ ॥

हरड़ में शहद तथा सेंधानमक मिलाकर व्रण में लेप करें। त्रिवी में शहद

तथा सेंधालवण मिलाकर लेप करें। दन्ती में शहद तथा सेंधालवण मिलाकर लेप करें। लांगली की जड़ में शहद तथा सेंधानमक मिलाकर लेप करने से। कालेजीरे के पत्तों में शहद तथा सैंधव मिलाकर लेप करने से, धतूरे के पत्तों को पीसकर शहद तथा सेंधानमक मिलाकर लेप करने से, छोटी बला के पत्तों का कल्क शहद और सेंधानमक से मिलाकर लेप करने से, काली या बाबुई तुलसी को पीसकर शहद तथा सेंधानमक मिलाकर लेप करने से ॥ ५ ॥

पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणशोधनाः।
निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ॥ ६ ॥

इन में से किसी एक के लेप करने से गम्भीर व्रणों का शोधन होता है। नीम के पत्तों और शहद से मिलोकर लेप करें तो व्रण संशुद्ध हो जाता है ॥६॥

अथ सारिवामूल लेपः—**एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्।**
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकदम्बप्लक्षवेतसाः ॥ ७ ॥

अकेली शारिवा की जड़ को पीसकर लेप करें तो सभी व्रण शुद्ध हो जाते हैं। बड़, गूलर, पीपल, कदम्ब, पिलखन, बेत ॥ ७ ॥

करवीरादिकषायः—**करवीरार्ककटुकाकषायो रोपणे हितः ॥ ८ ॥**

कनेर, आक, कुटकी, इन सबका क्वाथ करके धोने से व्रण का रोपण होता है८

सप्तदलकल्कः—**सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन।**
मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥ ९ ॥

सप्तपर्ण के दूध का कल्क दुष्ट व्रण को लेप करने से शान्त करता है। सरपोंखा का चूर्ण शहद से मिलाकर लेप करें तो सब व्रणों का रोपण करता है।९

अथ पञ्चवल्कलादिः—**पञ्चवल्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः।**
धातकीलोध्रचूर्णैर्वा निःसारा यान्ति (हन्ति) ते व्रणाः ॥१० ॥

बड़, पीपल, गूलर, पिलखन, बेत इनकी छालों के चूर्ण से लेप करें। अथवा इनमें सीप का चूर्ण मिलाकर लेप करे। अथवा धाय के फूल तथा पठानी लोध के चूर्ण से मिलाकर लेप करें तो ये लेप व्रणों को निःसार करके नष्ट कर देते हैं।

अथ शोधरोपणीवर्त्तिः—**निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता।**
वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणम् ॥ ११ ॥

नीम के पत्ते, घी, शहद, दारुहल्दी, मुलठ्ठी इनको पीसकर बत्ती बनावें इसका या तिलों के कल्क का लेप करें तो व्रणों को शोधन तथा रोपण होता है ॥ ११ ॥

अथ निम्बादिधावनम्—**निम्बशम्याकजात्यर्कसप्तपर्णाश्वमारकाः।**
क्रिमिघ्ना मूत्रसंयुक्ता सेकलेपनधावनैः ॥ १२ ॥

नीम, अम्लतास, चमेली, आक, सतौना, कनेर इन सबको समभाग लेकर

क्वाथ वा कल्क करके गोमूत्र से मिलाकर सिंचन करे, लेप करे तथा धोवे तो व्रणों के कीड़े नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥

व्रणक्रिमिघ्न—करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ।
लशुनेनाथवा दद्याल्लेपनं कृमिनाशनम् ॥ १३ ॥

करंजवे के पत्तों का स्वरस, नीम के पत्तों का स्वरस, निर्गुण्डी के पत्तों का स्वरस व्रणपर डालने से कृमि नष्ट हो जाते हैं । अथवा लसुन को पीसकर लेप करें तो व्रण के कृमि नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

निम्बादि धूपः—निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पिर्लवणसैन्धवैः ।
धूपनं कृमिरक्षोघ्नं व्रणकण्डूरुजापहम् ॥ १४ ॥

नीम के पत्ते, बच, हींग, घी, लवण तथा सेंधालवण इन सबको पीसकर व्रण को धूप देवें तो व्रण की खुजली तथा पीड़ा नष्ट होती है ॥ १४ ॥

गुग्गुलुयोगः—ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्तः सरुजाः सशोथाः।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलाजलेन ॥ १५ ॥

जो व्रण गले सड़े, पके हुए, बहते हुए, दुर्गन्ध युक्त, अत्यन्त महान, पीड़ा युक्त तथा सूजन वाले होते हैं उन सबकी शान्ति त्रिफला के क्वाथ में गूगल मिलाकर पीने से हो जाती है ॥ १५ ॥

अथ गुग्गुलुवटकः—त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः ।
निषेवितो विबन्धघ्नो व्रणशोधनरोपणः ॥ १ ॥

त्रिफला का चूर्ण एक भाग, गूगल शुद्ध एक भाग दोनों को मिलाकर गोली बना लेवें । इसे सेवन करने से विबन्ध का नाश होता है तथा व्रणों का शोधन और रोपण होता है ॥ १ ॥

अथ विडङ्गादिगुग्गुलुः—विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम् ।
सर्पिषा वटकान्कुर्यात्खादेद्वा हितभोजनः ।
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनान् ॥ १ ॥

वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक द्रव्य सम भाग लेकर चूर्ण करे । सब के समान शुद्ध गूगल मिलावे । इस को घी से मिलाकर गोली बना लेवे । इसे सेवन करे और पथ्य रखे । इस से दूषित व्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ, नाड़ीव्रण ये सभी शुद्ध होते हैं ॥ १ ॥

अथामृताद्यो गुग्गुलुः—अमृतापटोलमूलत्रिकटुत्रिफलाकृमिघ्नानाम् ।
कृत्वा समभागचूर्णं तत्तुल्यो गुग्गुलुर्योज्यः ॥१॥

गिलोय, परवल की जड़, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वायविडंग । इन में से प्रत्येक का एक २ भाग चूर्ण कर लेवे । सब चूर्ण के बराबर गूगल लेवे ॥१॥

प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेत्तथाऽल्पपरिमाणाम् ।

जेतुं व्रणवातास्रं गुल्मोदरपाण्डुशोथादीन् ॥ २ ॥

इस को मिलाकर एक २ अक्षभर की गोली बना लेवे। इस गोली को प्रतिदिन खावें तो व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदर, पाण्डु तथा शोथादिरोग दूर होते हैं॥

अथ जात्यादिघृतम्—

जातीपत्रपटोलनिम्बकटुकादार्वीनिशासारिवा-
मञ्जिष्ठाभयतुत्थसिक्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितैः।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च ॥१॥

चमेली के पत्ते, परवल के पत्ते, नीम के पत्ते, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, शारिवा, मंजीठ, हरड़, नीलाथोथा, मोम, मुलठ्ठी, करंजवे के बीज। इन सब को एक २ भाग लेकर कल्क करे। इस से चौगुना गौ का घी, घी से चौगुना जल लें। सबको मिलाकर घी पका लें।इस घी के प्रयोग करने से वे व्रण,जिन का मुख अत्यन्त सूक्ष्म हो, जो व्रण मर्मस्थान में हों, जो व्रण हर समय बहते रहें, जो गंभीर हों, जिन में अत्यन्त पीड़ा होती हो, तथा जो गतिमान हों अर्थात् जिन का फैलाव नाड़ी आदि द्वारा बढ़ता ही जाये, ये सभी व्रण शुद्ध होते हैं तथा भर जाते हैं ॥ १ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यं घृतम्—स्वर्जिका च यवक्षारः काम्पिल्लकं च हरेणुका।
टङ्कणं श्वेतखदिरं तुत्थं चूर्णं च गोघृतैः ॥ १ ॥

सज्जी, जौखार, कमीला, रेणुका, सुहागा, श्वेतकत्था, नीलाथोथा, चूना ॥१॥

सर्वं समांशं संचूर्ण्य मर्दयेत्प्रहरं दृढम्।
स्वर्जिकाद्यमिदं सर्पिः सर्वव्रणहरं परम्॥
रोपणं कृमिकण्डूघ्नं सवर्णकरणं परम् ॥ २ ॥

इन सब को समभाग लेकर गौ का घी सब के बराबर मिलाकर एक पहर तक दृढ़ता से पीसकर रखे। यह स्वर्जिकाद्यसर्पि सब व्रणों के नाश करने में परम श्रेष्ठ है। यह व्रणों का रोपण करता है। कृमि तथा कण्डू को नष्ट करता है तथा त्वचा को सवर्ण करने में श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

अथ मनःशिलादिलेपः—मनःशिला समञ्जिष्ठा सक्षारा रजनीद्वयम्।
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः स्मृतः ॥१॥

मनसिल, मंजीठ, यवक्षार, हल्दी, दारुहल्दी इन के चूर्ण में घी तथा शहद मिलाकर लेप करने से त्वचा की शुद्धि होती है ॥ १ ॥

अथ पारदादिमलहरः—रसगन्धकयोश्चूर्णं तत्समं मुर्दश्रृङ्गकम्।
सर्वतुल्यं तु काम्पिल्लं किंचित्तुत्थसमन्वितम्॥१॥

पारा, गंधक प्रत्येक एक २ भाग, मुर्दासंग दो भाग, कमीला ४ भाग,

नीलाथोथा किंचिन्मात्र ॥ १ ॥

सर्वं संमेलयेद्दत्वा घृतं सर्वाच्चतुर्गुणम् ।
पिचुप्लुतं प्रदातव्यं दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ २ ॥

इन सब को पीस लें। सब से चौगुना घी मिलावे। इस में से तूंबा भरकर व्रण पर रखे तो दुष्टव्रण शुद्ध होते हैं ॥ २ ॥

नाडीव्रणहरं चैव सर्वव्रणनिषूदनम् ।
ये व्रणा न प्रशाम्यन्ति भेषजानां शतेन च ।
अनेन ते प्रशाम्यन्ति सर्पिषा स्वल्पकालतः ॥ ३ ॥

नाड़ी व्रण नष्ट होता है तथा सभी व्रण नष्ट होते हैं। जो व्रण सैकड़ों औषधों से भी शान्त नहीं होते, इस घी से वे थोड़े ही काल में शान्त हो जाते हैं ३

अथ द्वितीयः पारदादिमलहरः—

रसगन्धकसिन्दूररालकम्पिल्लमुर्दकम् ।
तुत्थं खादिरकं चूर्णं सर्वं घृतचतुर्गुणम् ॥ १ ॥

पारा, गन्धक, सिन्दूर, राल, कमीला मुर्दासंग, नीलाथोथा, कत्था इनमें से प्रत्येक द्रव्य समभाग ले, गौ का घी सबसे चौगुना ले ॥ १ ॥

युक्त्या संमेल्य पिचुना व्रणे देयं विजानता ।
सर्वव्रणप्रशमनं घृतमेतन्न संशयः ॥ २ ॥

सबको एकत्र मिलाकर तूंबा भरकर व्रण पर लगावे। तो सभी व्रण इस घी से प्रशान्त हो जाते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ २ ॥

अथायोरजआदिलेपः—अयोरजः सकासीसं त्रिफला कुसुमानि च ।
प्रलेपः कुरुते दार्व्याः सद्य एव नवां त्वचम् ॥ १ ॥

लोहे का चूर्ण, कसीस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी के फूल इन सब को मिलाकर त्वचा पर लेप करें तो शीघ्र ही यह लेप त्वचा को नई कर देता है १॥

इति व्रणशोथचिकित्सा ॥

इति हरिद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेदशास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीयवैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्यरत्नगर्भानाम्निटीकायां व्रणशोथप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ सद्योव्रणनिदानमाह ।

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ।
भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥

अनेक प्रकार के धारदार तथा अनेक प्रकार के मुखों वाले शस्त्रों के शरीर के नाना स्थानों पर गिरने से नाना प्रकार के व्रण हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ तेषां षड्विधत्वमाह—छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च।

घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित तथा घृष्ट ये छह प्रकार के व्रण सद्योव्रण कहाते हैं। इनके लक्षणों को लिखते हैं ॥ २ ॥

अथ छिन्नमाह—तिर्यक्छिन्न ऋजुर्वाऽपि व्रणो यस्त्वायतो भवेत्।
गात्रस्य पातनं तद्धि च्छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

जो व्रण तिरछा कटा हो, या जो व्रण सीधा कट कर हुआ हो तथा आयत अर्थात् फैला हुआ हो और जिससे हाथ, बांह आदि अंग प्रत्यंग गिरते हुए या पृथक् होते हुए प्रतीत हो, उस व्रण को छिन्न कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ भिन्नमाह—शक्तिकुन्तेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः।
यत्किंचित्प्रस्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

शक्ति, कुन्त अर्थात् भाला, बाण, तलवार की नोक, विषाण अर्थात् दांत और सींग इन शस्त्रों के लगने से किसी आशय का भेद हो जाये तो उस आशय में से कुछ २ बहता रहता है। इसे भिन्न कहते हैं। (बस्ति भिन्न होगी तो मूत्र निकलेगा, उदर भिन्न होगा तो मेद निकलेगा, पुरीषाशय का भेद होगा तो पुरीष अर्थात् विष्ठा निकलेगी, और रुधिराशय का भेद होगा तो रुधिर या रक्त निकलेगा)

आशयानां भेदाः—स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च।
हृदुन्दुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

आमाशय, अग्न्याशय अर्थात् पच्यमानाशय, मल का पक्वाशय, मूत्र की बस्ति, रुधिर का यकृत् तथा प्लीहा, हृदय तथा उण्डुक (ईख के रस को पकाते समय मैल के समान जो रक्त का मैल होता है उससे बना हुआ आशय उण्डुक कहाता है) इसे पुरीषाधान कहते हैं वह आंत के अन्दर स्थिर है। फुप्फुस यह हृदय के बामपार्श्व में रहता है ये सभी कोष्ठ या आशय कहाते हैं ॥५॥

भिन्नकोष्ठस्यलिङ्गम्—तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते।
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥

इन में से किसी कोष्ठ के भेद होजाने पर कोष्ठरक्त से पूर्ण होजाता है, ज्वर तथा दाह होता है। मूत्रमार्ग, गुदा तथा मुख से और नाक से रक्त निकलता है ॥ ६ ॥

मूर्च्छा श्वासस्तृषाऽऽध्मानमभक्तच्छन्द एव च।
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदः स्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥

मूर्च्छा होती है, श्वास होता है, तृष्णा होती है, पेट में आध्मान होता है तथा भोजन में अरुचि होती है। मलमूत्र तथा अधोवात रुक जाती है। स्वेद आता है ("स्वेदास्रावः" ऐसा भी पाठ है) आंखों का रंग लाल होता है ॥ ७ ॥

लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रे दौर्गन्ध्यमेव च।

हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥

मुंह में खून की गंध आती है, शरीर के अङ्गों से दुगन्ध आती है। हृदय में शूल होता है, पार्श्वों में भी शूल होता है, विशेष विवरण आगे लिखते हैं ॥८॥

आमाशयभेद लक्षणम्—आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥

जब आमाशय भिन्न होकर रुधिर से भर जाता है तब रुधिर की वमन होती है। पेट में अत्यन्त आध्मान होता है, तथा अत्यधिक बार २ शूल होता है ॥९॥

पक्काशयभेद लक्षणम्-पक्वाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च ।
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

पक्वाशय के भिन्न होने से पक्वाशय में पीड़ा होती है, गुरुता होती है। विशेष कर के शरीर के नीचे के भाग में शीतता होती है ॥ १० ॥

विद्धलक्षणमाह-सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना ।
उत्तुण्डितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥

सूक्ष्म मुखवाले शल्य से जो शरीर के अंग आमाशयादि आशयों के बिना पीड़ित होते हैं। उस पीड़ित स्थान का कुछ २ त्वचा मांस ऊपर उठ आता है तथा शल्य अन्दर ही रहता है, और जब शल्य बाहर निकल आता है तो विद्ध स्थान की त्वचा तथा मांस ऊपर को नहीं उठता है। इसे विद्ध कहते हैं ॥११॥

अथ क्षतलक्षणमाह-नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ।
विषमं व्रणमङ्गे यत्तत्क्षतं तु विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

जो न तो अत्यन्त ही छिन्न हुआ २ हो, नांही अत्यन्त आशय आदि को भिन्न कर चुका हो, प्रत्युत् दोनों ही लक्षणों से युक्त हो। ऐसे विषमव्रण को क्षत कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ पिच्चितलक्षणम्—प्रहारपीडनाभ्यां तु यदंगं पृथुतां गतम् ।
सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जरक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥

मुद्गरादि के प्रहार से तथा कवाड़ों आदि के अन्दर अंगों के पीड़ित हो जाने से जो स्थान हड्डियों सहित चिपटा हो जाता है तथा मज्जा और रक्त से भरपूर हो जाता है उसे पिच्चित कहते हैं ॥ १३ ॥

घृष्टलक्षणम्—घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम् ।
ऊषास्रावान्वितं तच्च घृष्टमित्यभिधीयते ॥ १४ ॥

कठोर वस्त्रादि से घिसने से अथवा चोट लगने से जिस अंग की त्वचा या खाल ऊपर से छिल जावे। तथा जिस में से गरम २ स्राव निकलता हो उसे घृष्ट कहते हैं ॥ १४ ॥ सशल्यव्रण लक्षणम्—

श्यावं सशोफं पिटिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ।

मृदून्नतं (मृदुवृत्तं) बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति ॥१५॥
जो व्रण सांवले रंग का हो, सूजनयुक्त हो, पिडिकायुक्त हो, जिस में से बार२ रक्त निकलता हो, कोमल हो, गोल हो तथा बुलबुले के समान जिस का मांस उठा हुआ हो ऐसे व्रण में शल्य अन्दर होता है यह समझना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ कोष्ठभेदमाह—त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्वा च परिहृत्य वा।
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥
सातों त्वचाओं को पार कर के शिरास्नायु अस्थि संधि इन सब को भेद करके अथवा इन शिरादियों को छोड़कर न भेदकर, कोष्ठ में बिंधा हुआ शल्य सुश्रुतोक्त प्रनष्ट शल्य विज्ञानीयाध्याय में कहे हुए उपद्रवों को करता है । (यथा "कोष्ठगते त्वाटोपानाहौ मूत्रपुरीषाहारदर्शनं च व्रणमुखे द्भवति" अर्थात् कोष्ठगत शल्य में आटोप तथा आनाह होता है, मूत्र मल तथा भोजन व्रण के मुख से बाहर निकलता है ॥ सुश्रुत सूत्रस्थान अ० २६)

असाध्यकोष्ठभेदमाह—तत्रान्तर्लोहितं पाण्डुः शीतपादकराननम्।
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥
जिसके अन्दरही रक्त निकलकर इकठ्ठा हो गया हो अर्थात् कोष्ठके बाहर न निकले तथा हाथ पैर और मुंह पाण्डु रंग के और शीतल हो गये हों। शीतल उच्छ्वास लेता हो, लाल नेत्र हो तथा आनाह हो रहा हो, ऐसे रोगी को त्याग देवे ।

मांससिरादीनां क्षतमाह—
भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च।
स्रस्ताङ्गता मूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः १८॥
मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धिमर्म इन पांचों स्थानों के विद्ध होने पर इनके सामान्य लक्षण कहते हैं। रोगी को भ्रम होता है, प्रलाप होता है, भूमि पर गिर पड़ता है, मन का मोह होता है, विरुद्ध चेष्टा अर्थात् चरण फेंकना आदि करता है, ग्लानि अर्थात् बल का क्षय हो जाता है, शरीर में उष्णता रहती है, अंगों की सन्धियें ढीली हो जाने के समान पीड़ा होती है,मूर्च्छा होती है,ऊर्ध्ववात अर्थात् डकार बहुत आते हैं, तथा वात से होने वाली दण्डापनातक आक्षेपक दि तीव्र पीड़ायें होती हैं ॥ १८ ॥ मर्मरहितशिराविद्धलिङ्गम्—

मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्धसंख्येष्वपि विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥ १६ ॥
मांस के धोवन के समान रक्त निकलता है तथा सब इन्द्रियें अपने २ विषय रूपादि को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती हैं ॥ १६ ॥

मांससिरादीनां क्षतमाह-सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षतजश्च वायुः
करोति रोगान्विविधान्यथोक्तान् शिरासु विद्धास्वथ वा क्षतासु २०॥
जब शिरायें बाण आदि से बिद्ध हो जाती हैं अथवा खड्ग आदि से क्षत

होती हैं तो बीरबहूटी के समान लाल रंग का बहुत सा निकलता है, और उस चत से उत्पन्न हुई २ वायु विविध प्रकार के रोगों को करती है ॥ २० ॥

अमर्मस्नायुविद्धमाह—

कौब्जं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च।
चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं मनुजं व्यवस्येत् ॥२१॥

शरीर कुबड़ा हो जाता है, शरीरों के अवयव अवसन्न हो जाते हैं, क्रिया करने में शक्ति नहीं रहती, अत्यन्त पीड़ा रहती है और देर में व्रण रोपण होता है, इसे स्नायुविद्ध कहते हैं ॥ २ ॥

चलाचलेषु संधियुविद्धमाह—

शोफाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोफौ।
क्षतेषु संधिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥ २२ ॥

जब चलायमान हाथ पैर ठोडी कमर की सन्धियें तथा शेष समस्त अचल सन्धियें क्षत हो जाती हैं तब सूजन बढ़ जाती है अत्यन्त घोर पीड़ा होती है, बल का क्षय होता है, पर्वों का भेद तथा पर्व सूज जाते हैं तथा सभी कर्मों का उपराम हो जाता है अर्थात् कर्म करने में शक्ति नहीं रहती ॥ २२ ॥

अमर्मास्थिविद्धमाह—

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु न चैति शान्तिम्।
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं मनुजं व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

जिस मनुष्य को दिन रात ही घोर पीड़ायें रहती हों और सभी अवस्थाओं में शान्ति न मिलती हो प्रत्येक समय पीड़ा होती रहे, उसे शल्यतन्त्र का जानने वाला विद्वान वैद्य अस्थि विद्ध हुआ २ समझे ॥ २३ ॥

सिरादीनांमर्मविद्धमाह—

यथास्वमेतानि विभावयेच्च लिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु।

मर्मों के विद्ध होने पर जो लक्षण पहले सामान्य लिङ्गों में कहे हैं वे सब तथा शिरा विद्ध आदि के पृथक् २ लक्षण ये दोनों प्रकार के ही लक्षण होते हैं ॥

मांसमर्मविद्धमाह—

पाण्डुर्विवर्णश्च सुखं सुखं न वैति यो मांसमर्मण्यभिताडितश्च २४

जिस मनुष्य के मांस के मर्म विद्ध हो गये हों वह पाण्डुरंग का हो जाता है, विवर्ण अर्थात् उसका स्वाभाविक रंग उड़ जाता है, तथा सुखी नहीं रहता। (सिरा आदियों के विद्धलिंग लिखते समय मांस के विद्धलिंग इस कारण नहीं लिखे कि केवल मांसविद्ध के लक्षण ऐसे हैं जो अधिक हानि नहीं करते। इस लिये सिरा आदियों से पीछे तथा पृथक् करके इसे लिखा है ॥ २४ ॥

व्रणायामस्यासाध्यत्वम्—मर्माश्रितं व्रणं प्राप्य वायुर्यः सर्वदेहगः।
वेगैरायामयेद्देहं व्रणायामं तु तं त्यजेत् ॥ २५ ॥

जो वायु सारे देह में विचरता है वह मर्माश्रित व्रण को प्राप्त होकर अपने वेगों से देह को फैला देता है उसे व्रणायाम कहते हैं, और ऐसा रोगी असाध्य होता है ॥ २५ ॥

सर्वव्रणोपद्रवानाह—**विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोऽपतानकः ।**
मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरतृष्णाहनुग्रहाः ॥ २६ ॥

विसर्प, पक्षाघात होना, शिरास्तम्भ होना, अपतानक होना, मोह होना, उन्माद होना, व्रण की पीड़ायें होना, ज्वर, तृष्णा तथा हनुग्रह होना ॥ २६ ॥

कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः ।
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणिनां व्रणचिन्तकैः ॥ २७ ॥

कास या खांसी होना, वमन होना, अतिसार होना, हिचकी होना, श्वास होना, कंपकंपी होना, ये १६ उपद्रव व्रणरोग वालों को होते हैं ऐसा व्रण चिकित्सकों ने माना है ॥ २७ ॥ इति सद्योव्रणनिदानम् ।

अथ सद्योव्रणचिकित्सा ।

बुद्ध्वाऽऽगन्तुव्रणं वैद्यो घृतक्षौद्रसमन्विताम् ।
शीतां क्रियां चरेदाशु रक्तपित्तोष्मनाशिनीम् ॥ १ ॥

आगन्तुक व्रण को जानकर वैद्य, रक्तपित्त तथा ऊष्मा को नाश करने वाली घी और शहद से युक्त शीतल क्रिया शीघ्र ही करे ॥ १ ॥

क्रुद्धे व्रणेचिकित्सा—**क्रुद्धे सद्योव्रणे युञ्ज्यादूर्ध्वं चाऽधश्च शोधनम् ।**
लङ्घनं च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्रमोक्षणम् ॥ २ ॥

यदि सद्योव्रण अत्यन्त बढ़ा हुआ हो तो पहले वमन विरेचन देकर रोगी को शुद्ध कर लेवे । बलानुसार कुछ लंघन भी करावे, भोजन भी बलानुसार करावे तथा रक्त निकलवा देवे ॥ २ ॥

घृष्टविदलितयोश्चिकित्सा—**घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ।**
तयोरल्पं स्रवत्यस्रं पाकस्तेनाऽऽशु जायते ॥ ३ ॥

घृष्ट तथा विदलित अर्थात् पिच्चित में उपरोक्त विधि बहुत अच्छी है । क्यों कि इन में से थोड़ा सा रक्त निकलता है और शीघ्र ही व्रण पक जाता है । इसी लिये शोधनादिक्रम यहां करना लाभदायक है ॥ ३ ॥

छिन्नादिषुविधिः—**छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते चासृगतिस्रवेत् ।**
रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो भृशम् ॥ ४ ॥

छिन्न, भिन्न, विद्ध तथा क्षत में रक्त अधिक स्रवित होता है । रक्त के क्षय

हो जाने से वायु वहां पर बार २ पीड़ा करता है ॥ ४ ॥

स्नेहपानपरीषेकलेपस्वेदोपनाहनम् ।
कुर्वीत स्नेहबस्तिं च मारुतघ्नौषधैः शृतैः ॥ ५ ॥

ऐसे व्रणों में स्नेहपान करावे, औषधों के जल से परिषेक करे, लेप करे, स्वेद करे, उपनाह करे तथा वातनाशक औषधों के क्वाथ से स्नेह बस्ति करे ॥५॥

उक्तं च ग्रन्थान्तरे—छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते सद्यो भिषग्वरः ।
पट्टसूत्रेण संस्वेदं कुर्याद् व्रणविशारदः ॥ १ ॥

छिन्न, भिन्न, विद्ध तथा क्षत में व्रणचिकित्सक वैद्य पट्टसूत्र से अर्थात् रेशमी सूत से व्रण को स्वेद देवे ॥ १ ॥

संस्वेदविधिः—मुहुर्मुहुर्यथा दुःखं न प्राप्नोति व्रणी नरः ।
अथवा दीप्यलवणपोटल्या स्वेदयेन्मुहुः ॥ २ ॥

बार २ इस प्रकार से स्वेद देवे कि रोगी को कष्ट न हो । अथवा अजवायन और नमक को मिलाकर कर कपड़े की पोट्टली में बांधकर गरम करके बार २ स्वेद देवे ॥ २ ॥

अथ रक्तहरणमाह—संतप्तया तप्तलोहपात्रसंयोगतः क्रमात् ।
दुष्टं रक्तं स्थितं चापि शृङ्गयलाब्वादिभिर्हरेत् ॥ ३ ॥

इस पोट्टली को किसी लोहे के गरम पात्र कड़ाही या तवा आदि पर रखकर तपा २ कर सेकना चाहिये ॥ दूषित स्थिररक्त को सिंगी तथा अलाबु अर्थात् तुम्बी आदि से निकलवा देवे ॥ ३ ॥

सशूलव्रणचिकित्सा—सद्यःक्षतव्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ।
यष्टीमधुकमिश्रेण नातिशीतेन सर्पिषा ॥ ४ ॥

जो तुरन्त कटने से व्रण हुआ हो, जिस में शूल होता हो, उसे मुलहठी से मिले हुए घी से जो कि अत्यन्त शीतल न होगया हो, सिंचन करे ॥ ४ ॥

सामान्यविधिः—कषायमधुराः शीताः क्रियाः सर्वास्तु योजयेत् ।
सद्योव्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ५ ॥
चिकित्सितं तु तत्सर्वं सामान्यव्रणनाशनम् ।

सद्योव्रणों की चिकित्सा में कसैले रसवाली औषधों से, मधुर औषधों से, सभी शीतल क्रियायें सात दिन तक करनी चाहियें । फिर पूर्वोक्त व्रणचिकित्सा में कही हुई क्रियायें करें ॥ ५ ॥ सामान्यव्रणचिकित्सा में पूर्व कही हुई चिकित्सा ही सद्योव्रण में सात दिन के पीछे करनी चाहिये ॥

आमपक्वाशयक्षते—आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ।

पक्वाशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम् ॥ ६ ॥

यदि आमाशय में क्षत होकर रुधिर भर गया हो तो वमन कराना चाहिये, यह पथ्य है। और पक्वाशय में रुधिर भर गया हो तो निस्सन्देह विरेचन दे देना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ वंशत्वगादिक्वाथः—क्वाथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ॥ १ ॥

बांस की छाल, एरण्ड की जड़, गोखरू, पाषाणभेद इन सब को समभाग लेकर क्वाथ करे। इस में हींग तथा सेंधानमक मिलाकर पिलावे तो कोष्ठ में स्थित रक्त को बाहर निकाल देता है ॥ १ ॥

अथ यवादिः—यवकोलकुलत्थानां निस्नेहेन रसेन च।
भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ॥ १ ॥

जौ, बेर तथा कुलथ इनका रस बनाकर बिना घी डाले अन्न के साथ खावे। अथवा सेंधानमक मिलाकर यवागू खावे ॥ १ ॥

अथ गौराद्यं घृतम्—गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च।
प्रपौण्डरीकं ह्रीबेरं नतं मुस्तं च चन्दनम् ॥ १ ॥

श्वेत सरसों, हल्दी, मंजीठ, जटामांसी, मुलठ्ठी, पुण्डरिया काष्ठ, सुगंधबाला तगर, मोथा, लाख, चन्दन ॥ १ ॥

जातीनिम्बपटोलं च करञ्जं कटुरोहिणी।
मधूच्छिष्टं मधूकं च महामेदा तथैव च ॥ २ ॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
एतद्गौरादिकं सर्पिः सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ३ ॥

चमेली, नीम, पटोलपत्र, करंज, कुटकी, मोम, मुलठ्ठी, महामेदा ये सब द्रव्य एक २ भाग लेकर कल्क करे। गौ का घी कल्क से चौगुना अर्थात् १ प्रस्थ लेवे। घी से चौगुना पञ्चवल्कल द्रव्यों का क्वाथ ४ प्रस्थ लेवे (बड़, गूलर, पिलखन, पीपल और बेत इन पांचों की छाल लेकर क्वाथ करें। इन्हें पञ्चवल्कलवृक्ष कहते हैं)। इस घी को पका लेवे। इस गौरादिघृत को लगाने से सभी व्रण विशुद्ध होते हैं ॥ ३ ॥

आगन्तुकाश्च सहजाः सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः।
नाडीव्रणश्च विषमो नाशयेत्तान् न संशयः ॥ ४ ॥

आगन्तुकव्रण, सहजव्रण, पुराने देर से हुए २ व्रण, नाडीव्रण, विषमव्रण ये सभी व्रण निस्सन्देह नष्ट होजाते हैं ॥ ४ ॥

अथ तिक्तादिघृतम्—तिक्तासिक्थनिशायष्टीनक्ताह्वफलपल्लवैः।
पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्वर्ण्यं श्रुतं घृतम् ॥ १ ॥

कुटकी, मोम, हल्दी, मुलठ्ठी, करंज के बीज तथा करञ्ज के कोमल २ पत्ते इन का कल्क कर के पटोलपत्र, चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते इन सब का क्वाथ कर के विधिपूर्वक गौ का घी पका लेवे। इस घी के लगाने से वर्ण अर्थात् त्वचा का रंग ठीक हो जाता है॥१॥ अथ जात्यादितैलम्—

जातीनिंबपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः।
सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी॥१॥

चमेली के पत्ते, नीम के पत्ते, पटोलपत्र, बृहत्करंज के पत्ते, मोम, मुलठ्ठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी॥ १॥

मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम्।
तुत्थकं सारिवा बीजं नक्तमालस्य च क्षिपेत्॥ २॥

मंजीठ, पद्मकाष्ठ, लोध, हरड़, नीला कमल, नीला थोथा, सारिवा, बड़े करंज के बीज॥ २॥

एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्।
विषव्रणसमुत्पत्तौ स्फोटेषु च सकच्छुषु॥ ३॥

इन में से प्रत्येक पदार्थ समभाग लेकर कल्क करें, इस कल्क से चौगुना तिल का तेल डाले और चौगुना पानी डालकर विधिपूर्वक तेल पका लेवे। इस तेल को विष युक्त व्रणों में लगावे, फोड़ों में, कच्छु में॥ ३॥

कण्डूविसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा।
सद्यःशस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धक्षतेषु च॥ ४॥

कण्डू में, विसर्प में तथा सभी प्रकार के कीड़ों के काटने में, सद्यःशस्त्र के प्रहार होने से कटे हुए स्थान में, अग्नि से दग्ध हुए २ व्रण में, विद्ध तथा क्षत में४

नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसावघर्षणे।
म्रक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम्॥ ५॥

नख से दांत से क्षत हुए २ स्थान में, दूषित मांस के अलग करने में। इस जात्यादि तेल की मालिश करे। इस से व्रणों का शोधन भी होता है तथा रोपण भी होता है॥ ५॥

अथ विपरीतमल्लतैलं चक्रदत्तात्—

सिन्दूरकुष्ठविषहिङ्गुरसोनचित्र-
बाणाङ्घ्रिलाङ्गलिककल्कविपक्वतैलम्।
प्रासादमण्डनयुतश्च सतुत्थफेनः
क्लिन्नव्रणप्रशमने विपरीतमल्लः॥ १॥

सिन्दूर, कूठ, मीठा तेलिया, हींग, लहसुन, चीता, सरफोंका, लांगली विष इन सबको समभाग लेकर कल्क बनावे, हड़ताल, नीलाथोथा तथा समुद्रफेन इन

को भी कल्क में समभाग ही डाले। इससे चौगुना तिल का तेल, तेल से चौगुना जल मिलाकर तेल पाक करे। इस तेल का नाम विपरीत मल्ल तैल है। इससे आर्द्रव्रणों की शान्ति होती है॥ १॥

खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंशनाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः।
एतान्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासभोजनस्य॥ २॥

तलवार के घाव, भारी गण्ड, महाउपदंश, नाड़ीव्रण, व्रण, विचर्चिका, कुष्ठ तथा पामा इन सबको यह यथार्थ नाम वाला तेल नष्ट कर देता है। इसके साथ यथेष्ट शयन, और उठना बैठना तथा भोजन छादन करे॥ २॥

अथ दूर्वादितैलम्—**दूर्वास्वरससंसिद्धं तैलं कम्पिल्लकेन वा।**
दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम्॥ १॥

कमीला वा दारुहल्दी की त्वचा का कल्क ले। उससे तिल का तेल चौगुना लेवे और दूब घास का स्वरस तेल से चौगुना लेवे। इस तेल को पका लेवे। यह तेल व्रणरोपण करने में प्रधान है॥ १॥

अथ सप्तविंशतिको गुग्गुलुः—

त्रिकटुत्रिफलामुस्ताविडङ्गामृताचित्रकम्।
पटोलं पिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च॥ १॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, वायविडंग, गिलोय, चीता, पटोलपत्र, पिप्पलामूल, हौबेर, देवदार॥ १॥

तुम्बरुः पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम्।
बिडं सौवर्चलं क्षारं सैन्धवं गजपिप्पली॥ २॥

तुम्बरु अर्थात् तेजबल के फल, पोहकरमूल, चव्य, इन्द्रायण, हल्दी, दारुहल्दी, विड्लवण, सौंचललवण, यवक्षार, सेंधालवण, गजपीपली॥ २॥

यावन्त्येतानि सर्वाणि तावद्द्विगुणगुग्गुलुः।
कोलप्रमाणां वटिकां भक्षयेन्मधुना सह॥ ३॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ भाग लेवें। जितना चूर्ण सब मिलाकर हो उससे दुगना शुद्ध गूगल लेवें। सबको मिलाकर कूटकर रखे। इसकी एक कोल भर मात्रा लेकर शहद से मिलाकर खावे॥ ३॥

कासं श्वासं तथा शोफमर्शांसि च भगंदरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम्॥ ४॥

तो कास, श्वास, शोफ, बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदाशूल॥ ४॥

अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन्।
चिरज्वरोपसृष्टानां क्षतोपहतचेतसाम्॥ ५॥

अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमिरोग ये सभी रोग नष्ट होते हैं। पुराने ज्वरों से युक्त, क्षत से युक्त, रोगियों के रोगों को ॥ ५ ॥

आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठान्यष्टोदराणि च।
नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहान्श्लीपदं तथा ॥ ६ ॥

और आनाह, उन्माद, कुष्ठ, आठों प्रकार के उदररोग, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण, सभी-व्रण, सभी प्रमेह, श्लीपद इन रोगों को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

सप्तविंशतिको नाम गुग्गुलुः प्रथितो महान्।
धन्वन्तरिकृतो ह्येष सर्वरोगनिषूदनः ॥ ७ ॥

यह प्रसिद्ध सप्तविंशतिकगूगल धन्वन्तरि जो ने सब रोगों के नाश करने के लिये जगत् में प्रसिद्ध किया था ॥ ७ ॥ इति सप्तविंशतिकोगुग्गुलुः।

अपथ्यम्—व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात्।
तौ च रुक्च दिवास्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ १ ॥

व्रण में यदि परिश्रम करें तो सूजन हो जाती है। यदि व्रणवालारोगी रात को जागता रहे तो सूजन तथा व्रण में पकने आदि का रंग आजाता है। दिन में सोने से सूजन, राग तथा पीड़ा भी व्रण में होती है। यदि रोगी मैथुन भी ऐसी दशा में करे तो सूजन, राग, पीड़ा तथा मृत्यु भी रोगी की होजाती है ॥१॥

अम्लं दधि च शाकं च मांसमानूपवारिजम्।
क्षीरं गुरूणि चान्नानि व्रणी च परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

व्रणरोगी को चाहिये कि अम्लरस, दही, शाक, आनूप जीवों का तथा जलीय जीवों का मांस दूध और गुरु अन्न ये सभी पदार्थ सेवन न करे ॥ २ ॥ इति सद्योव्रणचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लव-पुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भा नाम्निटीकायां सद्योव्रणचिकित्सा समाप्ता ॥

अथाग्निदग्धव्रणनिदानमाह।

तत्र स्निग्धं रूक्षं वाऽऽश्रित्य द्रव्यमग्निर्दहति।
अग्निसंतप्तो हि स्नेहः सूक्ष्ममार्गानु-
सारित्वात्त्वगादीननुप्रविश्याऽऽशु दहति।
तस्मात्स्नेहदग्धेऽधिका रुजो भवन्ति।

स्निग्ध अथवा रूक्ष द्रव्यों को अग्नि जलाता है। अग्नि से संतप्त हुआ स्नेह सूक्ष्म मार्गों में अनुसरण कर के त्वचादि में घुसकर शीघ्र ही उनको जला देता है। इस कारण घी तेल आदि स्नेह पदार्थों से दग्ध होने पर अधिक पीड़ायें होती हैं ॥

अथ चतुर्विधमग्निदग्धलक्षणमाह।

तत्र प्लुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धमिति चतुर्विधं भवत्यग्निदग्धम्।
तत्र विवर्णमात्रं प्लुष्यते तत्प्लुष्टं।
यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्रदाहवेदना-
श्चिराच्चोपशाम्यन्ति तद्दुर्दग्धम्।
सम्यग्दग्धमवगाढं तालफलवर्णं
सुस्थितं पूर्वलक्षणयुक्तं च।
अतिदग्धं तु त्वङ्मांसावलम्बनगात्रविश्लेषणं
शिरास्नायुसंध्यस्थिव्यापादनमतिमात्रवेदना-
ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्वासोपद्रवा भवन्ति।
इति प्लुष्टादिभेदेनाग्निदग्धश्चतुर्विधो व्रणो भवति।

अग्निदग्ध चार प्रकार के होते हैं। प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध, अतिदग्ध। प्लुष्ट तो केवल अग्नि से दग्ध होने पर विवर्ण होनेमात्र को कहते हैं। जिस अग्नि से दग्ध स्थान में फोड़ या छालें उठ आवें, तीव्र दाह हो, तीव्र वेदना हो तथा चिरकाल पीछे शान्ति हो उसे दुर्दग्ध कहते हैं। सम्यग्दग्ध उसे कहते हैं जो गाढ़ा जल जावे ताड़ के फल के समान जले हुए स्थान का रंग होवे, सुस्थिर हो तथा दुर्दग्ध के समान अन्य स्फोटादि लक्षण भी हों॥ अतिदग्ध उसे कहते हैं जिस में त्वचा मांस जलकर गात्र को शरीर से ढीला कर दे, शिरा, स्नायु, संधि तथा अस्थियों को जलाकर नष्ट कर देवे। अतिमात्र पीड़ा से युक्त हो, ज्वर, दाह तथा प्यास, मूर्च्छा, श्वास इन सब ही उपद्रवों की उत्पत्ति हो जावे॥ इस प्रकार से प्लुष्टादि भेद से अग्निदग्ध व्रण चार प्रकार का होता है॥ इत्यग्निदग्ध-निदानं चन्द्रसनात्॥

अथाग्निदग्धचिकित्सा।

प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं तथौषधम्।
शीतामुष्णां च दुर्दग्धे क्रियां कुर्यात्ततः पुनः॥ १॥

प्लुष्ट में अग्नि का सेक करे गरम औषध देवे। तथा दुर्दग्ध में शीतल तथा गरम क्रिया करे॥ १॥

घृतालेपनसेकांस्तु शीतानेवास्य कारयेत्।
अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम्॥ २॥

घृत का लेप, शीतल पदार्थों का सिंचन ही इस पर करे। अतिदग्ध में सड़े हुए मांस को अलग कर के शीतल क्रिया करे॥ २॥

क्रियां कुर्याच्चूर्णकाले शालितण्डुलकण्डनैः।
तिन्दुक्यास्त्वक्कषायैर्वा घृतामिश्रैः प्रलेपयेत्॥ ३॥

शालि तण्डुलों के चूर्ण को छिड़के अथवा तिन्दुक की छाल का चूर्ण घी से मिलाकर लेप करे वा तिन्दुक की छाल के क्वाथ में घी मिलाकर लेप करे वा सिंचन करे ॥ ३ ॥

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः।
सामृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् ॥ ४ ॥

सम्यग्दग्ध व्रण में वंशलोचन, पिलखन, चन्दन लाल, गेरू, गिलोय इन सब को घी से मिलाकर लेप कर देवे ॥ ४ ॥

अथ पथ्यादिलेपः—**पथ्याकर्दमजीरकमधुसिक्थकसर्जमिश्रितं लेपात्।**
गव्यं घृतमपहरति च पावकजनितं व्रणं सद्यः ॥१॥

हरड़ का चूर्ण, कीचड़, जीरा का चूर्ण, शहद, मोम, राल इन को पीसकर गौ के घी में विधिपूर्वक मिलाकर लेप करने से अग्निदग्ध व्रण शीघ्र ही अच्छा हो जाता है ॥ १ ॥

अथ कुठेरकादि—**अंतर्धूमकुठेरको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रण-**
मश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलभवं चूर्णं तथा गुण्ठनात्।
अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं
पिष्ट्वा शाल्मलितूलकैर्जलगतां लेपात्तथा वालुकाम् ॥२॥

श्वेत तुलसी को अन्तर्धूम भस्म करके घी वा जल से मिलाकर लेप करें तो अग्निदग्धव्रण अच्छा होता है। पीपलवृक्ष की छाल का सूखा हुआ चूर्ण छिड़कने से अग्निदग्धव्रण को आराम करता है। गण्डोये या केंचुये से पकाया हुआ तिल का तेल मलने से सभी प्रकार के अग्निदग्धव्रण अच्छे हो जाते हैं। तथा पानी में पड़ी हुई वालु को सीमल की रुई से मिलाकर पीसकर लेप करें तो भी अग्निदग्धव्रण अच्छे हो जाते हैं ॥ २ ॥

अथ दग्धयवादि—**दग्धयवभस्मचूर्णं तिलतैलाक्तं प्रलेपनादचिरात्।**
हरति शिखिदाहदग्धं भूयोऽभ्यङ्गाद्व्रणं चाऽऽशु ॥३॥

जले हुए जौओं की भस्म का चूर्ण तिल का तेल में पीसकर लेप करने से शीघ्र ही अग्निदग्धव्रण अच्छा हो जाता है। बार २ मालिश करने से व्रण भी अच्छे हो जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ मधूच्छिष्टाद्यं तैलम्—**मधूच्छिष्टं समधुकं लोध्रं सर्जरसं तथा।**
मूर्वाचन्दनमञ्जिष्ठाः पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्।
सर्वेषामपि दग्धानां व्रणरोपणमुत्तमम् ॥१॥

मोम, मुलठ्ठी, लोध, राल, मूर्वामूल, चन्दनलाल, मंजीठ इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर चौगुना गौ का घी डालकर विधिपूर्वक घी पका लेवे। इस घी को अग्निदग्धव्रण पर लगावे। यह सभी प्रकार के अग्निदग्धव्रणों के रोपण करने के लिये उत्तम है ॥ १ ॥

पटोलीतैलम्—सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोल्याः कटुतैलकम्।
दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम्॥ १॥

परवल का कल्क १ भाग, सरसों का तेल चार भाग, परवल का क्वाथ १६ भाग। सबको एकत्र कर तेल पका लेवे। इस तेल के लगाने से अग्निदग्धव्रण, पीड़ा, स्राव, दाह, तथा स्फोट छाले आदि का नाश होता है॥ १॥

अथ चन्दनाद्यं यमकम्—चन्दनं वटश्रृङ्गाश्च मञ्जिष्ठा मधुकं तथा।
प्रपौण्डरीकं दूर्वा च पतङ्गं धातकी तथा॥१॥

लालचन्दन, बड़ की दाढ़ी, मंजीठ, मुलठ्ठी, पुण्डरीककाष्ठ, दूब, पतंग, धाय के फूल समभाग ले, इन सबका कल्क करे॥ १॥

एतैस्तैलं विपक्तव्यं गोक्षीरेण समायुतम्।
अग्निदग्धव्रणे श्रेष्ठं तत्क्षणाद्रोपणं परम्॥ २॥

तिल का तेल कल्क से चौगुना, गौ का दूध तेल से चौगुना डालकर तेल पाक कर लेवे। इस तेल को लगाने से अग्निदग्धव्रण तत्क्षण ही रोपण हो जाता है २

अथ लाङ्गलीघृतम्—उभे हरिद्रे मञ्जिष्ठा मधुकं लोध्रकट्फलम्।
कम्पिल्लकमुभे मेदे लाङ्गलीमूलमेव च॥ १॥

हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, मुलठ्ठी, लोध, कायफल की छाल, कमीला, मेदा, महामेदा, कलिहारी की जड़॥ १॥

पिप्पली त्रिफला चैव निम्बपत्रं च कार्षिकम्।
कपिलाया घृतं प्रस्थं पचेत्तद्द्विगुणं पयः॥ २॥

पिप्पली, हाड़, बहड़ा, आंवला, नीम के पत्ते प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्ष ले। गौ का घी एक प्रस्थ लेवें। गौ के घी से दुगना दूध ले॥ २॥

पलद्वयं च सिक्थस्य सिद्धे पूते च दापयेत्।
लाङ्गलीकं घृतं नाम व्रणानां रोपणं परम्॥ ३॥

सबको मिलाकर घी पका लेवे। घी को छानकर मोम दो पल मिला देवे। यह लांगलीकघृत व्रणों को रोपण करने में परम श्रेष्ठ है॥ ३॥

अग्निदग्धे विसर्पे च कीटलूताव्रणेषु च।
चिरोत्थेषु च दुष्टेषु नाडीमर्माश्रितेषु च॥ ४॥

अग्निदग्ध में, विसर्प में, कीट तथा मकड़ी के व्रणों में। चिरकाल से हुए २ दुष्ट नाड़ीव्रण तथा मर्माश्रित व्रणों में यह घी अत्यन्त लाभ करता है॥ ४॥

धातक्यादि—अग्निदग्धव्रणे देयं धातकीचूर्णमुत्तमम्।
अतसीतैलसंमिश्रं वह्निदग्धव्रणापहम्॥ ५॥

अग्निदग्धव्रण में धाय के फूलों का चूर्ण अलसी के तेल में मिलाकर लगावें तो व्रण का नाश करता है॥ ५॥

त्रिफलादि—अन्तर्धूमविदग्धं त्रिफलाचूर्णं विमिश्रितं तैलैः ।
क्षौमैः शीघ्रं शमयत्यग्निव्रणमाशु लेपेन ॥ ६ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला सबको मिलाकर अन्तर्धूम भस्म कर लें । इस भस्म को अलसी के तेल से मिलाकर लेप करें तो अग्निदग्धव्रण शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ६

अन्ये लेपाः—पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम् ।
अग्निदग्धव्रणे सम्यक्प्रयुञ्जीत विचक्षणः ॥ ७ ॥

पित्त विद्रधि तथा विसर्प को शान्त करने वाले लेप आदि अग्निदग्धव्रण में प्रयुक्त करने चाहियें ॥ ७ ॥

सुधा लेपः—सुधा पुरातनी दध्नो वारिणा परिपेषिता ।
लेपनं तैलदग्धस्य विस्फोटव्याधिनाशनम् ॥ ८ ॥

पुराने चूने की कली दही के पानी में पीसकर लेप करने से तेल से दग्ध हुई २ विस्फोट व्याधि को अर्थात् छालों को नष्ट करता है ॥ ८ ॥

अक्षिदग्धे योगः—अक्षिस्थेषु च कर्तव्यमिदमाश्च्योतनं हितम् ।
शेलुत्वक्त्रिफलादार्वीक्वाथो रोचनया युतः ।

आंख में अग्नि से छालादि पड़ने पर लसूढ़े की छाल, त्रिफला, दारुहल्दी, वंशरोचन इनका क्वाथ करके आंख में डाले ॥

स्नुह्यर्कक्षीरसिक्तेऽक्षिण—स्नुह्यर्कक्षीरसिक्तेऽक्षिण गव्यं सर्पिर्निषेचयेत् ॥ ९॥

थोहर या आक का दूध आंख में पड़ गया हो तो गौ का घी आंख में डाले ॥ ९ ॥ इति दग्धव्रणचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीयवैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जराचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायामग्निदग्धव्रणचिकित्सा समाप्ता ।

अथ भग्नव्रणनिदानमाह ।

भग्नं समासाद्द्विविधं हुताश काण्डे च संधौ च हि तत्र संधौ ।
उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितं च तिर्यक्प्रतिक्षिप्तमधश्च षोढा ।

हे अग्निवेश ! भग्न संक्षेप से दो प्रकार का होता है । एक काण्डभग्न, एक सन्धिभग्न । सन्धिभग्न छह प्रकार का होता है । उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यक् प्रतिक्षिप्त, और अधः ।

अथ सन्धिभग्नस्य सामान्यं लिंगम्—

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा रुक्स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ॥ १ ॥

प्रसारण अर्थात फैलाने, आकुञ्चन अर्थात् सिकोड़ने, वर्तन अर्थात् निष्क्रियावस्था में रखने से उग्र पीड़ा होती है। छूने से द्वेष होता है यह सब लक्षण

सामान्य से तब प्रगट होते हैं जब सन्धिभग्न हुआ २ हो ॥ १ ॥

अथोत्पिष्ट विश्लिष्ट लक्षणमाह—

सामान्यतः संधिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसंधेः श्वयथुः समन्तात्।
विशेषतो रात्रिभवा रुजश्च विश्लिष्टजे तौ च रुजा च नित्यम्॥२॥

सन्धि के उत्पिष्ट होने से अर्थात दो हड्डियों से सन्धि के घिसने पर सन्धि स्थान के चारों ओर शोथ हो जाता है, विशेष करके रात में पीड़ायें अधिक होती हैं॥ सन्धि के विश्लिष्ट अर्थात् शिथिल हो जाने पर सन्धि के चारों ओर सूजन हो जाती है तथा रात को पीड़ा होती है, और विशेष करके नित्य ही पीड़ा होती रहती है ॥ २ ॥

विवर्तितादि लक्षणम्—

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति।
क्षिप्तेऽतिशूलं विषमं च सक्थ्नोः क्षिप्ते त्वधोरुग्विघटश्च संधेः॥३॥

सन्धि के विवर्तित अर्थात् विपरीत हो जाने पर पार्श्वों में तीव्र पीड़ा होती है। सन्धि के तिर्यग् क्षिप्त होने पर अर्थात् एक सन्धि की हड्डि अपने स्थान से तिरछी हो पड़ने पर तीव्र पीड़ायें होती हैं ॥ सन्धि के क्षिप्त हो जाने पर अर्थात् दोनों ओर हड्डियों के दूर चले जाने पर अति शूल होता है तथा हड्डियें विषम हो जाती हैं। सन्धि के अधःक्षिप्त हो जाने पर अर्थात् नीचे लटक जाने पर सन्धि में शूल होता है तथा सन्धि पृथक् २ हो जाती हैं ॥ ३ ॥

काण्डभग्नमाह—

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थितं च।
काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम्॥ ४॥

काण्ड भग्न होने पर बारह प्रकार से हड्डियां टूटती हैं। (कर्कटका) दोनों पार्श्वों से दबावें तो मध्य में गांठ सी होकर केंकड़े के समान उभर आती है इसे कर्कटकाभग्न कहते हैं। (अश्वकर्ण), बड़ी हड्डियों में से किसी हड्डि का एक भाग घोड़े के कान के समान शरीर से बाहर निकल पड़े उसे अश्वकर्ण कहते हैं। (विचूर्णितं) हड्डी का सर्वथा चूर्ण हो जाना जिसे वैद्य शब्द से तथा स्पर्श से जान सकता है, (पिच्चित),अर्थात् सब ओर से पिची हुई और सूजी हुई। (अस्थितं च, पाठान्तरे अस्थिछल्लिका), एक पार्श्व की छोटी हड्डी के ढीला हो जाने या उसके अवयव के टूट जाने को कहते हैं। (काण्डभग्नं), हाथ पैरादि फैलाने में काण्ड का कांपना इससे काण्डभग्न विशेष जाना जा सकता है। (अतिपातित), हड्डी का सर्वथा कटकर पृथक् हो जाना अतिपातित कहाता है। (मज्जागत) अर्थात् हड्डी का ही टुकड़ा टूटकर हड्डी में घुसकर मज्जा को बाहर निकालता है इसे मज्जागत कहते हैं। (स्फुटित) अर्थात् थोड़ी टूटी हुई कांटों से भरी हुई के समान पीड़ा होती है (वक्र) अर्थात् हड्डी अलग न हुई हो प्रत्युत टेढ़ी कुबड़ी हो गई हो ॥ ४ ॥

काण्डभग्नस्य सामान्यलक्षणमाह—

छिन्नं द्विधा द्वादशधा च काण्डे स्रस्ताङ्गता शोथरुजातिवृद्धिः।
संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्पन्दनतोदशूलाः ॥ ५ ॥

काण्डभग्न के सामान्य लक्षण आगे लिखे जाते हैं। छिन्नंद्विधा अर्थात् दो प्रकार की छिन्न हड्डी, एक तो थोड़ी फटी हुई जो हड्डी के साथ लगी रहती है पृथक् नहीं होती, दूसरी सर्वथा फटकर पृथक् हो जाती है इसे सुश्रुत में पाटित नाम से कहा है। अंग शिथिल हो जाते हैं, शोथ तथा पीड़ा बढ़ जाती है, हाथ आदि से उस टूटे हुए स्थान को दबाओ तो शब्द होता है तथा छूने से द्वेष होता है अर्थात् स्पर्श सहा नहीं जाता, फड़कना, तोद तथा शूल होता है ॥ ५ ॥

काण्डभग्नस्य बहुविध्यम्—

सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिन्हमेतत्।
भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥६॥

तथा किसी भी अवस्था में सुख नहीं मिलता, प्रत्येक समय और प्रत्येक अवस्था में कष्ट ही प्रतीत होता है। ये काण्ड के टूट जाने के चिन्ह समझो। काण्डभग्न तो अन्य अनेक प्रकार का है परन्तु यहां हड्डियों के टूटने के रूप से मिलाकर संक्षेप से नाम कहे गये हैं ॥ ६ ॥

भग्नस्यकष्टसाध्यत्वम्—

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च।
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ७ ॥

थोड़ा भोजन करने वाले का, अपथ्य सेवन करने वाले का, वात प्रकृति वाले का तथा ज्वराध्मान मूत्र मल का रुकना आदि उपद्रवों से युक्त रोगी का भग्नरोग कठिनता से ही सिद्ध होता है ॥ ७ ॥

असाध्यतामाह—**भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथा च्युतम्।**
जघनं प्रतिपिष्टं तु वर्जयेच्च विचक्षणः ॥ ८ ॥

जो कटि के कपाल भग्न हो गये हों ("जानुनितम्बांसगण्ड तालुशंख वंक्षण शिरः सुकपालानि"। सु० शा० स्था० अ० ५। इस में नितंब में कपाल लिखे हैं अतः कटि भी ग्रहण कर सकते हैं)। अथवा कपाल संज्ञ वाली हड्डी कहीं से टूट गई हो, तथा कमर या कटि की हड्डी टूट गई हो तो असाध्य होती है। कटि में सन्धि से मुक्त हुई २ कोई भी हड्डी हो वह नहीं जुड़ती अर्थात् असाध्य होती है। तथा कटि से कोई हड्डी च्युत हो जाये नीचे गिर पड़े वह भी नहीं जुड़ती। जघन स्थान में पिष्ट तथा उत्पिष्ट हड्डी असाध्य होती है। इन को वैद्य असाध्य समझे ॥ ८ ॥

असंश्लिष्टं कपालं च ललाटे चूर्णितं च यत्।
भग्नं स्तनान्तरे शङ्खे पृष्ठे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ ९ ॥

तथा जो कपाल संधि बंधनों से रहित ढीला हो गया हो तथा जो मस्तक में ही चोट लगने से चूर्ण हो गया हो। तथा स्तनों के बीच का स्थान अर्थात् छाती में हड्डी टूट गई हो, पीठ में हड्डी टूट गई हो, शंख की हड्डी टूट गई हो, सिर में हड्डी टूट गई हो तो असाध्य समझो। रोगी तब नहीं बच सकता॥९॥

भग्नस्यानवधानतोऽसाध्यत्वम्—**सम्यक्संहितमप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबन्धनात्।**
संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत्॥ १०॥

अच्छी प्रकार से संधित अर्थात् जोड़ कर रखी हुई भी सन्धि या हड्डी बुरी प्रकार से स्थापन करने से या बुरी प्रकार से बांधने से अथवा चोट लगने या डरने आदि से संक्षोभ हो जाने से विकृत हुई २ संधि भी असाध्य होती है। अभिप्राय यह है, अच्छी प्रकार से संयमित की हुई भी हड्डी या संधि हो परन्तु ठीक स्थान पर स्थापन न की जाये तो बिगड़ जाती है, ठीक स्थान पर भी स्थापन की हुई संधि या हड्डी हो परन्तु ठीक बांधी न जा सके तो भी बिगड़ जाती है। और ठीक स्थापन भी की हुई हो, ठीक बांधी हुई भी हो तो भी चोट पेट लगने पर भयादि के संक्षोभ से विकृत हो जाती है। यह विकृत संधि या काण्डभग्न भी असाध्य होता है॥१०॥

अस्थिविशेषेभग्नविशेषमाह—**तरुणास्थीनि नाम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु।**
कपालानि विभिद्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च॥ ११॥

नाक, कान, आंखों के पुटों में जो तरुण अर्थात् कोमल हड्डियां हैं ये टेढी हो जाया करती हैं। नलकास्थियें टूट जाती हैं क्योंकि एक दूसरे में टूटकर हड्डी घुस जाती हैं। कपालअस्थियें विभक्त होकर पृथक् हो जाती हैं। रुचक तथा वलय नामक हड्डियां फूट जाती हैं। रुचक हड्डियों में दांत गिने जाते हैं। इस प्रकार से तरुण, नलक, कपाल, वलय तथा रुचक सभी प्रकार की हड्डियां भग्न होते हुए पूर्वलिखित रूपों में टूटती हैं। इसे ही भग्न कहते हैं॥११॥

इति भग्नव्रणनिदानम्॥

अथ भग्नचिकित्सा।

भग्नान्युपाचरेद्धीमान्सेकलेपनबन्धनैः।
शीतलैरेव विविधैः प्रयोगैश्च समीरितैः॥ १॥

भग्नव्रणों की चिकित्सा विद्वान वैद्य औषधों के रस से सिंचन करने अर्थात् सेक करने, लेप करने तथा बांधने से तथा विविध प्रकार के शीतल प्रयोगों से करे॥१॥

तत्रातिशिथिले बन्धे संधिस्थैर्यं न जायते।
गाढेनापि त्वगादीनां शोफो रुक्पाक एव च।
तस्मात्साधारणं बन्धं भग्ने शंसन्ति तद्विदः॥ २॥

यदि अति शिथिल बंध बांधा जाये तो संधि स्थिर नहीं होती है। यदि

अत्यन्त कठिनता से बंध बांधा जाये तो त्वचादि सूज जाती हैं पीड़ा होती हैं तथा वह स्थान पक जाता है। इसी कारण वैद्य लोग साधारण बंध बांधते हैं अर्थात् न तो अति ढीला और न अति कठोर ॥ २ ॥

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना।
पङ्केनाऽऽलेपनं कुर्याद्बन्धनं च कुशान्वितम् ॥ ३ ॥

आरंभ में भग्न को जानकर शीतल जल छिड़कना चाहिये। शुद्ध कीचड़ का लेप करदे और कुशा से बांध देवे ॥ ३ ॥

अवनामितमुन्नाम्येदुन्नतं चावपीडयेत्।
क्षिप्तं द्विधाऽपि च स्थाने संस्थाप्य विधिमाचरेत् ॥ ४ ॥

जो भग्न नीचे को झुक गया हो उसे ऊंचा उठाकर बांध देवे जो ऊपर उठ गया हो उसे नीचे झुकाकर बांध देवे ऊपर और नीचे के क्षिप्त भग्नों को ठीक स्थान पर रखकर बंधनादि विधि को करे ॥ ४ ॥

आलेपनार्थं मञ्जिष्ठामधुकं चाम्लपेषितम्।
शत धौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् ॥ ५ ॥

मंजीठ, मुलहठी को कांजी में पीसकर भग्न पर लेप कर देवे। सौ बार के धुले हुए घी का लेप करे अथवा शालिधान्यों को पीसकर लेप करे ॥ ५ ॥

न्यग्रोधादिकषायं तु शीतलं परिषेचने।
पञ्चमूलीविपक्वं तु क्षीरं दद्यात्सवेदने ॥ ६ ॥

न्यग्रोधादि गण के क्वाथ को शीतल करके भग्न पर सिंचन करे। लघु पञ्चमूली अर्थात् शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरु इनसे क्षीरपाक करके पीड़ायुक्त भग्न में देवे ॥ ६ ॥

शृगालविन्नामूलयोगः—मूलं शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु।
चूर्णीकृत्य तु सप्ताहादास्थिभङ्गमपोहति ॥ ७ ॥

पृष्टपर्णी की जड़ का चूर्ण मांसरस के साथ सातदिन पीने से अस्थिभङ्गरोग अर्थात् हड्डियों का टूटा होना अच्छा हो जाता है अर्थात् हड्डियां जुड़ जाती हैं ॥ ७ ॥

आभादियोगः—आभाचूर्णं मधुयुतमास्थिभङ्गे त्र्यहं पिबेत्।
पीत्वा चास्थि भवेत्सम्यग्वज्रसारनिभं दृढम् ॥ ८ ॥

बबूल का चूर्ण शहद से मिलाकर तीन दिन पीवे। तो टूटी हुई हड्डियां जुड़ जाती हैं तथा वज्र के समान दृढ हो जाती हैं ॥ ८ ॥

गृष्टिक्षीरयोगः—गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम्।
शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्ने पिबेन्नरः ॥ ९ ॥

प्रथमवार की प्रसूता गौ का दूध मधुरवर्ग की औषधों से सिद्ध करके घी मिलाकर शीतल करके लाख के चूर्ण से मिलाकर प्रातःकाल पिलाया जाये इससे

हड्डियां जुड़ जाती हैं ॥ ६ ॥

लाक्षागोधूमादिः—सघृतं चास्थिसंधानं लाक्षागोधूममर्जुनम्।
संधिमुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत्क्षीरेण मानवः ॥ १० ॥

लाख, गेहूं तथा अर्जुन की छाल इनका चूर्ण करके घी से मिलाकर चाटे तो टूटी हड्डियां जुड़ जाती हैं ॥ १० ॥

रसोनादि छिन्नभिन्नेषु—रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं सुमिश्रितम्।
छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां संधानमचिराद्भवेत् ॥ ११ ॥

जब सन्धियां पृथक् २ हो जायें या ढीलीं हो जायें, या हड्डियें टूट जायें उस समय गौ के दूध में लहसुन, शहद, लाख, घी और मिश्री इन सबका कल्क बनाकर मिलालें और इसे पिलावें तो वे सब हड्डियां जुड़ जाती हैं।तथा छिन्न,भिन्न तथा च्युत हुई २ हड्डियां भी इस से शीघ्र जुड़ जाती हैं ॥ ११ ॥

अथ लाक्षागुग्गुलुः—

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धाश्चूर्णीकृता नागबला पुरश्च।
संभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ १ ॥

लाख, हड़जोड़ी, अर्जुन की छाल,असगन्ध,नागबला,तथा शुद्ध गूगल इन सबका चूर्ण करके सेवन करावें तो सम्भग्न हड्डियें युक्त अर्थात् सन्धिमुक्त हड्डियें और इन से होने वाला शूल सर्वथा नष्ट होता है तथा अंग वज्र के समान हो जाते हैं॥१॥

सव्रणस्यभग्नस्यचिकित्सा—सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणः सर्पिर्मधूत्तरैः।
प्रतिसार्यः कषायैस्तु शेषं भग्नवदाचरेत्।
वातव्याधिविनिर्दिष्टं स्नेहं तत्रापि योजयेत् ॥ २ ॥

जिस भग्न के साथ व्रण अर्थात् घाव भी हो गया हो तो उस घाव को व्रण शोधक क्वाथों में शहद तथा घी मिलाकर पहले प्रतिसारण करे। फिर भग्न निवारण का उपाय करे। वातव्याधि में कहे हुए तैलादि स्नेहों की अस्थिसन्धिभग्नों में भी मालिश आदि करे ॥ २ ॥

अथ वह्निजभस्मादि—वह्निजं भस्म मधुना पातव्यं हितभोजिना।
संधिभङ्गेऽस्थिभङ्गे च विशेषेण प्रशस्यते ॥ १ ॥

मिरचों की भस्म शहद से मिलाकर पीवें तथा पथ्य भोजन करें तो संधिभग्न तथा अस्थिभग्न में विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥

अथाऽभाद्यो गुग्गुलुः—आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेतैः समांशकैः।
तुल्यं गुग्गुलुना योज्यं भग्नसंधिप्रसाधकम् ॥ १ ॥

बबूल की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लें, सब के समभाग शुद्ध गूगल लें। एकत्र मिलाकर सेवन करने से अस्थिभग्न जुड़ जाता है ॥ १ ॥

अथ गोधूमप्रयोगः—ईषद्विदग्धगोधूमचूर्णं पीतं समाक्षिकम्।
कटिसंधिषु भग्नेषु भुग्नेष्वस्थिषु पूजितम्॥ १॥

कुछ जले हुए गेहूं का चूर्ण कर के शहद से मिलाकर पिया जाये तो कटि संधि के टूट जाने पर तथा हड्डियों के टेढ़ा हो जाने या टूट जाने पर यह लाभ देता है॥ १॥

अथ पथ्यापथ्यम्—अविदाहिभिरन्नैश्च पिष्टकैः समुपाचरेत्।
मांसं मांसरसं क्षीरं सर्पिर्यूषं च मुद्गजम्॥ २॥

जो विदाही अन्न न हों वे खिलावे, पीठी खिलावें, मांस खिलावें, मांस का रस पिलावें, दूध पिलावें, घी पिलावें, मूंग का यूष दें॥ २॥

बृंहणं चान्नपानं च संधिभग्नाय दापयेत्
लवणं कटुकं क्षारं साम्लं मैथुनमातपम्॥ ३॥

बृंहण अन्न पान दें। ये सभी पथ्य संधियों के भग्न में देने चाहियें। परन्तु नमक, कटुरस, क्षार पदार्थ, अम्लरस, मैथुन, धूप॥ ३॥

व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च।

व्यायाम, रूखा अन्न इन पदार्थों को भग्नरोगी न सेवन करे॥

बालानामाशुभग्नसंधानमाह—बालानां तरुणानां च भग्नान्याशु भवन्ति वै।
समीचीनानि वृद्धानां भग्नानां न विशेषतः॥ ४॥

बालकों की तथा तरुणों की हड्डियां तथा संधियां टूटी हों या स्थानभ्रष्ट हो गई हों तो शीघ्र ही ठीक होजाती हैं। परन्तु वृद्धों की भग्न हड्डियां तथा भग्न संधियां शीघ्र ठीक नहीं होती॥ ४॥

इति हरिद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां भग्नरोगचिकित्सा समाप्ता॥

अथ नाडीव्रणनिदानम्।

व्रणविदारणे सावधानता—

यः शोफमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो
यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः॥ १॥

जो मूर्ख रोगी अत्यन्त पके हुए शोथ को अर्थात् फोड़े की सूजन को भी आम अर्थात् अपक्क या कच्चा समझकर उपेक्षा करता है, अर्थात् उसको दबाकर फाड़कर शोधनादि नहीं करवाता है। तथा जो मनुष्य अत्यन्त पीप वाले

व्रण की भी उपेक्षा करता है अर्थात् शोधनादि कर्म नहीं कराता है, ऐसे अहिताहार विहार वाले रोगी का वह पीप पूर्व कहे हुए त्वचा, मांस, सिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि तथा कोष्ठ के मर्मों को फाड़कर उनमें स्वयं घुस जाता है ॥ १ ॥

पूयस्यान्तर्गतिमाह—**तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु**
नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ २ ॥

वह पीप अत्यन्त मात्रा में अन्दर की ओर जाता है और उसकी गति क्योंकि नाड़ी के समान होती है इस कारण उसे नाड़ीव्रण कहते हैं ॥२॥

अथ संख्यामाह—**दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च**
संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ३ ॥

वातादि दोषों से पृथक् २ तीन, सन्निपात से एक तथा शल्य के चुभने आदि से आगन्तुक। ये पांच प्रकार के नाड़ीव्रण होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातिकामाह—**तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला**
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ १ ॥

वातिक नाड़ीव्रण का मुंह कठोर होता है तथा सूक्ष्म होता है, शूल होता रहता है। फेन या झाग से युक्त स्राव रात में अधिक होता है ॥१॥

पित्तजामाह—**पित्तात्तु तृड्ज्वरकरी भ्रमदाहयुक्ता**
पित्तं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ १ ॥

पैत्तिक नाड़ीव्रण में प्यास तथा ज्वर हो जाते हैं। भ्रम तथा दाह होता है। और दिन में अधिक गरम २ पित्त निकलता रहता है ॥ १ ॥

अथ श्लेष्मजामाह—**ज्ञेया कफाद् बहु घनार्जुनपिच्छिलास्रा**
स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥ १ ॥

कफज नाड़ीव्रण में बहुत गाढ़ा श्वेत रंग का पिच्छिल स्राव निकलता है। स्तब्ध अर्थात् व्रण कठोर होता है, खाज तथा पीड़ा होती रहती है, रात को व्रण में कष्ट बढ़कर उपरोक्त सभी बातें अर्थात् स्रावादि बढ़ जाते हैं ॥१॥

अथ द्वित्रिदोषजामाह—**दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन**
तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ १ ॥

दो २ दोषों के लक्षणों से द्विदोषज नाड़ीव्रण, तथा तीनों दोषों के लक्षणों से त्रिदोषज नाडीव्रण के लक्षण जानने चाहियें ॥ १ ॥

अथ त्रिदोषजमाह—**दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा**
यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि।
तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपा-
द्घोरां गतिं त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ॥ २ ॥

जिस नाड़ीव्रण में दाह हो, ज्वर हो, श्वास हो, मूर्च्छा हो, मुंह सूखता हो तथा जिसमें तीनों दोषों के पृथक् २ कहे हुए लक्षण प्रगट होवें, उसे सन्निपातज नाड़ीव्रण कहते हैं। वह घोर प्राणनाशक कालरात्रि के समान रोगी के लिये प्राण-नाशक होता है ॥ २ ॥

अथ शल्यनिमित्ताजामाह—**नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु**
स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति।
सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं
स्रावं करोति सहसा सरुजा च नित्यम् ॥ १ ॥

यदि शल्य अर्थात् बाण कांटा आदि शरीर के अन्दर ही नष्ट हो गया हो अथवा दिखाई न देता हो तब वह किसी प्रकार से मार्ग को लक्ष्य करके शीघ्र ही त्वचा, मांसादि पूर्व कहे हुए स्थानों में गति करता है। तब उस नाड़ीव्रण में से झागदार, मथा हुआ, गरम २ रक्त से मिश्रित स्राव एकदम निकलता रहता हैं, तथा पीड़ा भी नित्य होती रहती है ॥ १ ॥ अथ साध्यासाध्यत्वमाह—

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ २ ॥

त्रिदोषज नाडी व्रण असाध्य है शेष चारों नाड़ीव्रण यत्न से सिद्ध हो सकते हैं अर्थात् कष्ट से सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥ इति नाड़ीव्रणनिदानम्।

अथ नाडीव्रणचिकित्सा।

नाडीनां गतिमन्वीक्ष्य शस्त्रेणोत्पाट्य कर्मवित्।
सर्वं व्रणक्रमं कुर्याच्छोधनारोपणादिकम् ॥ १ ॥

क्रिया कुशल वैद्य नाड़ी व्रण की गति को देखकर शस्त्र से उस नाड़ी को फाड़कर सभी प्रकार के व्रणनाशक शोधनरोपणादि उपाय करे॥ १ ॥

कृशादिभ्यःक्षारसूत्रमाह-**कृशदुर्बलभीरूणां नाडी मर्माश्रिता तु या।**
क्षारसूत्रेण संछिद्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ २ ॥

पतले दुबले, निर्बल तथा डरपोक नरनारियों के जो नाड़ी व्रण मर्म स्थान में भी आश्रित हों तो भी उसे क्षारसूत्र से छेदन करे शस्त्र से कदापि छेदन न करे २

वातनाडीचिकित्सा-**नाडीं वातकृतां साधु पाटितां लेपयेद्भिषक्।**
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥

वातज नाड़ीव्रण को भली प्रकार से फाड़कर उसे अपामार्ग के फल और तिल पीसकर बनाये हुए प्रलेप से लीप देवे ॥ ३ ॥

पित्तनाड़ीचिकित्सा—**पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशाह्वयैः।**

पित्तज नाड़ीव्रण को फाड़कर तिल, मंजीठ, नागदन्ती और हल्दी को पीस कर इन का लेप करदे ॥

श्लैष्मिकीनाडीचिकित्सा—**श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥४॥**

श्लेष्मज नाड़ीव्रण को विधिपूर्वक फाड़कर तिल, मुलठी, दन्ती, नीम तथा सेंधानमक को पीसकर इन का लेप कर दे ॥ ४ ॥

शल्यजानाडीचिकित्सा—**शल्यजां तिलमञ्जिष्ठामध्वाज्यैर्लेपयेन्मुहुः।**

शल्य से उत्पन्न हुए २ नाडीव्रण को फाड़कर तिल, मंजीठ, शहद और घी इन से मिलाकर बार २ लेप करे ॥

सामान्यचिकित्सा—**आरग्वधनिशाकोलचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता।**
सूत्रवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ५ ॥

अम्लतास की जड़, हल्दी, बेर का चूर्ण इन के चूर्ण में घी और शहद मिलाकर सूत पर मल दें और इस की बत्ति बनायें। उस बत्ती को व्रण में देवें तो व्रण शुद्ध होता है तथा रोपण होता है ॥ ५ ॥

जात्यादिवर्तिः—**जात्यर्कशम्याककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः।**
वर्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीः स्नुक्क्षीरपिष्टा सह सैन्धवेन॥६॥

चमली के पत्ते, आक की जड़ वा पत्ते, अम्लतास की जड़ वा पत्ते, करंज के पत्ते, दन्ती की जड़, सेंधानमक, सौंचललवण, यवक्षार इन का चूर्ण थोहर के दूध और सेंधानमक से मिलाकर बत्ती के रूप में बनायें। इसे नाड़ीव्रण में डालें तो शीघ्र ही नाड़ीव्रण अच्छे हो जाते हैं ॥ ६ ॥

निर्गुण्डीतैलम्—**समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसं हरेत्।**
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ७ ॥

संभालु की जड़ तथा पत्तों को कुचल कर स्वरस निकालें। उस स्वरस के समभाग तिल का तेल डालकर पका लें। यह तेल नाड़ीव्रण तथा दुष्टव्रणों को नाश करता है ॥ ७ ॥

अथ गुग्गुलुयोगः—**गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैश्चाऽऽज्ययोजितैः।**
नाडीं दुष्टव्रणं चापि जयेदपि भगंदरम् ॥ ८ ॥

शुद्ध गूगल, हरड़, बहेड़ा, आंबला, सोंठ, मिरच, पीपल प्रत्येक द्रव्य सम भाग डालें। (अन्य लोग त्रिफला और त्रिकुटा दोनों के एकत्र चूर्ण के समभाग गूगल डालते हैं) इन्हें कूटकर घी मिला लें। इसे सेवन करावें तो नाड़ीव्रण तथा दुष्टव्रण नष्ट हो जाते हैं तथा भगन्दर भी नष्ट होता है॥ ८ ॥

इति नाड़ीव्रणचिकित्सा ॥

अथ सर्वव्रणरोगाणां पथ्यापथ्यम्।

यवषष्टिकगोधूमाः पुराणाः सितशालयः।
मसूरतुवरीमुद्गयूषश्च मधुशर्करा॥ १ ॥

जौ, साठी के चावल, गहूं, पुराने श्वेत शाली धान्य, मसूर की दाल, अरहर, मूंग इनका यूष शहद से बनी हुई खांड या मालखण्डनामक शर्करा से बना द्रव्य १॥

विलेपी लाजमण्डश्च जाङ्गला मृगपक्षिणः।
घृतं तैलं पटोलं च वेत्राग्रं बालमूलकम् ॥ २ ॥

विलेपी, लाजा का मांड, जांगल मृग तथा जांगल पक्षी। घी, तेल, परवल, बेत का अगला भाग, नरम मूली ॥ २ ॥

वार्ताकं कारवेल्लं च कर्कोटं तण्डुलीयकम्।
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथावस्थं यथामलम्।
व्रणशोथे व्रणे सद्योव्रणे नाडीव्रणेऽपि च ॥ ३ ॥

बैगन, करेला, ककोड़ा, चौलाई। ये सभी पदार्थ पथ्य हैं और व्रण शोथ में व्रण में, सद्योव्रण में, नाड़ीव्रण में अवस्थानुसार दोषों को देखकर प्रयोग करने चाहियें ॥ ३ ॥

रूक्षाम्लशीतं लवणं व्यवायमायासमुच्चैः परिभाषणं च।
प्रियासमालोकनमह्नि निद्रां प्रजागरम् चङ्क्रमणं नितान्तम् ॥ ४ ॥

परन्तु रूखे अन्न, अम्ल, शीतल पदार्थ, लवण, मैथुन, परिश्रम, ऊंचे बोलना स्त्रियों को अधिक देखना, दिन में सोना, रात को जागना, बहुत घूमना ॥ ४ ॥

शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं ताम्बूलशाकानि च पत्रवन्ति।
अजाङ्गलं मांसमसात्म्यमन्नं विवर्जयेत्संततमप्रमत्तः ॥ ५ ॥

शोकातुर रहना, संयोग विरुद्ध भोजन करना, अधिक पानी पीना, पान खाना, पत्तों के साग खाना। जांगल मांस के अतिरिक्त अन्य मांस खाना, असात्म्य अन्न खाना, ये सभी बातें सावधानता से त्याग देवे, ये सब अपथ्य हैं ॥ ५ ॥

इति सर्वव्रणचिकित्सा—

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्नि टीकायां सर्वव्रणचिकित्सा समाप्ता।

अथ भगंदरनिदानम्।

गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटिकाऽऽर्तिकृत्।
भिन्ना भगंदरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥

गुदा के दो अंगुल आसपास के स्थान में पिड़िका अर्थात् फुंसी या गांठ उत्पन्न होती है वह पीड़ा करती है और फट जाती है उसे भगन्दर कहते हैं वह पांच प्रकार का होता है। (भग को दारण करने वाला होने के कारण इसे भगन्दर कहते हैं "गुदभगव्यस्तिप्रदेशदारणात् भगन्दराः" ऐसा सुश्रुत नि. स्था. अ. ४ में कहा है तथा "भगं परिसमन्ताच्च गुदं बस्तिं तथैव च। भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगन्दरः" ऐसा भोज ने कहा है। अभिप्राय यह है कि भग से यहां पर गुदा तथा बस्ति का भी ग्रहण करना चाहिये) ॥ १ ॥

अथ संख्यामाह-वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थः संनिपाततः।
उन्मार्गगः पञ्चमः स्यादेवं पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥

वात, पित्त और कफ से तीन, सन्निपात से एक तथा पांचवां उन्मार्गग अर्थात् शल्य लगने से हुआ २। ये पांच प्रकार के भगन्दर होते हैं ॥२॥

अथ तस्य पूर्वरूपमाह-कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजादयः।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगंदरे ॥ ३ ॥

कटि के कपाल अर्थात् कमर की कपालास्थि में पीड़ा होती है, गुदा में दाह, खुजली तथा पीड़ा आदि होती है। भगन्दर होने से पहले ये सब पूर्वरूप होते हैं ॥३॥

अथ वातिकमाह-

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिटिकां करोति सा।
उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नाऽरुणफेनवाहिनी ॥४॥

कसैले तथा रूखे द्रव्यों के अत्यन्त सेवन करने से अत्यन्त कुपित हुआ २ वायु अपानदेश में अर्थात् गुदा के पास पिडिका या गांठ उत्पन्न कर देता है। उस पिडिका को यदि अग्नि के सेक आदि देने से दबाया न जाये अर्थात् उपेक्षा की जाये तो वह पक जाती है। और अत्यन्त पीड़ा देती है। और फट जाने पर उस में से लाल रंग का फेन अर्थात् झाग सा निकलता रहता है ॥४॥

तत्राऽऽगमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥

उस में से मूत्र, मल तथा वीर्य भी निकलता रहता है। और उस में अनेक व्रण हो जाते हैं। ऐसे अनेक व्रणों से युक्त वातिक भगन्दर को शतपोनक भगन्दर कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ पित्तजमाह-

प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिटिकां गुदार्तिदाम्
तदाशुपाकाऽहिमपूयवाहिनीं भगंदरं तुष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ५ ॥

पित्त को प्रकुपित करनेवाले कारणों से अति प्रकुपित हुआ २ पित्त गुदा में पीड़ा करनेवाली लाल रंग की पिडिका को उत्पन्न करता है। तब वह शीघ्र पक जाती है और उस में से गरम २ पीप निकलता है। ऐसे पैत्तिक भगन्दर को उष्ट्रशिरोधर या उष्ट्रग्रीव कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ श्लेष्मजमाह-कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः।
श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगंदरः ॥ ६ ॥

श्लेष्मा को कुपित करनेवाले कारणों से कुपित हुआ २ कफ, गुदा में पिडिका को उत्पन्न करता है। उस में खुजली होती है, फूटने पर घना स्राव निकलता है वह कठोर होती है तथा उसमें मन्द २ पीड़ा होती है, उसका श्वेत सा रंग होता है इस कफज भगन्दर को परिस्रावी कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ संनिपातजमाह-बहुवर्णरुजा स्रावाः पिटिका गोस्तनोपमाः।

शम्बूकावर्तवन्नाडी शम्बूकावर्तको मतः॥ ७॥

सन्निपात से हुए २ भगन्दर में अनेक दोषों के से रंग तथा पीड़ायें होती हैं, अनेक प्रकार का स्राव होता है, गौ के स्तन या किशमिश के सदृश पिडिकायें होती हैं। छोटे शंख या घोंघे के समान नाड़ीव्रण होता है उसे शम्बूकावर्त्तक कहते हैं॥ ७॥

अथोन्मार्गगमाह—

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्सा कृमिभिर्विदीर्यते।
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गि भगंदरं वदेत्॥ ८॥

कांटे आदि के क्षत से गुदा के पास नाड़ी की गति अन्दर को होती है उस की चिकित्सा न कर के उपेक्षा करें तो कीड़े उस स्थान को फाड़कर अनेक प्रकार के मार्ग बना लेते हैं उस को उन्मार्गि भगन्दर कहते हैं। क्योंकि कृमियों के बनाये हुए मार्ग में से मल आदि निकलता रहता है इस कारण इसे उन्मार्गि भगन्दर कहत हैं॥ ८॥

अथासाध्यलक्षणमाह—घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगंदराः।
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः॥ ९॥

सभी भगंदर कठिनता से सिद्ध होते हैं। परन्तु त्रिदोषज तथा क्षतज भगन्दर तो असाध्य ही होते हैं॥ ९॥

पुनरसाध्यमाह—वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च।
भगंदराः स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम्॥ १०॥

जिन भगन्दरों में से वायु, मूत्र, मल, कीड़े और वीर्य बहता रहे वे मनुष्य को अवश्य मार डालते हैं॥ १०॥

इति भगन्दरनिदानम्॥

अथ भगंदरचिकित्सा।

गुदपिटिकायामादौ कुर्याद्रक्तावसेचनं मतिमान्।
जलसदनाभिरशेषं सा पाकं न प्रयाति यथा॥ १॥

गुदा में जब पिड़िका उत्पन्न ही हुई हो तब ही रक्त निकलवा देना चाहिये। फिर जल में बैठना आदि उपाय करे जिस से वह पके नहीं॥ १॥

अथ पिटिकादाहमाह—अपानमार्गपिटिकां दहेत्स्वर्णशलाकया।
अग्निप्रतप्तया पश्चात्कुर्याद्दग्धव्रणक्रियाम्॥ २॥

गुदा की इस पिड़िका को सोने की सलाई को अग्नि में तपाकर जला देवे। फिर व्रण के समान चिकित्सा करे॥ २॥

अपक्वपिड़िका चिकित्सा—पिटिकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम्।
कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया॥ ३॥

जब तक पिड़िका पकी न हो तब रोगी को अपतर्पण कराके अर्थात् लंघन

कराके फिर विरेचन देवे और अन्त में अन्य कर्म करे। फूटी हुई पिड़िकाओं की चिकित्सा आगे कहते हैं ॥ ३ ॥

भिन्नानां चिकित्सा—**एतासां पाटनक्षारवह्निदाहादिकं क्रमम्।**
विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम ॥ ४ ॥

इन पकी हुई पिड़िकाओं को फाड़कर, क्षारसूत्र से जलाकर या अग्नि से दाह करके क्रमशः सभी कार्य करके व्रण के समान दोषानुसार क्रमसहित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ वटपत्रादिलेपः—**वटपत्रेष्टिकाशुण्ठीगुडूचीसपुनर्नवाः।**
सुपिष्टाः पिटिकावक्त्रे लेपः शस्तो भगंदरे ॥ १ ॥

बड़ के पत्ते, ईंट का चूर्ण, सोंठ, गिलोय तथा पुनर्नवा इन सबको समभाग लेकर अत्यन्त महीन पीसकर पिड़िका के मुखपर लेप करदे। यह लेप भगन्दर की पिडिका के लिये उत्तम माना जाता है ॥ १ ॥

खदिरादि क्वाथः—**खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः।**
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगंदरविनाशनः ॥ २ ॥

खैर तथा त्रिफला के क्वाथ में भैंस का घी मिलाकर और विडंग का चूर्ण मिलाकर पिलाने से भगन्दर का नाश होता है ॥ २ ॥

विडालास्थि लेप—**त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम्।**
भगंदरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ ३ ॥

बिल्ली की हड्डी को त्रिफला के रस से घिसकर प्रलेप करें तो यह भगन्दर को शीघ्र ही नष्ट करता है तथा दुष्ट व्रणों को भी नाश करने में श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

शुनोऽस्थ्यादि लेपः—**शुनोऽस्थिभूलता तक्रैः पेषिता खररक्तयुक्।**
लेपो भगंदरं हन्यान्नरास्थ्नां तैलमेव च ॥ ४ ॥

कुत्ते की हड्डी और केंचुए इन दोनों को तक्र से पीसें फिर गधे का खून मिलाकर भगन्दर पर लेप करे। अथवा आदमी की हड्डियों का तेल लगाने से भी (जो पाताल यंत्र आदि से निकाला गया हो) भगन्दर का नाश होता है ॥ ४ ॥

व्रणरोपणं कुष्ठादि—**कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्तीमागधीसैन्धवं मधु।**
रजनीत्रिफलातुत्थैर्हितं स्याद् व्रणरोपणम् ॥ ५ ॥

कूठ, त्रिवी, तिल, दन्ती, पीपल, सेंधानमक, शहद, हरड़, बहेड़ा, आंवला तथा नीला थोथा इन सबको पीसकर देवें तो व्रणों को भरने के लिये यह योग उत्तम है ॥ ५ ॥

तिलादिलेपः—**तिलत्रिवृन्नागदन्तीमञ्जिष्ठाद्यैः ससैन्धवैः।**
सक्षौद्रैश्च प्रलेपोऽयं भगंदरकुलान्तकृत् ॥ ६ ॥

तिल, त्रिवी, नागदन्ती, मंजीठ, सेंधानमक इन सबको एकत्र पीसकर शहद

में मिलाकर प्रलेप करें तो भगन्दर को जड़ समेत नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

रसाञ्जनादि कल्कः—**रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः।**

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती कल्को नाडीव्रणापहः ॥ ७ ॥

रसौंत, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, नीम के कोमल पत्ते, त्रिवी, तेजबल की छाल, दन्तीमूल इन सब को समभाग लेकर कल्क करे। इसे लगाने से नाड़ीव्रण तथा भगंदर भा नष्ट होता है ॥ ७ ॥

तिलाभयादि योगः—**तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशावचाकुष्ठमगारधूमः।**

भगंदरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ ८ ॥

तिल, हरड़, लोध, नीम के पत्ते, हल्दी, बच, कूठ, रसोईघर का धुंआं इन सब को पीसकर लेप करें तो भगन्दर, नाड़ीव्रण, उपदंश, दुष्टव्रण इन सब को यह शोधन तथा रोपण करता है ॥ ८ ॥

अथ नवकार्षिको गुग्गुलुः—

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैककर्षयोजिता गुटिका।

कुष्ठभगंदरनाडीदुष्टव्रणशोधिनी कथिता ॥ १ ॥

हरड़ का चूर्ण एक कर्ष, बहड़ा का चूर्ण एक कर्ष, आंवले का चूर्ण एक कर्ष, शुद्ध गूगल ५ कर्ष ले, पीपल एक कर्ष लें। सब को मिलाकर गोली बनावें। इस को सेवन करने से कुष्ठ, भगन्दर, नाड़ीव्रण तथा दुष्टव्रण शुद्ध होकर नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ जम्बूकप्रकारः—**जम्बूकस्याऽऽमिषं भुक्त्वा प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः।**

अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते तु भगंदरात् ॥ १ ॥

गीदड़ का मांस भोजन के साथ पकाकर किसी प्रकार व्यंजनादि से खिलावें तथा अजीर्ण न होने दें तो एक मास तक ऐसा करने से भगन्दर नष्ट होजाता है॥१

अथ सप्तविंशतिको गुग्गुलुः—**त्रिकटुत्रिफलामुस्तं विडङ्गामृतचित्रकम्।**

चव्यैले पिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥१॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, विडंग, गिलोय, चीता, चव्य, इलायची, पिप्पलामूल, हाऊबेर, देवदार ॥ १ ॥

तुम्बरं पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम्।

बिडं सौवर्चलं क्षारं सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २ ॥

तुम्बर अर्थात् तेजबल के फल, पोहकरमूल, चव्य, इन्द्रायण, हल्दी, दारुहल्दी, विड्लवण, सौंचललवण, यवक्षार, सेंधालवण, गजपीपल ॥ २ ॥

यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्विगुणगुग्गुलुः।

कोलप्रमाणगुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ ३ ॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लेकर चूर्ण करे। जितना सब द्रव्यों का

मिलित चूर्ण हो उस से दुगना शुद्ध गूगल हो। सब को एकत्र मिलाकर एक कोलभर की गोली बनाकर शहद से मिलाकर खावे ॥ ३ ॥

कासं श्वासं तथा शोफमर्शांसि च भगंदरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम् ॥ ४ ॥

इस से खांसी, श्वास, शोथ, बवासीर, भगन्दर, हृदय का शूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल तथा गुदा का शूल नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन्।
चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥

अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमिरोग, पुराना ज्वर, क्षयरोग ॥ ५ ॥

अनाहं च तथोन्मादं सकुष्ठान्युदराणि च।
नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहं श्लीपदं तथा।
सप्तविंशतिको ह्येष सर्वरोगनिषूदनः ॥ ६ ॥

आनाह, उन्माद कुष्ठ तथा उदररोग। सभी प्रकार के नाडीव्रण, दुष्टव्रण, प्रमेह तथा श्लीपद इन को तथा सभी रोगों को यह सप्तविंशतिक गूगल नाश करता है ॥ ६ ॥

अथ करवीराद्यं तैलम्—**करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः।**
मातुलुङ्गार्कपयसा पचेत्तैलं भगंदरे ॥ १ ॥

कनेर की जड़, हल्दी, दन्तीमूल, लांगली, सेंधालवण, चीता इन सबको समभाग लेकर कल्क करे (और तिल का तेल कल्क से चौगुना लेवे। तथा बिजौरे नीबू का स्वरस, तथा आक का दूध, तेल से चौगुना या समभाग लेकर तेल पका लेवे। यह तेल भगन्दर में लाभ करता है ॥ १ ॥

अथ विष्यन्दनं तैलम्—**चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ।**
सुधां वचां लाङ्गलिकां हरितालं सुवर्चिकाम् ॥१॥

चीता, आक की जड़, त्रिवी, पाठा की जड़, काकोदुम्बरिका की जड़, कनेर की जड़, थोहर, बच, लांगली, हड़ताल, सज्जी ॥ १ ॥

ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत्।
एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगंदरे।
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ २ ॥

मालकंगनी इन सबको समभाग लेकर कल्क बनावे। इससे चौगुना तिल का तेल और तेल से चौगुना जल डालकर तेल पका लेवे। यह विष्यन्दन तेल भगन्दर में देवे। शोधन, रोपण तथा सवर्ण करने में यह तेल उत्तम है ॥१॥

अथ निशादितैलम्—**निशार्कक्षीरसिन्धवाग्निपुरलाङ्गलिवत्सकैः।**
सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगंदरविनाशनम् ॥ १ ॥

हल्दी, आक का दूध, सेंधानमक, चीता, गूगल, लाङ्गली, कसीस (वत्सक—इन्द्रजौं, कासीस, निर्गुण्डी इन तीन का नाम है)। इन सबको समभाग लेकर कल्क बनावे। इससे चौगुना तिल का तेल ले। तेल से चौगुना जल डालकर तेल पका लेवे। इस तेल की मालिश करने से भगन्दर का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—

आमे संशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम्।
पक्वे पुनः शस्त्रविधिस्तथा क्षाराग्निकर्म च ॥ १ ॥

जब भगंदर की गिल्टी आम हो अर्थात् पकी न हो तब संशोधन अर्थात् विरेचनादि देवे, लेपकरे, लंघन करावे तथा रक्त निकलवावे। पक जाने पर शस्त्र से छेदन करे क्षारसूत्र से तथा अग्नि से जलादेवे ॥ १ ॥

सर्वत्र शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलो रसः।
पटोलं शिग्रुवेत्राग्रं धत्तूरो बालमूलकम् ॥ २ ॥

भगंदर में सर्व अवस्था में ही शालीधान्य मूंग, विलेपी, जांगलजीवों का रस, परवल, सुहांजना, बेत का अगला भाग, धतूरा, कोमल मूली ॥ २ ॥

तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु।
एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथादोषं भगंदरे ॥ ३ ॥

तिल तथा सरसों का तेल, तिक्तवर्ग के पदार्थ, घी तथा शहद ये सभी पथ्य भगंदर में दोषानुसार रोगियों को सेवन करने चाहियें ॥ ३ ॥

अथापथ्यम्—

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च।
संवत्सरं परिहरेद्यावद्रूढव्रणो नरः ॥ ४ ॥

व्यायाम, मैथुन, युद्ध घोड़े आदि की पीठ पर सवारी करना, गुरुपदार्थ खाना, ये सभी बातें एक वर्ष तक छोड़ देवे। जब तक व्रण अच्छा न हो जाये तब तक ये पदार्थ छोड़ देने से भगंदर रोगी को लाभ होता है ॥ ४ ॥ इति भगन्दरचिकित्सा ॥

इति हरिद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीयश्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्नीटीकायां भगन्दरचिकित्सा समाप्ता ॥

अथोपदंशनिदानम्।

अथ तस्य हेतुमाह—

हस्ताभिघातान्नखदन्तपातादधावनाद्रत्यतिसेवनाद्वा।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधापचारैः ॥ १ ॥

हाथ की चोट लगने से, प्रबल कामातुर होकर लिंग को नखों से या दांतों से काटलेने पर (कामसूत्र में कहा है—"शास्त्रस्य विषयस्तावद्यावन्मन्दरसा नराः।

प्रवृत्ते रतिचक्रे तु न शास्त्रं नापि च क्रमः। जब तक कामदेव कम प्रबल होता है तब तक शास्त्रानुसार क्रमशः चुंबन अंगमर्दन आलिंगन आदि होते हैं परन्तु काम की प्रबलता के समय तो शास्त्र में न कही हुई बातें नखदन्तआदि से लिंग को काटना भी हो ही जाता है) अथवा लड़ाई झगड़े के कारण लिंग को दांतों या नखों से काटलेने पर, लिंग को जल से न धोने पर, अथवा अत्यन्त विषयभोग करने पर, अथवा अल्प,महाद्वार,दीर्घ,कर्कशरोम,संकीर्ण देशत्वादि योनि दोषों से युक्त स्त्री के साथ मैथुन करने से, तथा विविध प्रकार के अपचारों से अर्थात् खारे, गरम मैले पानी से लिंग को धोने से या ब्रह्मचारिणी आदि से मैथुन करने से पांच प्रकार के उपदंशरोग हो जाते हैं। वात से, पित से, कफ से, रक्त से तथा सन्निपात से, ये सभी पांच प्रकार के उपदंश होते हैं। (अभिघात से होने वाला उपदंश अलग नहीं माना जाता, क्योंकि वात आदि दोषों के पृथक् २ लक्षण उसमें होते हैं इस कारण दोषजों में ही उसे भी गिना जाता है)॥ १ ॥

अथ वातजमाह—

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ॥

वातज उपदंश में लिंग में शूल होता है, भेद होता है, फड़फड़ाहट होती है तथा काले फोड़े हो जाते हैं ॥

अथ पित्तजरक्तजावाह—

पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः ॥ २ ॥

पित्तज उपदंश में लिंग में पीले रंगके,बहुत आर्द्रता से युक्त तथा दाहसे युक्त फोड़े हो जाते हैं॥ रक्तज उपदंशमें मांस के समान,तांबे के रंग जैसे अथवा लाल रंग के फोड़ों से युक्त लिंग हो जाता है ("स्फोटैः सकृष्णै रुधिरं स्रवन्तं रक्तात्मकं पित्त समानलिङ्गम्"। ऐसा भी अन्यत्र पाठ है। अर्थात् लिंग काले फोड़ों से युक्त होता है तथा उनमें से रक्त बहता रहता है तथा पित्त के समान अन्य लक्षण भी होते हैं)॥ २ ॥

अथ कफजमाह—

सकण्डुरैः शोफयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्व्रणैः स्रावयुतैः कफेन ॥

कफज उपदंश में सूजन वाले महान श्वेत रंग के व्रण—जिनमें से स्राव बहता हो—लिंग पर हो जाते हैं॥

अथ संनिपातजमाह—

नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

त्रिदोषज उपदंश में प्रत्येक दोष के स्राव तथा वेदनायें होती रहती हैं,यह असाध्य होता है ॥ ३ ॥

अथासाध्यत्वमाह—

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च।
संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः॥ ४ ॥
कालेन शोफक्रिमिदाहपाकैः प्रशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ५ ॥

जिस उपदंश रोगी के लिंग का मांस गल सड़कर नष्ट हो गया हो, जिसे कीड़े खा चुके हों, और जहां केवल अण्डकोष ही रह गये हों वह उपदंश असाध्य है। जो विषय में लगा हुआ मूर्ख मनुष्य उपदंश के होते ही चिकित्सा नहीं करता है वह कुछ काल पीछे जब उसके लिंग में शोथ हो जाये, क्रिमि पड़ जाये, दाह हो तथा पीप पड़ जाये और इससे लिंग गल सड़कर नष्ट हो जाये, तब वह मनुष्य भी मर जाता है ॥ ४—५ ॥

अथैकस्थानत्वेनात्र लिङ्गार्शमाह—**अङ्कुरैरिव संघातैरुपर्युपरि संस्थितैः।**

क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा १

लिंग के ऊपर अंकुरों के समान कुछ लम्बी घनी, एक दूसरे पर चढ़ी हुई मांस की बत्ती सी बन जाती है जो कुक्कुड़ की शिखा के समान होती है ॥१॥

कोशस्याभ्यन्तरे संधौ सर्वसंधिगताऽपि वा।
सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ २ ॥
लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे।

अण्डकोषों के अन्दर की सन्धि में अथवा लिंग की सब सन्धि स्थानों में यह त्रिदोषज मांस की बत्ती उत्पन्न हो जाती यह वेदना से युक्त होती है, पिच्छिल होती है तथा त्रिदोषज होने के कारण कष्ट साध्य होती है ॥ २ ॥ इसी को कई आचार्य्य लिङ्गवर्त्ति कहते हैं, कई लिङ्गार्श कहते है।

अथ स्त्रीणामुपदंशलक्षणमप्याह—

मेढ्रसंधौ व्रणाः केचित्केचित्सर्वाश्रयास्तथा ॥ ३ ॥

लिंग के छिद्र की सन्धि में कुछ व्रण हो जाते हैं, कुछ वण सारे ही सन्धि-स्थान में हो जाते हैं ॥ ३ ॥

कुलत्थाकृतयः केचित्केचित्पद्मदलोपमाः।
रुजानाहार्तिबहुलास्तृष्णाक्लेदसमन्विताः।
स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते उपदंशाश्च दारुणाः ॥ ४ ॥

उन व्रणों में से कुछ तो कुलथ के आकार के होते हैं, कुछ कमल के पत्ते के सदृश होते हैं। उनसे पीड़ा और आनाह बहुत होता है, तृष्णा लगती है तथा स्राव निकलता रहता है। ये भयंकर उपदंश स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही होते हैं। (ये श्लोक सुश्रुत के माने जाते हैं परन्तु और ग्रन्थों में इनका पाठ न होने से प्रायः इन्हें आनार्ष माना जाता है) ॥४॥ इत्युपदंशनिदानम्।

अथोपदंशचिकित्सा।

स्निग्धस्विन्नस्य तस्यादौ ध्वजमध्ये शिराव्यधः।
जलौकापातनं वा स्यादूर्ध्वाधः शोधनं तथा ॥ १ ॥

रोगी को पहले स्निग्ध करके स्वेदन दवे फिर ध्वजा के मध्य में शिरा को बींध देवे,

अथवा जोंक लगावे तथा वमन विरेचन से शरीर का शोधन करे ॥ १ ॥

सद्योऽपहृतदोषस्य रुक्शोफावुपशाम्यतः ।
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरश्च सः ॥ २ ॥

शीघ्र ही जिस ने शरीर के दोषों को वमन विरेचन रक्तमोक्षणादि से निकाल दिया हो उस की पीडा तथा सूजन शान्त हो जाती है। इस रोग में लिंग के व्रणों को पकने नहीं देना चाहिये। क्योंकि पककर लिंग का ही नाश होजाता है॥२

अथ पटोलादिक्काथः—

पटोलनिम्बत्रिफलाकिरातैः क्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ।
सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशाहरः प्रयोगः ॥ १ ॥

पटोलपत्र, नीम की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला और चिरायता इन को समभाग लेकर क्वाथ बनाकर पीवे। अथवा खैर तथा असन का क्वाथ पीवे। अथवा इसी क्वाथ में शुद्ध गूगल डालकर पीवे। अथवा त्रिफला के चूर्ण के साथ वही क्वाथ पीवे। इस प्रयोग से सभी प्रकार के उपदंश नष्ट हो जाते हैं॥१॥

अथ पित्तोपदंशे गैरिकादिः—गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।
सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पेयः पित्तोपदंशहा २॥

गेरु, रसौंत, मंजीठ, मुलट्ठी, खस, पद्माख, चन्दनलाल, नीला कमल इन सब को एकत्र कर के क्वाथ करे और घी आदि डालकर स्निग्ध कर के इसे पिलावे तो पित्तज उपदंश नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ लेपाः ।

पुण्डरीकादि—सपौण्डरीकैर्मधुकरास्नाकुष्ठपुनर्नवैः ।
सरलागुरुभद्राख्यैर्लेपो वातोपदंशहा ॥ १ ॥

पुण्डरिया काष्ठ, मुलट्ठी, रास्ना, कूठ, पुनर्नवा, सरलकाष्ठ, अगर, मोथा, वा देवदारु (भद्रः मोथा वा देवदारु वा इन्द्रजौ) इन सब को समभाग लेकर पीसकर जल से मिला उपदंश पर लेप करे तो इस से वातज उपदंश रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

बब्बूलादि—बब्बूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथ वा ।
गुण्डनं लिङ्गदेशस्य लेपः पूगफलेन वा ॥ २ ॥

बबूल के पत्तों का चूर्ण अथवा अनार की छाल का चूर्ण लिंग के घावों पर छिड़कें तो उपदंश में लाभ होता है, अथवा सुपारी को घिस के लेप करें तो भी उपदंश में लाभ होता है ॥ २ ॥

अथ वटादिः—वटप्ररोहार्जुनजम्बुपथ्या लोध्रं हरिद्रासहितः प्रलेपः ।
सर्वोपदंशेष्ववरोहणार्थं चूर्णं च तज्जं विमलाञ्जनेन ॥३॥

बड़ के अंकुर, अर्जुन की छाल, जामुन की छाल, हरड़, लोध तथा हल्दी सब को जल से पीसकर प्रलेप करें इस से उपदंश के घाव नष्ट होते हैं । व्रणों को रोपण करने के लिये इन ही पूर्वोक्त द्रव्यों का चूर्ण तथा सुरमा श्वेत या काला अथवा रसौंत मिलाकर इस चूर्ण को व्रणों पर छिड़कें तो व्रण शीघ्र ही भर जाते हैं ॥ ३ ॥

त्रिफलामषी—दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मषीं मधुसंयुताम् ।
कृत्वोपदंशलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ४ ॥

त्रिफला को कड़ाही में डालकर आग पर रखकर जला डाले । उस त्रिफला की मसी अर्थात् काली राख को शहद से मिलाकर उपदंश पर लगावें इस से व्रण अति शीघ्र ही भरकर ठीक हो जाते हैं ॥ ४ ॥

दारुहरिद्रादि—त्वचो दारुहरिद्रायाः शङ्खनाभी रसाञ्जनम् ।
लाक्षा गोमयनिर्यासस्तैलं क्षौद्रं घृतं पयः ॥ ५ ॥

दारुहल्दी की छाल, शंख का मध्य भाग, रसौंत, लाख, गोबर का स्वरस, तेल, शहद, घी तथा दूध ॥ ५ ॥

एभिः सुपिष्टैर्द्रव्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् ।
व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्वयथुर्दाह एव च ॥ ६ ॥

इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर पीस ले । इसे उपदंश पर लेप कर दें । इस से उपदंश के व्रण, सूजन तथा दाह शान्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥

नीलोत्पलादि—नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च ।
उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं प्रशस्यते ॥ ७ ॥

नीलाकमल, कुमुदनी कमल तथा लालकमल इन सबको पीसकर उपदंश के घावों पर लगाने से अथवा इनका चूर्ण करके छिड़कने से लाभ होता है ॥७॥

रसाञ्जनादि—रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम् ।
सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ८ ॥

रसौंत, सिरस की छाल, हरड़ इन सबको समभाग लेकर पीसकर रखे । इस चूर्ण को शहद से मिलाकर लेप करें तो व्रण तुरन्त भर जाता है ॥ ८ ॥

गोपीचन्दनादि—गोपीचन्दनतुत्थे च समभागेन मर्दयेत् ।
कज्जली जलसंयुक्ता व्रणानां लेपने हिता ॥ ९ ॥

गोपी चन्दन तथा नीलाथोथा समभाग लेकर मर्दन करे । इन दोनों की कज्जली जल से मिलाकर लेप करें तो व्रणों के लिये यह लेप अत्यन्त हितकर है ९॥

मोचादि—मोचापूगविभूतिं च कोलत्वक्शङ्खजीरकम् ।
पिष्ट्वोपदंशे लेपोऽयं पयसा पानमेव च ।
नाशयेदुष्णतां तूर्णं शुष्कान्कुर्याद्व्रणानपि ॥ १० ॥

केले के पत्ते वा तने की तथा सुपारी की भस्म करलें । पृथक् २ दोनों भस्में एक २ भाग लें, बेर की छाल एक भाग, शंख एक भाग, जीरा एक भाग, इन सबको एकत्र करके चूर्ण कर रखें । इस चूर्ण को दूध से या जल से खावें, तथा जल से पासकर लेप करें । तो इससे शीघ्र ही व्रण की उष्णता नष्ट हो जाती है तथा बहते हुए व्रण भी सूख जाते हैं ॥ १० ॥

अथ पारदादिलेपः—**पारदं गन्धकं तालं दरदं च मनःशिलाम् ।**
पृथक्कर्षं द्विकर्षं च मुड्डारं सङ्खजीरकम् ॥ १ ॥

पारा एक कर्ष, गन्धक एक कर्ष, हड़ताल एक कर्ष, शिंगरफ एक कर्ष, मनसिल एक कर्ष, मुर्दासंग दो कर्ष, शंख दो कर्ष, जीरा दो कर्ष ॥ १ ॥

विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां मर्दयेत्सुरसारसैः ।
छायाशुष्कां ततः कृत्वा पुनरुन्मत्तजद्रवैः ॥ २ ॥

सबसे पहले कज्जली बनाकर फिर अन्य द्रव्य मिलावे । फिर सब को तुलसीके स्वरस से घोट ले और छाया में सुखा लेवे । फिर धतूरे के स्वरस में घोटे ॥२॥

विमर्द्याथ वटी कार्या उपदंशे प्रयोजयेत् ।
गोघृतेन प्रलेपोऽयं व्रणानां रोपणे हितः ॥ ३ ॥

फिर गोली बनाकर रखे । इसे गौ के घी से मिलाकर उपदंशों के व्रणों पर लेप करें तो व्रणों को रोपण करने में यह लेप हितकारी है ॥३॥ इति लेपाः ।

अथ स्वरसाः—

आम्रत्वग्रसः-**आम्रत्वचं विनिष्पीड्य निगृह्य स्वरसं पलम् ।**
चतुष्पलं त्वजाक्षीरं संयुक्तं प्रपिबेत्प्रगे ॥ १ ॥

आम की छाल को कूटकर स्वरस निकाल कर एक पल लेवे, चारपल बकरी का दूध मिलाकर प्रातःकाल पी लेवे ॥ १ ॥

एवं मुनिदिनं कुर्यादुपदंशे व्रणे हितम् ।
तथा क्षीरं तथा जीर्णं गोधूमं पथ्यमाचरेत् ॥ २ ॥

इस प्रकार सात दिन तक करे यह उपदंश के व्रणों के लिये हितकारी है । दूध तथा पुराने गेहूं का पथ्य करे ॥ २ ॥

जातीप्रवालरसः—

जातीप्रवालस्वरसं पलार्धं धेनोर्घृतं सर्जरसेन युक्तम् ।
पिबेत्प्रगे पञ्चविधोपदंशे क्षाराहते गोधूमसर्पिः पथ्यम् ॥३॥

चमेली के कोमल पत्तों का स्वरस आधापल, गौ का घी और राल इन सब को एकत्र मिलाकर प्रातःकाल पिलावे तो पांचों प्रकार के उपदंश शान्त हो जाते हैं । परन्तु कोई द्रव्य जो क्षार हो न खाना चाहिये, केवल गेहूं तथा घी का हलवा या रोटी आदि बनाकर ही खाना चाहिये ॥ ३ ॥ इति स्वरसाः ।

अथ प्रक्षालनम् निम्बार्जुनादि—

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसाद्भिः ।
प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्याच्चूर्णं च पित्तास्रभवोपदंशे ॥ १ ॥

नीम, अर्जुन, पीपल, कदम, शाल, जामुन, बड़, गूलर, बेत इनकी छालों को समभाग लेकर, इनको उबालकर इनके जल से व्रणों को धोवें, इनही को पीसकर लेप करें । इनका घृतपाक करें और खिलावें । तथा इनही का चूर्ण करके छिड़के । ये पित्तरक्त के उपदंश में लाभ देते हैं ॥ १ ॥

त्रिफलादि–त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा ।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ २ ॥

त्रिफला के क्वाथ से व्रणों को धोना चाहिये । अथवा भांगरे के स्वरस से व्रणों को धोना चाहिये । इस से उपदंश के व्रणो की शान्ति होती है ॥ २ ॥

अश्वत्थादि–अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजः शृतः ।
व्रणशोथोपदंशानां नाशनः क्षालनात्स्मृतः ॥ ३ ॥

पीपल की छाल, गूलर की छाल, पिलखन की छाल, बड़ की छाल, बेत की छाल इन का क्वाथ कर के व्रणों को धोवें तो व्रणशोथ तथा उपदंशों को शान्त करता है ॥ ३ ॥

जयादि–जयाजात्यश्वमारार्कशम्याकानां दलैः पृथक् ।
कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

भांग, चमेली, कनेर, आक, अम्लतास इन सब के पत्तों में से किसी एक के पत्तों का क्वाथ कर के लिङ्गपाक में धोवे तो लिङ्ग पका हो तो भी शीघ्र अच्छा हो जाता है ॥ ४ ॥

अथोपदंशेलिङ्गलेपः—रसकर्पूरगद्याणं मर्दयेत्खादिराम्बुना ।
प्रक्षालयेद्वारिणा च शुष्के लेपस्तु वारिणा ॥ १ ॥

रसकपूर छः माशे लेकर, खैर के क्वाथ से घोट लें । फिर जल डालकर धो लेवे । शेष रसकपूर जब सूख जाये तब जल से घोटकर लिङ्ग पर लेप करदे ॥१

लिङ्गलेपो व्रणं हन्ति त्रिदिनान्नात्र संशयः ॥ १ ॥

इस से उपदंश के व्रण तीन दिन में निस्संशय नाश हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ व्रणोपदंशे पूगादिलेपः–पूगं सुदग्धमेकं तु रसगन्धकहिङ्गुलम् ।
खदिरं तुत्थकं चैव मर्दयेन्निम्बुनीरकैः ॥ १ ॥

एक सुपारी को आग में जलाकर पीस लेवे, जितनी सुपारी की भस्म होवे, उतना २ ही पारा, गंधक, शिंगरफ, कत्था, नीलाथोथा इन सब को एक २ भाग लेकर नींबू के रस से घोट लेवे ॥ १ ॥

समभागानि सर्वाणि गुटिकां कारयेद्बुधः ।

उपदंशे घृतैर्लेपस्त्रिदिनाद्व्रणरोपणः ॥ २ ॥

इन सब को पीसकर गोली बना रखे। इस गोली को घी में मिलाकर उपदंश में लेप करें तो यह ३ दिन में व्रणों को रोपण कर देती हैं॥ २ ॥

अथोपदंशस्फोटे लेपः-**जातीफलविडङ्गानि रसकं देवपुष्पकम्।**

समभागानि सर्वाणि नवनीतेन मर्दयेत्।

स्फोटानामुपदंशानां व्रणशोधनरोपणः ॥ ३ ॥

जायफल, विडंग, खपरिया, लौंग इन सब को समभाग लेकर मक्खन से मर्दन करके लेप करें तो यह स्फोटों और उपदंशों के व्रणों का शोधन तथा रोपण करता है ॥ ३ ॥

अथ घृतानि। भूनिम्बादिघृतम्—

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिरासनानाम्।

शृतैश्च कल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ २ ॥

चिरायता, नीम, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पटोलपत्र, करंज, चमेली के पत्ते, खैर, विजयसार इनको समभाग लेकर क्वाथ करे। इस क्वाथ से चौथाई भाग गौ का घी लेवे। और घी से चौथाई भाग चिरायता आदि पूर्वलिखित द्रव्यों का कल्क लेवे। सबको एकत्र करके घी पकावे। इसे उपदंश रोगी को खिलावें और लगावें तो सभी उपदंश रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

करञ्जादिघृतम्-

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम्।

सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥ २ ॥

करंज, नीम, अर्जुन, शाल, जामुन, बड़ इनकी छाल का क्वाथ तथा इन्हीं द्रव्यों का कल्क बना लेवे। इस क्वाथ से चौथाई भाग गौ का घी, घी से चौथाई भाग पूर्वलिखित कल्क लेवे। सबको एकत्र करके घी पका लेवे। इस घी को उपदंश रोगी को खिलावें और लगावें भी तो उपदंश के दोष, दाह, पाक, स्राव रंग अर्थात् पकने के विविध लाल पीले आदि रंग सबही नष्ट होते हैं॥ ३ ॥

अथागारधूमादितैलम्-**अगारधूमो रजनी सुराकिण्वं च तैस्त्रिभिः।**

भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम्।

शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ १ ॥

रसोई घरका धुंआ एक भाग, हल्दी दो भाग, सुराबीज अर्थात यीष्ट ३ भाग सबका एकत्र कल्क बनाकर तैल में डालकर पका लेवे। इस तैल के लगाने से कण्डू, शोथ तथा पीड़ा नष्ट होती है इससे व्रणों का शोधन तथा रोपण होता है तथा व्रण की त्वचा का रंग शेष शरीर की त्वचा के समान हो जाता है ॥ १ ॥

अथ चोपचिन्याश्चूर्णम्-**कुडवं चोपचिन्याश्च शर्करायाः पलं तथा।**

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवपुष्पकम् ॥ १ ॥

चोबचीनी एक कुडव लें, खांड एक पल लें, पिप्पली, पिप्पलीमूल, मिरच; लौंग ॥ १ ॥

आकल्लं चुरकं शुण्ठी जन्तुघ्नं च वराङ्गकम्।
पृथक्कोलमितं ग्राह्यमेतच्चूर्णीकृतं शुभम् ॥ २ ॥

अकरकरा, गोखरु, सोंठ, विडंग, दारचीनी, इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ कोल भर लेवे। इन सबका चूर्ण करे ॥ २ ॥

सर्वमेकत्र संयोज्यं कर्षार्धं प्रतिवासरम्।
भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां युक्तं पथ्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥

इसे प्रतिदिन आधा २ कर्ष लेकर शहद तथा घी मिलाकर खावे। उचित पथ्य सेवन करे ॥ ३ ॥

शाल्योदनं तथा सूपस्तुवरीणां घृतं मधु।
गोधूमः सैन्धवं शिग्रुर्बिम्बी कोशातकी फलम् ॥ ४ ॥

शाली चावल, तुअर की या अरहर की दाल, घी तथा शहद, गेहूं, सेंधानमक, सुहांजने की फली, बिम्बाफल, तोरी ॥ ४ ॥

आर्द्रकं जलमन्दोष्णं हितमत्र प्रकीर्तितम्।
पञ्चोपदंशरोगाणां प्रमेहाणां तथैव च।
व्रणानां वातरोगाणां कुष्ठानां च विनाशनम् ॥ ५ ॥

अदरक इन सबको पथ्य में खावें। तथा कुछ कोसा पानी पीवें। तो यह चूर्ण पांचों प्रकार के उपदंश रोगों को, प्रमेहों को, व्रणों को, वातरोगों को तथा कुष्ठों को नाश कर देता है ॥ ५ ॥ इति चोपचिन्याद्यचूर्णम्।

अथ चोपचिनीपाकः—चोपचिन्युद्भवं चूर्णं पलद्वादशमेव च।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं नागरं त्वचम् ॥ १ ॥

चोपचीनी का चूर्ण १२ पल लेवे। पिप्पली, पिप्पलामूल, मिरच, सोंठ, दारचीनी ॥ १ ॥

आकल्लकं लवङ्गं च प्रत्येकं कर्षसंमितम्।
शर्करासमचूर्णं च पाचयेत्सर्वमेकतः ॥ २ ॥
मोदकं कारयेत्तत्तु कर्षं कर्षं प्रमाणतः।
सायं प्रातर्निषेव्यस्तु पथ्यं पूर्वोक्तचूर्णवत् ॥ ३ ॥

अकरकरा, लौंग, इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण एक २ कर्ष लेवें। सब चूर्णों को एकत्र करके जितने सब हों, उतनी ही खांड लेवें,। खांड में जल डाल कर आग पर रख चाशनी बना ले। इन सबको एकत्र मिलाकर एक २ कर्ष के मोदक बनालें इसे सायं प्रातःकाल सेवन करावे। पथ्य पूर्वलिखित चोपचीनी के चूर्ण के समान करे ॥ ३ ॥

उपदंशे व्रणे कुष्ठे वातरोगे भगंदरे।
धातुक्षयकृते कासे प्रतिश्याये च यक्ष्मणि।
सर्वान्रोगान्निहन्त्याशु ततः पुष्टिकरो भवेत् ॥ ४ ॥

उपदंश, व्रण, कुष्ठ, वातरोग, भगन्दर, धातुओं के क्षय से हुआ २ कासरोग, प्रतिश्याय, यक्ष्मा, इन सब रोगों को यह पाक शीघ्र ही नष्ट करता है। तथा बाद में पुष्टि देता है ॥ ४ ॥ इति चोपचिनिपाकः।

अथ बालहरीतकीयोगः—बालपथ्यापलैकं च तुल्यं शाणमितं तथा।
निम्बुद्रवेण संमर्द्य दृढं सप्तदिनानि वै ॥ १ ॥

छोटी हरड़ें एकपल, नीलाथोथा एक शाण। दोनों को पीसकर नींबू के स्व-रस में सात दिन घोटता रहे ॥ १ ॥

गुटिकां चणकप्रायां छायाशुष्कां तु कारयेत्।
शीतोदकानुपानेन नित्यमेकां प्रदापयेत् ॥ २ ॥

फिर चने के समान गोली बनाकर छाया में रखके सुखा लेवे। प्रातःकाल शीतल जल से एक गोली खिला देवे ॥ २ ॥

घस्राणामेकविंशत्या मुच्यते तूपदंशतः।
शालिगोधूममुद्गाश्च गोसर्पिः पथ्यमीरितम् ॥ ३ ॥

२१ दिन तक इसे खाने से उपदंश रोग नष्ट हो जाता है। इसके साथ शाली चावल, गेहूं, मूंग, गौ का घी ये सभी पथ्य कहे हैं ॥ ३ ॥

अथ रसगन्धककज्जली—कर्षमात्रो रसः शुद्धो द्विकर्षो गन्धकस्तथा।
विधिवत्कज्जलीं कृत्वा तां च गोघृतसंयुताम् १॥

शुद्ध पारा एक कर्ष, शुद्ध गन्धक दो कर्ष, दोनों की कज्जली करे ॥ १ ॥

माषमात्रां प्रतिदिनं दद्यादेवं त्रिसप्तकम्।
गोधूमान्नं घृतं पथ्यं कारयेल्लवणं विना।
उपदंशापहः श्रेष्ठो योगोऽयं मुनिभिः स्मृतः ॥ २ ॥

इसे एक माषा भर लेकर गौ के घृत से मिलाकर प्रतिदिन खिलावें। २१ दिन नित्य सेवन करें तथा गेहूं की रोटी घी से खावें या हलवा खावें। नमक न खावें। यह उपदंश नाशक श्रेष्ठ योग है ऐसा मुनियों ने कहा है ॥ २ ॥

अथ महाक्षारगुटी—

महाक्षारमाकल्लकं खादिरं च क्रमाद्वर्धितं वारिणा पिष्टमेतत्।
निषेवेत माषप्रमाणं घृतेन महारोगानिघ्नं व्रणेषु व्रणघ्नम् ॥ १ ॥

महाक्षार अर्थात् साबन एक भाग, अकरकरा दो भाग, कत्था ३ भाग इनको पानी से पीस लें। इसे एक माषा भर लेकर घी से मिलाकर खावें तो यह महारोगों अर्थात् कुष्ठादि को नाश करता है, व्रण रोगों में देवें तो व्रणों का नाश करता है ॥ १ ॥

गोधूमं गोघृतं पथ्यं मन्दं लवणमाचरेत्।
द्विवारं ग्राहयेन्नित्यमुपदंशनिवृत्तये ॥ २ ॥

गेहूं का आटा, गौ का घी ये पथ्य हैं। थोड़ा लवण खा सकते हैं। दो बार दिन में इस औषध को खावे तो उपदंश की निवृत्ति होती है ॥ २ ॥

अथ सर्वोपदंशे रसघृतमुच्यते—

शुद्धं रसं पिचुमितं द्विबलिं प्रमर्द्य
सर्वद्विभागनवनीतमपि प्रमर्द्य।
वस्त्रे प्रलिप्य पिचुमन्दविपर्णशाखां
संवेष्टयेन्नतमुखीं परिदीप्य वर्तिम् ॥ १ ॥

शुद्ध पारा एक पिचुभर अर्थात् दो कोल ले, शुद्ध गंधक ४ कोल लेकर दोनों की कज्जली करे। फिर १२ कोलभर मक्खन मिला के खूब घोट लेवे। फिर एक वस्त्र पर इस का लेप करे। एक नीम की पत्तेरहित शाखा पर इस वस्त्र को लपेट देवे। फिर नीचे को बत्ती का मुंह कर के आग लगा देवे ॥ १ ॥

तस्या घृतं स्रवति काचमये च पात्रे
धृत्वाऽहिवल्लिदलसाकमिदं प्रदेयम्।
सर्वोपदंशकरिकेसरिणं व्रणघ्नं
पट्वादिकं रसघृते च विवर्जनीयम् ॥ २ ॥

उस के जलने से जो घी गिरे उसे शीशे के प्याले में इकट्ठा करता जायें। इस घी की (तीन रत्ति मात्रा से आरंभ करे) उचित मात्रा पान में लगाकर खाने को देवे। तो सभी प्रकार के उपदंश रूपी हाथियों को मारने के लिये यह शेर के समान सामर्थ्य रखता है। व्रणनाशक है। इस रसघृत के सेवन के समय नमक आदि पदार्थ नहीं खाने चाहिये और पूर्व लिखित गेहूं का अन्न और घी ही खाना चाहिये ॥ २ ॥ अथ पथ्यापथ्यम्—

दिवा निद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम्।
आयासमम्लं तक्रं च वर्जयेदुपदंशवान् ॥ १ ॥

दिन में सोना, मूत्र को रोकना, भारी अन्न खाना, मैथुन करना, गुड खाना, परिश्रम करना, अम्लरस खाना, तक्र पीना ये सभी पदार्थ उपदंश रोगी छोड़ देवे ॥ १ ॥

अथ पूगादियोगः—द्विपलं चिक्कणं पूगं द्विकर्षं सिन्धुसस्यकम्।
कर्कारुत्वक्कर्षमिता भृष्टमेतत्त्रिकं भवेत् ॥ २ ॥

चिकनी सुपारी दो पल लेवे, संभालु के बीज दो कर्ष ले, तरबूज या पेठे का छिलका एक कर्ष लेवे। तीनों को मिलाकर भून लेवे ॥ २ ॥

जम्भोदरगतं तुत्थं पुटपाकविधानतः।
पक्कं चणकमानं तु सर्वमेतत्सुखल्वके ॥ ३ ॥

नीलाथोथा एक चनाभर लेकर जम्बीरी नीबू में डालकर उस को मिट्टी से लीपकर पुटपाक कर के पका ले । उस चनेभर नीलेथोथे को नीबू से निकाल कर पूर्वोक्त सुपारी आदि के साथ मिलावें ॥ ३ ॥

जम्बीरसलिलैर्मर्द्यं गाढं सिद्धं दिनत्रयात् ।
उपदंशं चन्द्रकं च व्रणं पूतिप्रमेहकम् ॥ ४ ॥
पृदाकुवीरुच्छदनालिप्तं प्सातं निवारयेत् ।
शर्करासहितं पथ्यं गोधूमान्नं घृतप्लुतम् ॥ ५ ॥

इसे जम्बीरी नींबू के रस से ३ दिन तक खरल करें । इसे चीते के पत्ते में लगाकर खावें तो उपदंश, चन्द्रिका, व्रण, पूतिप्रमेह सब नष्ट होते हैं । गेहूं के बने पदार्थ घी मिलाकर खांड डालकर खावें ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथोपदंशेऽपरोलेपः—पलमात्रे कटुतैले द्व्यक्षं सिक्थं च कर्षमेव पृथक् ।
कम्पिल्लकं विरोजा सिन्दूरः सौरकं चैव ॥ ६ ॥

सरसों का तेल एक पल लें । मोम दो अक्ष लेवे । कमीला, गंधाबिरोजा, सिन्दूर, सोरा ॥ ६ ॥

मुर्दाडकं च सर्वं पित्तलपात्रे विपाचितं शिखिना ।
मन्दं पचेत्प्रमथ्य स्वपाणिनोद्धृत्य तत्सिद्धम् ॥ ७ ॥

मुर्दासंग प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष लेवे । सब को एकत्र तेल में मिलाकर पीतल के पात्र में डाल मन्द २ अग्नि पर पकावे । तथा किसी लकड़ी आदि की कड़छी से मथता जावे । पक कर एक प्राण हो जाने पर उतार लेवे । इस में से थोड़ा सा मल्हम हाथ से निकाल कर श्वेत धुले हुए वस्त्र पर लगाकर व्रण के ऊपर लगा देवें ॥ ७ ॥

सितवस्त्रे संलिप्य व्रणोपरि स्थापयेत्सम्यक् ।
क्षतभूदेशं सर्वं सशूकदोषं फिरङ्गजं हन्यात् ॥ ८ ॥

इसे लगाने से क्षतस्थान, शूकदोष, फिरङ्गजव्रण सभी नाश होते हैं ॥ ८ ॥

शस्त्रकृतं नखजातं दन्तजमाशु व्रणं शिखिजम् ।
दृष्ट्वा प्रत्ययमेतत्प्रकाशितं बालबोधाय ॥ ९ ॥

शस्त्र के घाव, नख के घाव, दांत के घाव, अग्निदग्ध घाव थे सभी इस से नष्ट होते हैं । इस योग को विश्वस्त जानकर प्रकाशित किया जाता है जिस से अज्ञानी वैद्य भी लाभ उठा सकें ॥ ९ ॥ इत्युपदंशरोग चिकित्सा ।

इति हरिद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेद-शास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद् दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा, राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायामुपदंशचिकित्सा समाप्ता ।

अथ शूकदोषनिदानम् ।

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—**अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ।**
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥१॥

जो मूर्ख मनुष्य लिंग को बढ़ाने की इच्छा क्रमशः नहीं करता अर्थात् कुढंग से लिंग को बढ़ाना चाहता है उसे १८ प्रकार के शूकज रोग हो जाते हैं ॥ (वात्स्यायनादि के कामसूत्रों में लिंग बढ़ाने के जो योग लिखे हैं उनमें शूक अर्थात् जल में पैदा होने वाला विष युक्त कीड़ा प्रायः पड़ता है, उसके कारण जो रोग लिंग में हो जाते हैं उन्हें शूकदोष कहते हैं । बिना कीड़े आदि के डाले जो साधारण काष्ठादि औषधों से तेल या लेप बनाये जाते हैं वे सभी लाभदायक होते हैं उनसे हानि नहीं होती है ।)

अथ सर्षपिकामाह—**गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भुग्नहेतुका ।**
पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥२॥

शूक के अनुचित प्रयोग से हुई २ सर्षपिका अर्थात् श्वेत सरसों के समान आकार वाली पिड़िका लिंग पर हो जाती हैं यह कफवात से उत्पन्न हुई होती हैं ॥ २ ॥

अथाष्ठीलिकामाह—**कठिनैर्विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत् ।**

कठोर अप्रशस्त टेढ़े शूकों से हुई २ तथा वायु के बिगड़ने से अष्ठीलिका अर्थात् लोहार की भाण्डी के समान कठिन पिड़िका अष्ठीलिका कहाती है ॥

अथ ग्रथितमाह—**शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्कफात् ॥ ३ ॥**

प्रतिदिन शूकों से लिंग को मर्दन करें तो ग्रथित रोग हो जाता है यह कफज होता है इससे लिंग पर गांठें पड़ जाती है । (कामसूत्रों के आचार्य इसी लिये प्रतिदिन शूकों का उपयोग करना निषेध करते हैं । वे तीसरें दिन मलने को कहते हैं । क्योंकि प्रतिदिन मलने से ग्रथित रोग हो जाता है ॥ ३ ॥

अथ कुम्भिकामाह—**कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभाऽशुभा ॥**

शूकों के मलने से ही बिगड़े हुए रक्तपित्त से उत्पन्न हुई २ जामुन की गुठली के समान लम्बी चौड़ी काले रंग वाली, तुम्बी के समान आकार जैसी कुम्भिका पिड़िका, लिंग पर हो जाती है इसे कुम्भिका कहते हैं ।

अथालजीमाह—**तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथोक्तां च विचक्षणैः । ४ ॥**

दुष्ट शूकों से उत्पन्न हुई २ प्रमेह में कही हुई अलजी नाम की पिड़िका के समान ही लाल काली तथा फोड़ों वाली पिड़िका लिंग पर उत्पन्न हो जाती है । इसके कारण भी और लक्षण भी प्रमेह पिड़िका के समान होते हैं । केवल स्थान भेद होता है अर्थात् यह केवल लिंग पर ही होती है इसे अलजी कहते हैं ॥४॥

अथ मृदितमाह—**मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥**

शूकप्रयोग के अनन्तर वातकोप से लिंग सूज जाता है तथा पीड़ित होता

है इसे मृदितरोग कहते हैं ॥

अथ संमूढपीडिकामाह-**पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपीडिका भवेत् ॥५॥**

शूकों को हाथों से मल २ कर बार २ लिंग पर मलने से लिंग संमूढ अर्थात् नीचा ऊंचा हो जाता है उसे संमूढ पिड़िका कहते हैं। यह भी वातिक होती है ॥५॥

अथावमन्थमाह—**दीर्घा बह्वयश्च पिटिका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः।**
सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

शूकों के कारण कफ तथा रक्त के बिगड़ने से लंबी २ बहुत सी पिड़िकायें लिंग पर हो जाती हैं और मध्य में से ये फट जाती हैं। इस में वेदना होती है तथा पीड़ा के कारण ही रोमहर्ष होता है ॥ इस रोग का नाम अधिमन्थ है ॥६॥

अथ पुष्करिकामाह—**पिटिकाभिश्चिता या तु पित्तशोणितसंभवा।**
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥ ७ ॥

शूकों के कारण पित्त तथा रक्त के बिगड़ जाने से कमल के कोष के समान अनेक पिड़िकाओं से भरी हुई एक पिड़िका लिंग पर हो जाती है उसे पुष्करिका कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ स्पर्शहानिमाह—**स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम्।**

शूकों के मलने से दूषित हुआ २ रक्त स्पर्श हानिरोग को करता है। अर्थात् लिंग को स्पर्शज्ञान नहीं होता।

अथ त्वक्पाकमाह—**वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् ॥८॥**

शूकदोषों के कारण दूषित हुए वात पित्त से त्वक्पाक नामकरोग होता है। इस में लिंग की त्वचा पक जाती है तथा ज्वर तथा दाह होता है ॥ ८ ॥

अथोत्तमामाह—**मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च सा।**
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजः ॥ ९ ॥

शूकों के वार २ मलने के कारण अजीर्ण हो जाने पर यह उत्तम नाम की व्याधि हो जाती है। इस में मूंग तथा माष के समान लाल रंग की पिड़िकायें हो जाती हैं। यह शूकाजीर्ण से दूषित हुए २ रक्तपित्त से होती है ॥ ९ ॥

अथ शतपोनकमाह—**छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः।**
वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः ॥१०॥

दूषित शूकों के दुरुपयोग से दूषित हुआ २ वातरक्त शतपोनकरोग को पैदा करता है। इस में अणु मुखवाले छिद्रों से लिंग चारों ओर से छलनी के समान भर जाता है इसे शतपोनक कहते हैं ॥ १० ॥

अथ त्वक्पाकमाह—**वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् ॥**

शूकदोष से दूषित वात पित्त से हुए २ त्वक्पाक व्याधि में ज्वर तथा दाह होता है ॥

अथ शोणितार्बुदमाह—

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटिकाभिर्निपीडितम् ॥ ११ ॥

शूकों के दुरुपयोग करने से रक्त बिगड़ कर अर्बुद कर देता है। उस में काले २ फोड़े तथा लाल २ पिड़िकायें भरी हुई होती हैं। और व्रण के स्थान में अत्यन्त पीड़ा होती है उसे शोणितार्बुद कहते हैं ॥ ११ ॥

यस्य वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥

अथ मांसार्बुदमाह—**मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥ १२ ॥**

शूकपात के पीछे प्रहरादि के लगने से, मांस के बिगड़ने से मांसार्बुद उत्पन्न हो जाता है। इसमें भी रक्त दूषित होता है ॥ १२ ॥

अथ मांसपाकमाह—**शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः।**
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १३ ॥

शूकों के मिथ्या प्रयोग से दूषित हुए २ वातपित्तकफ से मांस पाक व्याधि हो जाती है। इससे लिंग का मांस गलकर गिर जाता है, वात पित्त कफ की मिली जुली पीड़ायें होती हैं। यह सन्निपात से होता है ॥ १३ ॥

अथ विद्रधिमाह—**विद्रधिं संनिपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥**

सन्निपातज विद्रधि के समान लक्षणों वाली नाना वर्ण की पीड़ा तथा स्राव वाली विद्रधि लिंग पर भी शूक दोषों से बिगड़े हुए वात पित्त कफ से होजाती है॥

अथ तिलकालकानाह—**कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि तु।**
पातितानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १४ ॥

जिस पुरुष के शूक अर्थात् जल के विशेष कीड़े काले, चित्र अर्थात श्वेत पीले नीले आदि नाना रंगों वाले, तथा अति अधिक विष वाले (साधारणतया तो सभी विषैले होते हैं) ॥ १४ ॥

कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः।
संनिपातसमुत्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

हां, उनके लगाने से, वे सभी मिलकर लिंग को शीघ्र ही पकाते हैं। फिर काले रंग के तिलों के समान रंग का मांस हो २ कर गल जाता है। इसे तिल-कालकरोग कहते हैं यह सन्निपात से होते हैं ॥ १५ ॥

अथ शूकदोषेऽसाध्यत्वमाह—

तत्र मांसार्बुदं यत्तु मांसपाकश्च यः स्मृतः।
विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥

शूकरोगों में से मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि तथा तिलकालक रोग अच्छे नहीं होते। शेष रोग साध्य होते हैं ॥ १६ ॥ इति शूकदोषनिदानम्।

अथ शूकदोषचिकित्सा।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम्।
हितः शोणितमोक्षश्च शूकरोगेषु देहिनाम्॥ १॥

शूकरोग में घी का पिलाना हित है तथा विरेचन देना पथ्य है। तथा खून निकलवा देना भी हितकारी है॥ १॥

अथ सार्षपीचिकित्सा—उल्लिख्य सार्षपीं तालपत्रेणाथ प्रलेपयेत्।
त्रिकटुत्रिफलालोध्रैर्गोमूत्रपरिपेषितैः॥ २॥

तालपत्र से सार्षपी पिड़िका को खुरचकर, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा आंवला, लोध इनमें से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर गोमूत्र से पीसकर सार्षपी पिडिकापर लेप करदे॥ २॥

अथावमन्थचिकित्सा—क्रियेयमवमन्थेऽपि रक्तं शोध्यं तथोभयोः।

ऊपर लिखी क्रिया ही अवमन्थ या अधिमन्थ में भी करे। तथा सार्षपी और अधिमन्थ दोनों रोगों में रक्त को शोधन करने का यत्न करे।

अथाष्ठलिकाचिकित्सा—अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिक्रियां चरेत्॥३॥

अष्ठीला पिड़िका का पहले रक्त निकलवा दें फिर कफ ग्रन्थि के समान चिकित्सा करें॥ ३॥

अथ कुम्भिकाचिकित्सा—कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे।
तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम्॥४॥

कुम्भिका में रक्त निकलवाये, पक जाने पर फाड़कर व्रण को शुद्ध करे। फिर तिन्दुक, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लोध इन सब को पीसकर लेप करें, तथा इन का तेल पकाकर लगावे। इस से व्रणरोपण होता है॥ ४॥

अथालजीचिकित्सा—अलज्यां हृतरक्तायां पूर्व एव क्रियाक्रमः।

अलजी में रक्त को निकलवा के पूर्व लिखित ही तिन्दुकादि का लेप या इनका तेल लगावें।

अथ ग्रथितचिकित्सा—स्वेदयेद्ग्रथितं पश्चान्नाडीस्वेदेन बुद्धिमान्॥ ५॥

ग्रथितरोग में पहले नाड़ीस्वेद से स्वेदन करे फिर॥ ५॥

सुखोष्णैरुपनाहैश्च व्रणोक्तैरुपनाहयेत्।

व्रणाधिकार में कहे हुए कुछ २ गरम उपनाहों अर्थात् पुल्टिसों से ग्रथित को उपनाह देवे॥ शेष व्रणवत् क्रिया करे॥

अथोत्तमाचिकित्सा—उत्तमाख्यां तु पिटिकां संस्वेद्य बडिशोद्धृताम्॥६॥

उत्तमा नाम की पिड़िका को स्वेद देकर बड़िशयंत्र से उखाड़ लेवे॥ ६॥

कल्कचूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत्।

१३६

फिर कषाय पदार्थों के कल्क और चूर्ण में शहद मिलाकर लेप करे। इस से उत्तमा ठीक हो जाती है॥

अथ पुष्करीमूढयोश्चिकित्सा—**क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः॥७॥**

पित्तज विसर्पोक्त सभी क्रम पुष्करी तथा संमूढापिडिका में करना चाहिये॥७॥

त्वक्पाकादौ चिकित्सा—**त्वक्पाके स्पर्शहानौ च सेचयेन्मृदितं पुनः।**
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत्॥८॥

त्वक् पाक में, स्पर्शहानि में तथा मृदितरोग में कोसे २ बला तैल से बार २ लिंग को सिंचन करना चाहिये। तथा मधुरवर्ग की औषधों से उपनाह करना चाहिये॥८॥

अथ शतपोनकचिकित्सा—**रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके।**
पृथक्पर्ण्यादिभिः सिद्धं तैलं देयमनन्तरम्॥९॥

शतपोनक को खुरच कर रसक्रिया करनी चाहिये। फिर पृष्टपर्णी आदि से पकाया हुआ तैल लगावें॥९॥

अथ शोणितार्बुदचिकित्सा—**रक्तविद्रधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे।**

शोणितार्बुद रोग की चिकित्सा रक्तविद्रधि के समान करे॥

अथ मांसार्बुदचिकित्सा—**मांसार्बुदे प्रकुर्वीत क्रियां सद्योव्रणोदिताम्॥१०॥**

मांसार्बुद में सद्योव्रण के समान सारी क्रियायें करे॥१०॥

त्रिफलागुग्गुलुं चापि विशेषेणावचारयेत्॥११॥

त्रिफला गुग्गुलु भी विशेष कर के इस रोग में सेवन करनी चाहिये॥११॥

मांसपाकचिकित्सा—**मांसपाके वटाद्यस्य गणस्य विधिवत्कृतैः।**
कषायचूर्णकल्कैश्च सेकोद्धूलनलेपनम्॥१२॥

मांस पाकरोग में वटादिगण के द्रव्यों से विधिपूर्वक बनाये हुए कषायों से, चूर्णों से तथा कल्कों से व्रण को सिंचन करे, व्रण पर छिड़कें तथा व्रण लेप करें॥१२॥

विद्रधिचिकित्सा—**विद्रधौ विधिवत्कार्यं रक्तविद्रधिभेषजम्।**
वरुणादिकषायस्य पानप्रक्षालने हिते॥१३॥

विद्रधिरोग में रक्तविद्रधि की चिकित्सा विधिपूर्वक करे तथा वरुणादिगण का क्वाथ पिलाने में तथा व्रण के धोनें मे हितकर है॥१३॥

अथ तिलकालकचिकित्सा—**तिलकालं समुल्लिख्य क्षुरेण लघुपाणिना।**
भिषजा अथात्र कर्तव्यः सद्योव्रणविधिर्मतः॥१४॥

तिलकालकरोग में तिलकालक चिन्हों को हलके हाथ से चतुराई से छुरे से खुरच ले॥ फिर सद्योव्रण की चिकित्सा के अनुसार इस की भी चिकित्सा करे॥

अथासाध्यमाह—**मांसार्बुदं मांसपाकं विद्रधिं तिलकालम्।**
प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम्॥१५॥

मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि, तिलकालक इन सब रोगों को असाध्य कह कर वैद्य चिकित्सा करे ॥१५॥ इति शूकदोषचिकित्सा ॥

इति हरिद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेद-शास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा, राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां शूकदोष चिकित्सा समाप्ता ।

अथ कुष्ठनिदानम् ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च ।
भजतामागतान्छर्दिवेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥

संयोग विरुद्ध अन्नपान खाने से जैसे मछली दूध आदि पदार्थों को एकत्र खाने से, द्रव, स्निग्ध तथा गुरु पदार्थों के सेवन से । वमन के आये हुए वेग को रोकने से, तथा अन्य मलमूत्रादि के वेगों को रोकने से ॥ १ ॥

व्यायाममग्निसंतापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् ।
शीतोष्णलङ्घनाहारान्क्रमं त्यक्त्वा निषेविणाम् ॥ २ ॥

अत्यन्त भोजन करने के बाद व्यायाम करने से तथा अग्नि के तापने से । शीत, उष्ण, लंघन तथा आहार इनको क्रमरहित अनियम से सेवन करने से ॥ २ ॥

घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् ।
अजीर्णाध्यशिनां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥

धूप सेकने के बाद, श्रम करके थकने के बाद, भयभीत होने के बाद एकदम जल में स्नान करने या शीतल जल पी लेने से (कुछ विश्राम करके पीना चाहिये) अजीर्ण पर भोजन करने से, पहले भोजन न पचने पर और खा लेने से, पञ्चकर्मों अर्थात् वमन विरेचन आदि के विधि पूर्वक न करने से ॥ ३ ॥

नवान्नदधिमत्स्याम्ललवणातिनिषेविणाम् ।
माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥

नये अन्न के अति सेवन करने से, दही के अति सेवन करने से, मछली के अत्यन्त सेवन करने से, खटाई के अति सेवन करने से तथा लवण के अत्यन्त सेवन करने से । उड़द, मूली, पीठी, तिल, दूध तथा गुड़ इनको अत्यन्त सेवन करने से ॥ ४ ॥

व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा ।
विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं वा कर्म कुर्वताम् ॥ ५ ॥

अन्नके अजीर्ण अर्थात् न पचे होने पर भी मैथुन करनेसे दिन में सोने से।ब्राह्मणों तथा गुरुजनों को अपमानित करने से तथा अन्य गोहत्या गुरुदाराभिगमनादि पापों के करने से ॥ ५ ॥

पाप्मभिः कर्मभिः सद्यःप्राक्तनैः प्रेरिता मलाः ।
वातादयस्त्रयो दोषास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च ॥ ६ ॥

तथा पुराने पापकर्मों से प्रेरित हुए २ वातादि तीनों दोष त्वचा, रक्त, मांस, तथा जल को दूषित कर देते हैं ॥ ६ ॥

दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ।
त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्ति तत् ॥ ७ ॥

कुष्ठों का द्रव्य संग्रह सात प्रकार का है अर्थात् तीनों वातादिदोष तथा त्वचा, मांस, रक्त तथा लसीका ये चारों दूष्य मिलकर सात होते हैं। त्वचा इनसे विवर्ण होजाती है, और इनके अति दूषित हो जाने पर कुष्ठ हो जाता है ॥ ७ ॥

अथ कुष्ठसंख्यामाह—अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव तु ।
कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ॥ ८ ॥
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ।

कुष्ठरोग ७ प्रकार का और ११ प्रकार का होता है, कुल १८ प्रकार का होता है। वातिक कुष्ठ, पैत्तिककुष्ठ, कफजकुष्ठ, वातपित्तजकुष्ठ, कफपित्तजकुष्ठ, वातकफजकुष्ठ तथा वातपित्तकफजकुष्ठ ये सात कुष्ठ हुए। सभी कुष्ठों के त्रिदोषज होने के कारण तथा अधिक होने के कारण नाम भिन्न २ रखने उचित समझे हैं। जैसे वातिक का नाम कापाल है ॥ ८ ॥

अथ पूर्वरूपाणि—अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शः स्वेदास्वेदौ विवर्णता ॥ ९ ॥
दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः श्रमः ।
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ १० ॥

अति चिकना तथा रूखा स्पर्श हों, स्वेद बह रहा हो या रुकजायें या न रुकें अर्थात् स्वेद आने लगे या स्वेद रुक जाय, शरीर की विवर्णता। दाह होना, खुजली होना, त्वचा का सो जाना अर्थात् स्पर्श का अज्ञान होना, तोद तथा भिड़ के काटने के समान सूजन या धप्पड़ पड़ जाने, बिना परिश्रम किये थकान होना, व्रणों का शीघ्र २ उत्पन्न होना तथा देर तक स्थिर रहना और अधिक शूल होना ॥ ९ ॥ १० ॥

रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ।
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ ११ ॥

उत्पन्न हुए २ व्रणों को रूखा होना, थोड़े ही कारणों से व्रणों का कुपित हो जाना। रोमहर्ष होना, खून का काला पड़ जाना ये कुष्ठ के पूर्वरूप हैं ॥ ११ ॥

तत्र कपालकुष्ठमाह—कृष्णारुणं कपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ।
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

काले, लाल घड़े के टुकड़ों अर्थात् कपालों के समान जो रूखा हो, खर

स्पर्श हो तथा जिस की पतली त्वचा हो, जिस में अधिक शूल हो तथा विषम अर्थात् दुश्चिकित्स्य हो उसे कापाल कुष्ठ कहते हैं ॥ १२ ॥

अथोदुम्बरमाह—रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ।
उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत् ॥ १३ ॥

जिस कुष्ठ में पीड़ा होती हो, दाह हो, राग अर्थात् पकने का सा रंग हो, खुजली हो तथा भूरे रोम हों और गूलर के फल के समान हों पीला लाल सा उसे उदुम्बर कुष्ठ कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ मण्डलकुष्ठमाह—श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ।
कृच्छ्रमन्योन्यसंयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥१४॥

श्वेत रंग का, लाल रंग का, स्थिर अर्थात् कठिन, गाढ़ा वा दलवाला, स्निग्ध तथा उठे हुए मण्डलवाला अर्थात् जिस के चकत्ते ऊपर को उठे हुए हों, परस्पर मिले हुए हों ऐसे कुष्ठ को मण्डलकुष्ठ कहते हैं । यह कष्ट साध्य है ॥ १४ ॥

अथर्ष्यजिह्वमाह—कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तःश्यावं सवेदनम् ।
यदृष्यजिह्वासंस्थानमृष्यजिह्वं तदुच्यते ॥ १५ ॥

जो कुष्ठ स्पर्श में कर्कश या खरखरा हो, रक्तपर्यन्त जिस के किनारे लाल हों तथा अन्दर से सांवले रंग का हो, वेदनायुक्त हो और ऋष्य अर्थात् नीले अण्डकोषों वाले हिरण की जीभ के समान हो उसे ऋष्यजिह्व कुष्ठ कहते हैं । (कहीं पर "ऋक्षजिह्व" पाठ भी है वहां रीछ की जिव्हा के समान अर्थ करना चाहिये) ॥ १५ ॥

अथ पुण्डरीकमाह—सुश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ।
रक्तान्तर्दाहकण्ड्वाढ्यं चितं पद्ममिवांबुभिः ॥
सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥१६॥

जो कुष्ठ अत्यन्त श्वेत रंग का हो जिस के किनारे लाल हों और कमल के पत्ते के समान हो । किनारों पर लाल रंग हो, दाह तथा खुजली से युक्त हो, जैसे जल में कमल रखा हो ऐसा प्रतीत होता हो । उभरा हुआ हो, प्रान्त भागों में अधिक रंगदार हो उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ सिध्मकुष्ठमाह—सितं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति ।
प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ १७ ॥

जो कुष्ठ श्वेत रंग का तथा तांबे के से रंग का पतली खाल वाला हो, तथा जो घिसने से धूल सी छोड़ देता हो, प्रायः छाती पर हो, अन्यत्र कम होता हो, तथा तुम्बी को फूल के समान हो उसे सिध्म कुष्ठ कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ काकणन्तिकमाह—पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकणन्तिफलोपमम् ।
सदाहमस्पर्शसहं सपाकं तीव्रवेदनम् ॥ १८ ॥

जो कुष्ठ लाल रत्तियों के फल के समान लाल रंग का तथा काले रंग का होवे दाह, युक्त हो, स्पर्श को सह न सके, पाक वाला हो, तथा तीव्र बेदना वाला हो ॥ १८ ॥

यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ।
त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ॥ १६ ॥

लाल रत्ति के फल के समान रंग वाला हो, पाक युक्त तथा तीव्र पीड़ा देने वाला हो। वह त्रिदोषों के सभी लक्षणों से युक्त होता है वह काकण-कुष्ठ असाध्य है ॥ १६ ॥ इति सप्तमहाकुष्ठानि।

अथैकादश क्षुद्रकुष्ठानि।

तत्र चर्मकुष्ठमाह—**अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ।**
तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ २० ॥

जिसमें पसीना न आवे, बहुत स्थान घेरे, मछली के टुकड़ों के समान प्रतीत हो अर्थात् जिसकी खाल मछली की तरह छिलकेदार हो, हाथी के चमड़े के समान मोटा हो उसे चर्मकुष्ठ कहते हैं ॥ २० ॥

अथ किटिभमाह—**श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं मतम् ॥**

जो सांवले रंग का हो, व्रण स्थान के समान जो छूने में कर्कश प्रतीत हो तथा रूखा हो उसे किटिभ कष्ठ कहते हैं ॥

अथ वैपादिकमाह—**वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥ २१ ॥**

हाथ पैरों का फट जाना और उनमें तीव्र वेदना होना इसे वैपादिक कुष्ठ कहते हैं जिसे लोक में बिवाई भी कहते हैं ॥ २१ ॥

अथालसकमाह—**कण्डूमद्भिःसरागैश्च गण्डैरलसकं वदेत् ॥**

खुजली से युक्त लाल रंग वाले फोड़ों से युक्त कुष्ठ को अलसक कुष्ठ कहते हैं ॥

अथ दद्रुमण्डलमाह—**सकण्डुरागपिटिकं दद्रुमण्डलमुद्गतम् ॥ २२ ॥**

खुजली से युक्त रंगवाली पिडिकायें ऊपर को त्वचा से निकली हुई मंडल बनावें उसे दद्रुमण्डल या दाद कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ चर्मदलमाह—**रक्तं सशूलं कण्डूमत्स्फोटं यद् दलयत्यपि ।**
तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शसहमुच्यते ॥ २३ ॥

लाल रंग के, शूल सहित, खुजली से युक्त जो फोड़े हों, जो फूट भी जाते हों, जो वस्त्रादिके छू जानेसे भी पीड़ा करने वाले हों उसे चर्मदल या चम्बल कहते हैं २३

अथ पामामाह—

सूक्ष्मा बह्व्यः पिटिकाः स्राववत्यः पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः ।

छोटी २ बहुत सी फुंसिये होजायें, उनमें से सदा स्राव होता रहे, खुजली चलती रहे तथा उनमें दाह होता हो, उसे पामा या पांवां कहते हैं ॥

अथ कच्छुमाह—

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च॥२४॥

वही पामा यदि तीव्र दाहवाले फोड़ों से युक्त होकर दोनों हाथों तथा चूतड़ों पर हो तो उसे कच्छु कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ विस्फोटमाह—

स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥

सांवले तथा लाल रंग के पतली त्वचा वाले फोड़ों को विस्फोट कुष्ठ कहते हैं ॥

अथ रकसामाह—

कण्डूचिता या पिटिका शरीरे संस्राव्यमाणा रकसोच्यते सा॥२५॥

खुजली से भरी हुई जो पिड़िका शरीर में सदा बहती रहे उसे रकसा कहते हैं ॥ २५ ॥

अथ शतारुमाह—**रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥**

बहुत व्रणों से युक्त, लाल रंग तथा सांवले रंग से युक्त, दाहयुक्त कुष्ठ को शतारु कहते हैं ॥

विचर्चिकामाह—**सकण्डूः पिटिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २६ ॥**

खुजली से युक्त, श्याम वर्ण की, बहुत स्राव करनेवाली पिड़िका को विचर्चिका कहते हैं ॥ २६ ॥ (गिनने से १२ कुष्ठ होते हैं परन्तु कहे ११ थे । विचर्चिका पैरों में हो तो वही वहां विपादिका कहाती है । इसलिये दोनों में भेद नहीं समझना चाहिये)

अथ श्वित्रमाह—**पाण्डुरं श्वित्रमित्युक्तं सस्रावं कण्डुसंयुतम् ॥**
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ २७ ॥

श्वेत रंग का, स्रावयुक्त तथा खुजली युक्त कुष्ठ श्वित्र कहाता है । यदि अग्नि से दग्ध होने के कारण यह न हुआ हो तो साध्य है और अन्य सभी प्रकार का असाध्य है ॥ २७ ॥

कुष्ठानां दोषत्रयस्य नियतलिङ्गमाह—

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् ।
पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ॥ २८ ॥

जो कुष्ठ कर्कश स्पर्श हो, सांवला वा लाल रंग का हो, रूखा हो तथा वेदनायुक्त हो वह वातकुष्ठ कहाता है ॥ जो कुष्ठ दाह तथा राग से युक्त हो तथा बहता हो उसे पित्तजकुष्ठ जानो ॥ २८ ॥

कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् ।
द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्गं सांनिपातिकम् ।
स्पर्शहानिरखेदत्वमीषत्कण्डूश्च जायते ॥ २९ ॥

कफज कुष्ठ घन अर्थात् गाढ़ा, स्निग्ध, कण्डुयुक्त, शीतल तथा भारी होता है । जिस में दो दोषों के लक्षण हों वह द्वन्द्वज, जिस में तीनों दोषों के लक्षण हों वह सन्निपातज कुष्ठ कहाता है उस में स्पर्श ज्ञान नहीं होता, कष्ट प्रतीत नहीं होता तथा कुछ २ खुजली होती है ।। २९ ।।

इदानीमुत्तरोत्तरं सप्तधातुगतकुष्ठलक्षणं क्रमेणोच्यते ।

तत्राऽऽदौ रसगतमाह—**त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ।**
त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्याप्य प्रवर्तनम् ॥३०॥

त्वचा में जब कुष्ठ हो अर्थात् रसधातु में जब कुष्ठ होता है तो अंग विवर्ण हो जाते हैं, रूक्षता हो जाती है, त्वचा सो जाती है अर्थात् स्पर्शज्ञानशून्य हो जाती है, रोमहर्ष होता है तथा पसीना नहीं आता है ॥ ३० ॥

रक्तगतमाह—**कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ।**

जब कुष्ठ रक्त में होता है तब खुजली होती है तथा विशेष कर के पीप निकलती है ॥

मांसगतमाह—**बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिटिकोद्गमः ॥ ३१ ॥**

जब कुष्ठ मांस में होता है तब बाहुल्यम् अर्थात् मोटे २ मंडल हो जाते हैं, मुंह सूखता है मांस कर्कश हो जाता है तथा पिडिकायें निकलती हैं ॥ ३१ ॥

तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥

और शूल होता है, त्वचा फूटती है । और कुष्ठ अचल होता है ॥

मेदोगतमाह—**दौर्गन्ध्यं गात्रदोषश्च पूयोत्थाः कृमयस्तथा ॥ ३२ ॥**

जब कुष्ठ मेदधातु में पहुंच जाता है तब दुर्गन्ध निकलती है, गात्र दूषित हो जाते हैं, पीप में कीड़े उत्पन्न होजाते हैं ॥ ३२ ॥

गात्राणां भेदनं चापि कुष्ठे मेदःसमाश्रिते ।
कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ॥ ३३ ॥

गात्र टूटते हैं, हाथ टूट जाते हैं, चलने में अशक्ति होती है, अंग टूटते हैं, क्षत अर्थात् घाव फैलते जाते हैं ॥ ३३ ॥

मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥

ये सभी लक्षण तथा जो पहले रस रक्तादिगत कुष्ठ के लक्षण कहे हैं वे सभी लक्षण इस में होते हैं ॥

अस्थिमज्जाद्वयगतमाह—**नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसंभवः ।**
स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३४ ॥

जब कुष्ठ हड्डियों तथा मज्जा में पहुंच जाता है तब नाक टूट जाती है । आंखें लाल हो जाती हैं, क्षत स्थानों में कीड़े उत्पन्न होजाते हैं, स्वर की हानि हो जाती है ॥ ३४ ॥

शुक्रगतमाह—दंपत्योः कुष्ठबाहुल्याद् दुष्टशोणितशुक्रयोः।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम्॥ ३५॥

पति पत्नी के अन्दर कुष्ठ की अधिकता होने से उनके रज तथा वीर्य दूषित हो जाते हैं। उन दोनों से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह भी कुष्ठरोग से युक्त होती है। तथा रस से शुक्र धातुगत कुष्ठ के अन्यान्य पूर्व कहे हुए लक्षणों से युक्त सन्तान होते हैं॥ ३५॥ इति सप्तधातुगतानि कुष्ठानि।

अथ साध्यासाध्यमाह—साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत्।
मेदोगं द्वंद्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम्॥ ३६॥

त्वचा, तथा मांसगत कुष्ठ साध्य है। वातश्लेष्मवाले कुष्ठ अर्थात् चर्मैक कुष्ठ, किटिभि, सिध्म, अलस, विपादिका जो वातश्लेष्मज हैं ये सभी साध्य हैं। मेदोजकुष्ठ तथा द्वन्द्वजकुष्ठ याप्य हैं। परन्तु अस्थि मज्जागत कुष्ठ तथा शुक्रधातुगतकुष्ठ भी असाध्य हैं॥ ३६॥

पुनरसाध्यलक्षणम्—कृमिकृद्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम्।
प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गं च रक्तनेत्रं हतस्वरम्॥ ३७॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम्॥

जो क्रिमियों से भरा हुआ, प्यास, दाह, मन्दाग्नि से युक्त कुष्ठ है अर्थात् त्रिदोषज कुष्ठ, जो फूट गया हो, जो शरीर में स्राव करा रहा हो, जिससे लाल नेत्र हो गये हों, जिससे स्वरभंग हो गया हो, और पंचकर्म वमन विरेचनादि के गुणों को निष्फल करके जो उत्पन्न हुआ हो, ऐसा कुष्ठ मनुष्यों को मार डालता है। वह असाध्य होता है॥ ३७॥

कुष्ठेषु चिकित्सार्थं दोषप्राधान्यमाह—

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तादौदुम्बरं कफात्।
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋष्याख्यं वातपित्तजम्॥ ३८॥

वात से कापाल कुष्ठ होता है पित्त से औदुम्बर कुष्ठ होता है। कफ से मण्डल कुष्ठ तथा विचर्चिका होते हैं। वातपित्त से ऋष्यजिह्वकुष्ठ होता है॥३८॥

चर्मैककुष्ठकिटिभसिध्मालसविपादिकाः।
वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी॥ ३९॥

वातकफ से चर्मैक कुष्ठ, किटिभि, सिध्म, अलस और विपादिका कुष्ठ होते हैं। कफपित्त से दद्रु, शतारु॥ ३९॥

पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा।
सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रु सकाकणम्॥ ४०॥
पुण्डरीकमृष्यजिह्वं महाकुष्ठानि सप्त तु॥

पुण्डरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदल कुष्ट होते हैं । सब दोषों से अर्थात् सन्निपात से काकण कुष्ठ होता है । इस प्रकार पहले तीन कपाल, उदुम्बर, मण्डल, दद्रु, काकण ॥ ४० ॥ पुण्डरीक, ऋष्यजिह्व ये सात महाकुष्ठ होते हैं ।

अथ श्वित्रमाह—**कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं दारुणं च यत् ।**
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ १ ॥

कुष्ठ के समान ही उत्पत्ति है जिसकी अर्थात् कुष्ठ के करने वाले विरुद्ध भोजन तथा पापकर्म आदि कारणों से ही उत्पन्न हुआ २ (चरक में इसके कारण पृथक् भी कहे हैं, " वचांस्यतथ्यानि कृतघ्नभावो निन्दागुरूणां गुरुधर्षणं च । पाप क्रिया पूर्वकृतं च कर्म हेतुः किलासस्य विरोधि चान्नम् । चरक चि० स्था० अ० ७) श्वित्र किलास अथवा दारुण कुष्ठ होता है । इस में से स्राव नहीं निकलता है (जब त्वचागत होता है तब स्राव नहीं निकलता है) । यह त्रिदोषों से अथवा रक्त-मांस मेद तीन धातुओं से उत्पन्न होता है तथा रक्तमांसमेद तीनों धातुओं में आश्रय करके रहता है ॥ १ ॥

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ २ ॥
सकण्डुरं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चाऽऽदिशेत् ।
वर्णैनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

वात से हुए २ किलास कुष्ठ का रंग रूखा तथा लाल होता है, पित्त से हुए २ श्वित्र कुष्ठ का रंग कमल के पत्ते के समान ताम्बे जैसे रंग का होता है, दाह युक्त होता है तथा रोमों को नष्ट कर डालता है । कफ से हुए २ श्वित्र कुष्ठ का रंग श्वेत होता है।वह घना तथा गुरु होता है जिसकी गुरुता अंग अनुभव करते हैं,तथा खुजली से युक्त होता है । यह कुष्ठ क्रमशः रक्त, मांस तथा मेद में आश्रित हो जाता है।रंग से ही इसका रक्तमांसमेद में होना जाना जाता है।लाल रंग का हो तो रक्त में, ताम्ररंग का हो तो मांस में तथा श्वेत रंग का हो तो मेद में समझना चाहिये । यह दोनों प्रकार का अर्थात् व्रण से हुआ २ श्वित्र कुष्ठ तथा दोषों से हुआ २ श्वित्र कुष्ठ कष्ट साध्य होता है । और रक्त मांसमेद में प्रविष्ट हुआ २ तो उत्तरोत्तर कष्ट साध्य होता जाता है । (भोज ने कहा है श्वित्रं तद्द्विविधं विद्याद्दोषजं व्रणजं तथा । तत्र मिथ्योपचाराद्धि व्रणस्य व्रणजं स्मृतम् । दोषजं द्विविधं प्रोक्तमात्मजं परजं तथा । परसंस्कारसंस्पर्शाद्यत्तत्परजमुच्यते । तदात्मं विजानीयाद्देहेष्वनिलादिजम् ।" अर्थात् व्रणज तथा दोषज दो प्रकार का श्वित्र होता है । व्रणों की ठीक चिकित्सा न होने से श्वित्र हो जाता है । यह व्रणज श्वित्र कहाता है । दोषज भी दो प्रकार का होता है अर्थात् आत्मज तथा परज होता है । परज दूसरे मनुष्यों के साथ खानपान विहार से होता है तथा आत्मज अपने ही वातादि दोषों से होता है) ॥ ३ ॥

अथ तस्य साध्यासाध्यत्वमाह—

अशुक्ललोमाबहुलमसंसृष्टमथो नवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४ ॥

जिस श्वित्र के रोम श्वेत न हो गये हों, प्रत्युत काले ही हों, जिसकी त्वचा पतली हो, परस्पर जुड़ा हुआ न हो पृथक २ हो, तथा नया हो । और जो अग्नि से जलकर न हुआ २ हो ऐसा श्वित्र साध्य होता है । इसके अतिरिक्त अन्य लक्षणों वाला कुष्ठ असाध्य होता है ॥ ४ ॥

गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरंतनम् ।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ५ ॥

जो लिंगादि गुप्त स्थानों में हो जावे, हाथ की हथेलियों में तथा पैर के तलवों में हो जावे, ओष्ठों में हो जावे ऐसा नया श्वित्र भी असाध्य होता है। इसकी चिकित्सा न करे ॥ ५ ॥

कुष्ठादिसंसर्गजान्रोगानाह—

स्पर्शैकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशो गदाः ।
सर्वेसंचारिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ॥ ६ ॥

परस्पर छूने से, एक साथ भोजन करने से अर्थात् जूठा खाने से, एक साथ चारपाई पर सोने से प्रायः सारे ही रोग फैलने वाले होजाते हैं। अर्थात् फैलकर अन्यों को भी हो जाते हैं । विशेष करके नेत्रों के रोग तथा त्वचा के रोग तो इन बातों से फैल ही जाते हैं ॥ ६ ॥

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् ।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ७ ॥

परस्पर मैथुन करने से, गात्र छूने से, परस्पर श्वास की वायु पीने से, इकठ्ठा भोजन करने से, साथ सोने से, साथ बैठने से, एक दूसरे के वस्त्र पहनने से, दूसरे की पहनी हुई माला पहनने से,दूसरे के लगाये हुए लेप को अपने शरीर में लगाने से ७

कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ८ ॥

कुष्ठरोग, ज्वर, शोष, नेत्राभिष्यन्द, औपसर्गिकरोग अर्थात् भूतादि सूक्ष्मवायवीय जीवों से होने वाले रोग शीतला आदि एक मनुष्य से दूसरे मनुष्यों को हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अथ पुनर्जन्मनि कुष्ठप्राप्तिमाह—

मरणं यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् ।
नातो निन्द्यतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ९ ॥

यदि कुष्ठरोग में ही मृत्यु हो जावे तो पुनर्जन्म में भी कुष्ठ हो जाता है। इससे बढ़कर निन्दा के योग्य कोई और रोग नहीं जैसा कि कुष्ठ है ॥९॥ इति कुष्ठनिदानम् ।

अथ कुष्ठचिकित्सा।

सामान्य चिकित्सा—वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं विहितम्॥ १॥

वाताधिक कुष्ठों में घी पिलावे। कफाधिक कुष्ठों में वमन करावे। पित्ताधिक कुष्ठों में रक्त निकलवावे तथा विरेचन करावे॥ १॥

प्रभूतं वा जलौकाभिः श्रृङ्गालाबुशिराव्यधैः।
स्निग्धस्य मोक्षयेद्रक्तं दुष्टं कुष्ठे पुनः पुनः॥ २॥

रोगी का यदि रक्त बहुत ही दूषित हो गया हो तो पहले रोगी को स्निग्ध करे फिर जोकों से, सिंगी से, तुंबी से तथा नस बाँधकर रक्त निकलवावे। ऐसा बार २ कुष्ठरोग में करे॥ २॥

स्रुते रक्ते हृते दोषे स्नेहैः संशमितेऽनिले।
रसायनानि प्राशाश्च प्रशस्ताः कुष्ठिनां मताः॥ ३॥

जब रक्त निकलवाया जाये, दोषों को विरेचनादि से दूर कर दिया जाये, और स्नेहपान आदि कराने से वायु शान्त होजाये।तब रसायन औषध,तथा अवलेह कुष्ठरोगियों के लिये खाने उत्तम हैं॥ ३॥

अथ वमनम्—यववासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः।
कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः॥ १॥

जौ, बांसा, पटोलपत्र, नीम की छाल, श्योनाक की छाल तथा मैनफल इन सब को समभाग लेकर क्काथ कर के शहद से मिलाकर पिया जाये तो यह वमन लाता है॥ १॥ इति वमने पञ्चकषायः॥

अथ विरेचनम्—विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलात्रिकैः।

त्रिवी, दन्तीमूल, हरड़, बहेड़ा, आंवला इन तीनों का क्काथ कर के पिलाने से विरेचन होता है॥

कुष्ठे चिकित्साक्रमः—षष्ठे मासे शिरामोक्षं प्रतिमासं विरेचनम्।
प्रतिपक्षं च वमनं कुष्ठे लेपं त्र्यहाच्चरेत्॥ १॥

कुष्ठरोग में छटे महीने में नस खुलवा के रक्त निकलवावे, प्रतिमास विरेचन देवे, प्रत्येक पक्ष में अर्थात् १५ दिन के बाद वमन देवे। और तीसरे दिन लेप करता रहे॥ १॥

अथ लेपाः।

अथ पथ्यादिलेपः—पथ्याकरञ्जसिद्धार्थनिशावल्गुजसैन्धवैः।
विडङ्गसहितैः पिष्टैर्लेपमात्रेण कुष्ठजित्॥ १॥

हरड़, करंज, सरसों, हल्दी, काली सोमराजी अर्थात् काली जीरी, सेंधा नमक, वायविडंग इन सब को समभाग लेकर पीस ले और जल से मिलाकर

लेप करे तो इस से कुष्ठ नाश होता है ॥ १ ॥

एलादिलेपः—एलाकुष्ठविडङ्गानि शताह्वा चित्रकं बला।
दन्ती रसाञ्जनं चेति लेपः कुष्ठविनाशनः ॥ २ ॥

इलायची, कूठ, विडंग, सौंफ, चीता, बला या खिरेंटी, दन्ती, रसौंत इन सब को पीसकर लेप करें तो कुष्ठ का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ मनःशिलादिलेपः—

मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः।

मनसिल, हड़ताल, मिरच, सरसों का तेल, आक का दूध इन सब को पीसकर कुष्ठ पर लेप करे॥

अथ करंजबीजादिलेपः—

करञ्जबीजैडगजं सकुष्ठं गोमूत्रपिष्टश्च परः प्रदेहः ॥ ३ ॥

करंज के बीज, पनवाड़ या चक्रमर्द, कूठ इन को समभाग लेकर गोमूत्र से पीसकर लेप करे तो कुष्ठ नाश होता है ॥ ३ ॥

श्वित्रे बल्यादिलेपः—बलिवेल्लाग्निभल्लातदन्तीशम्याकनिम्बकैः।
काञ्जिकैः पेषितैर्लेपः श्वेतकुष्ठविनाशकृत् ॥ ४ ॥

गंधक, विडंग, चीता, भिलांवा, दन्ती, अमलतास की जड़, नीम की छाल इन सबको समभाग लेकर कांजीसे पीसकर लेप करे तो श्वेत कुष्ठका नाश होता है ४

श्वेतकरवीरादिलेपः—श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जत्वचो दार्व्याः।
सुमनःप्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥ ५ ॥

श्वेत कनेर की जड़, कुड़े की छाल, करंज की छाल, दारुहल्दी, चमेली के कोमल पत्ते इन सबको पीसकर जल से लेप करे तो निश्चय से कुष्ठ शांत होता है॥५॥

अथ शैलेयादिलेपः—

शैलेयकम्पिल्लकयष्टिसाह्वसौराष्ट्रिकासर्जरसोत्पलानि।
शिला च चूर्णोनवनीतयुक्तः कुष्ठे स्रवत्यभ्यधिकः प्रदिष्टः ॥६॥

छलछलीरा, कमीला, मुलठी, सोरठमिट्टी इसके अभाव में फिटकरी, राल, नीलाकमल, मनसिल इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे और मक्खन से मिलाकर गाढा २ लेप करें तो बहनेवाला कुष्ठ इससे अच्छा होता है ॥ ६ ॥

सर्वकुष्ठ लेपः—रसगन्धकयोः पिष्टं कटुतैलेन भृङ्गजैः।
द्रवैः संमर्द्य तल्लेपात्सर्वकुष्ठं विनश्यति ॥ ७ ॥

पारा तथा गंधक की कज्जली करके सरसों के तेल से पीस लें। फिर भांगरे के स्वरस से घोट लेवें। इसके लेप करने से सभी प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥७॥

अथ क्वाथाः।

अथ गुडूच्यादिक्वाथः—गुडूचीत्रिफलादार्वीक्वाथ उष्णैश्च वारिभिः।

त्वग्दोषव्रणशोफघ्नः पीतो मासं सगुग्गुलुः ॥१॥

गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, दारुहल्दी इनका क्वाथ करके, गूगल मिलाकर गरम २ जलसे पिलाया जाये तो ऐसा एक मास करने से त्वचा के दोष तथा व्रणशोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ खदिराष्टकः—खदिरत्रिफलानिम्बपटोलामृतवासकैः ।
अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठकण्डूविस्फोटकानपि ॥ २ ॥

खैर की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की छाल, पटोलपत्र, गिलोय, बांसे की जड़ की छाल या पत्ते इन आठ द्रव्यों को समभाग लेकर क्वाथ करके पिलावें तो कुष्ठ कण्डू तथा विस्फोट रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथ महाकषायः—शुण्ठीनिम्बकिराततिक्तकणापाठाहरिद्राद्वयं
त्रायन्ती त्रिफलाऽमृताऽब्जकटुका वासा वचा बाकुची ।
मञ्जिष्ठाऽतिविषादुरालभमहानिम्बाग्निषड्ग्रन्थिका
व्याधिघ्ना गजचिर्भटा सकुटजा भार्ङ्गी समुस्तायवा ॥ १ ॥

सोंठ, नीम की छाल, चिरायता, पीपली, पाठा की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, त्रायमाण, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय, समुद्रफल (अब्जः, हिज्जले, कमलेच) या कमल, कुटकी, बांसा, बच, बावची, मजीठ, अतीस, जवासा, बकायन की छाल, चीता, बच, अमलतास, इन्द्रायण, कुडे की छाल, भारंगी, मोथा, जौ ॥१॥

मूर्वा चैव पटोलपत्रसहिता रक्तं तथा चन्दनं
श्यामा पर्पटसारिवा क्रिमिहरा गायत्रिकासंयुता ।
गोमूत्रेण महाकषायमरुणोद्भूतं पिबेद्यः पुमां-
स्तस्याष्टादश यान्ति नाशमचिरात्कुष्ठानि दुष्टान्यपि ॥ २ ॥

मूर्वामूल, पटोलपत्र, लालचंदन, श्यामालता, पित्तपापड़ा, श्वेतशारिवा, विडंग, खैर॥ इन सब द्रव्यों को समभाग लेकर क्वाथ करे, इस क्वाथ को गोमूत्र से मिलाकर सूर्योदय के समय पीवे तो अठारह प्रकार के दूषित हुए २ कुष्ठ भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

अथ नवककषायः—त्रिफला निम्बपटोलं मञ्जिष्ठा रोहिणी वचा रजनी ।
एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठं ॥१॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम, पटोलपत्र, मंजीठ, कुटकी, बच, हल्दी, इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करे । इसे पीने से यह कफपित्त से हुए २ कष्ठ को नष्ट करता है ॥ १ ॥ इति क्वाथः ॥

अथ खदिरोदकम्—प्रलेपोद्वर्तनस्नानपानभोजनकर्मसु ।
शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम् ॥ १ ॥

खैर का रस, क्वाथ, चूर्ण आदि करके कुष्ठ पर प्रलेप करे, उबटना करे, स्नान

करे, पान करे, भोजन करे । इससे सभी त्वचा के दोष कुष्ठादि का नाश होता है।

अथ खदिररसः—दह्यमानादुद्धृतः कुम्भे समूलखदिराद्रसः ।

साज्यधात्रीरसक्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनम् ॥ २ ॥

एक पात्र में खैर की जड़, खैर की छाल, लकड़ी आदि के टुकड़े जल में डालकर पकावें । उसका रस जो निकले उसमें (अर्थात् वही रस घड़े में पकाकर कत्था बनता है इस लिये विशुद्ध कत्था लेवे) घी, आंवलों का स्वरस और शहद मिलाकर पिलावें तो कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ निम्बादिकल्कः—निम्बपत्रशतं पिष्ट्वा निम्बामलकमेव च ।

विडङ्गबाकुचीकल्कं पिबेदाकुष्ठनाशनम् ॥ १ ॥

नीम के सौ पत्ते पीसकर पीवे, अथवा नीम और आंवला मिलाकर पीसकर पीवे । अथवा विडंग और बावची का कल्क करके खावे । इन में से किसी एक योग को तब तक सेवन करता जावे तब तक कुष्ठ नाश नहीं हो जाता ॥ १ ॥

अथ चूर्णानि ।

तत्रादौ पञ्चनिम्बचूर्णम्—पिचुमन्दफलं पुष्पं त्वक्पत्रं मूलमेव च ।

पञ्चैतानि च सूक्ष्माणि समचूर्णानि कारयेत् १

अष्टभागावशेषेण खदिरासनवारिणा ।

भावयित्वा तु संयोज्य द्रव्याण्येतानि दापयेत् ॥ २ ॥

नीम के फल, पुष्प, छाल, पत्ते तथा जड़ इन सबको समभाग सूक्ष्म चूर्ण कर लेवें। फिर खैर तथा विजयसार के क्वाथ का आठवां भाग शेष रखकर उससे उस चूर्ण को भावित करे। फिर जितना चूर्ण नीम का हो उससे आधा चूर्ण आगे लिखे हुए सब द्रव्यों को ले कर पहले नीम के चूर्ण में मिला लेवे ॥ २ ॥

चित्रकोऽथ विडङ्गानि व्याधिघातकशर्कराः ।

भल्लातकहरीतक्यौ शुण्ठ्यामलकगोक्षुराः ॥ ३ ॥

वे द्रव्य लिखते हैं, चीता, विडंग, अम्लतास, खांड, शुद्ध भिलांवा, हरड़, सोंठ, आंवला, गोखरु ॥ ३ ॥

चक्रमर्दकबाकूचीपिप्पलीमरिचं निशा ।

लोहचूर्णसमायुक्तं समभागं प्रमाणतः ॥ ४ ॥

चक्रमर्द या पनवाड़, बावची, पीपल, मिरच, हल्दी, लोहे की भस्म इनमें से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेवे ॥ ४ ॥

भावयेद्भृङ्गराजेन पुनः शुष्काणि कारयेत् ।

निम्बार्धचूर्णमेतेषामेकीकृत्य निधापयेत् ॥ ५ ॥

फिर समस्त चूर्ण का भांगरे के स्वरस से भावित करके सुखा लेवे ॥५॥

बिडालपदमात्रं तु सर्पिषा पयसाऽपि वा ।

प्रातः प्रातर्निषेवेत खदिरासनवारिणा ॥ ६ ॥

इस चूर्ण को एक कर्ष भर लेकर घी से वा दूध से प्रातःकाल पीवे । तथा खैर तथा विजयसार के क्वाथ को पीवे ॥ ६ ॥

परिहारो न चात्रास्ति पञ्चनिम्बेऽवतिष्ठति ।
मासमात्रप्रयोगेण कुष्ठं हन्ति रसायनम् ॥ ७ ॥

इस पञ्चनिम्ब चूर्ण को खाते हुए किसी पथ्यापथ्य की विशेष आवश्यकता नहीं, किसी विशेष वस्तु के त्याग की आवश्यकता नहीं । मासभर के प्रयोग से यह रसायन कुष्ठ को नष्ट करदेता है ॥ ७ ॥

त्वग्दोषनीलिकाव्यङ्गं तथैव तिलकालकान् ।
अष्टादशविधं कुष्ठं सप्त चैव महात्ययान् ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ८ ॥

त्वग्दोष, नीलिका, व्यङ्ग, तिलकालक, और अठारह प्रकार के कुष्ठ तथा सातों महात्यय इन सब रोगों से छूट जाता है तथा मनुष्य सौ साल तक सुखी तथा रोगरहित रहता है ॥ ८ ॥

अथोद्धूलने सर्षपादिचूर्णम्—**सर्षपकरञ्जरजनीदारुनिशादारुमञ्जिष्ठाः ।**
त्रिफलाशठीपटीरश्वेतामूर्वाप्रियङ्गुकाश्चापि १

सरसों, करंज, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, मंजीठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कचूर, चन्दन अतीस या श्वेतसारिवा (श्वेता–अतीस, श्वेतसारिवा, वंशलोचन, श्वेतवच, फिटकरी, खांड, त्रिवी आदि) मूर्वामूल, प्रियंगु ॥ १ ॥

त्रिकटुत्रिगन्धकेसरलाक्षाश्चैषां कृतं रजः श्लक्ष्णम् ।
उद्धूलनेन रक्तजपित्तजवातोत्थितं वाऽपि ॥
निस्तोदभेदपिटिकं कुष्ठं स्फुटनं विनाशयति ॥ २ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेसर और लाख इन सबको समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे । इस चूर्ण को कुष्ठ के व्रणों पर छिड़कें इससे रक्तज, पित्तज, वातज कुष्ठ नाश होता है । शूल तथा भेद या फाड़ने की सी पीड़ा होना, पिड़िका, कुष्ठ तथा शरीर का फूटना ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथ विडङ्गादिचूर्णम्—**विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम् ।**
हन्ति कुष्ठं क्रिमीन्मेहान्नाडीदुष्टभगंदरान् ॥ १ ॥

विडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला इन में से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर चूर्ण करे । इसे शहद से मिलाकर खावें । इस से कुष्ठ, क्रिमि, प्रमेह, नाडीव्रण, दुष्ट व्रण तथा भगन्दर नष्ट होते हैं ॥१॥ इति चूर्णानि॥

अथ गुटिका ।

तत्राऽऽदौ सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका—

भल्लातकसहस्रैकं त्रिफलावारिणि क्षिपेत् ।

द्रोणमात्रे पचेत्तावद्यावत्पादावशेषितम् ॥ २ ॥

शुद्ध भिलांवे एक हजार गिनकर लेवे। इनको तोलकर, त्रिफला के क्वाथ वा रस को एक द्रोण लेकर उसमें डालकर पकावे। जब चौथाई जल शेष रह जावे तो छान लेवे ॥ १ ॥

शर्करायाा दश पलान्येकं बाकुचिकापलम्।
तथा चैवात्र देयानि पलानि दश गुग्गुलोः ॥ २ ॥

फिर उस जल में खांड दस पल डाले, बाबची का चूर्ण एक पल डाले। गूगल दस पल डाले ॥ २ ॥

खदिरारिष्टमञ्जिष्ठाबीजकं चेन्द्रवारुणी।
चित्रकं द्वे हरिद्रे च देवदारु हरीतकी ॥ ३ ॥

फिर खैर अर्थात् कत्था आधा पल, नीम की छाल का चूर्ण आधा पल, मंजीठ का चूर्ण आधा पल, तथा विजयसार, इन्द्रायण, चीता, हल्दी, दारुहल्दी, देवदार हरड़ ॥ ३ ॥

भार्ङ्गी वचेति सर्वेषां प्रत्येकं च पलार्धकम्।
प्रक्षिप्य गुटिका कार्या नाम्ना सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४ ॥

भारंगी तथा बच इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण आधा २ पल लेवे। इन सबको एकत्र मिला पाक करके बेर के बराबर गोली बना लेवे ॥ ४ ॥

प्रत्यहं भक्षयेत्कुष्ठी त्वेतां बदरमात्रया।
सर्वाण्येवोग्रकुष्ठानि शीघ्रमेव व्यपोहति ॥ ५ ॥

इस सर्वांग सुन्दरी गोली को प्रतिदिन खावे तो सभी उग्र कुष्ठ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ त्रिफलागुटिका—त्रिफलारुष्करलोहैः सावल्गुजभृङ्गलाङ्गलीव्योषैः।
सगुडैर्वराहकन्दैः पलिकैरेकत्र संमिश्रैः ॥ १ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, भिलांवे, लोहे की भस्म, कालीजीरी, भांगरा, शुद्ध लांगली सोंठ, मिरच, गुड़, वराहीकन्द इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लेकर मिलाकर पीसकर एक २ अक्ष की गोली बना लेवें ॥ १ ॥

गुटिकां प्रकल्प्य खादेदेकैकामक्षसंमितां प्रातः।
कुष्ठं दद्रुकिलासं जित्वा वर्षेण सर्वथा पलितम् ॥
जीवति वर्षशतं वै दीप्तहुताशो युवेव सोत्साहः ॥ २ ॥

इसकी एक गोली प्रातःकाल खावें तो कुष्ठ, किलास, पलितरोग, इन सबको एक वर्ष में अवश्य ही यह गोली नाश कर देती है। इससे अग्निदीपन होती है तथा जवान पुरुष के समान उत्साह सहित मनुष्य एक सौ साल तक निश्चय से जीता रहता है ॥ २ ॥

अथैकविंशतिको गुग्गुलुः—चित्रकत्रिफलाव्योषमजाजीकारवीवचाः।
सैन्धवातिविषा कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम् ॥१॥

चीता, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, जीराश्वेत, कालाजीरा, बच, सेंधानमक, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, यवक्षार ॥ १ ॥

विडङ्गान्यजमोदा च मुस्तान्यमरदारु च।
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ॥ २ ॥

विडंग, अजमोदा, मोथा, देवदारु इन में से प्रत्येक द्रव्य को एक २ भाग लेवे। सबको एकत्र कर चूर्ण करे। जितना सबका चूर्ण हो, उतना शुद्ध गूगल डालकर ॥ २ ॥

संकुट्य सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद्भिषक्।
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम् ॥ ३ ॥

सबको खूब कूट ले। फिर घी से मिलाकर गोली बना लेवे। इस गोली को प्रातःकाल वा भोजन के समय बलानुसार कम अधिक मात्रा में खावे ॥ ३ ॥

हन्त्यष्टादश कुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानपि।
ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ४ ॥

इससे १८ प्रकार के कुष्ठ, कृमिरोग तथा दूषित व्रण, ग्रहणीरोग, अर्शरोग, मुख के रोग तथा गलग्रह रोग नष्ट हो जाते है ॥ ४ ॥

गृध्रसीमथ भग्नं च गुल्मं चापि नियच्छति।
व्याधीन्कोष्ठगतांश्चान्याञ्जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ ५ ॥

गृध्रसी, भग्नरोग, गुल्मरोग ये सभी नष्ट होते हैं तथा कोष्ठगत सभी व्याधियें ऐसे नष्ट हो जाती हैं जैसे विष्णु से असुर लोग नष्ट होते थे ॥ ५ ॥

अथ त्रिफलामोदकः—त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दश पञ्च च।
सप्त चैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पलद्वयम् ॥ १ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला तीनों का चूर्ण पृथक २ समभाग लेकर एकत्र करे। इस मिलित त्रिफले का चूर्ण १५ पल ले, विडंग का चूर्ण सात पल ले, लौहभस्म दो पल ले ॥ २ ॥

शतं भल्लातकानां च पलानि दश बाकुची।
शिलाजतु पलार्धं तु द्वे पले गुग्गुलोस्तथा ॥ २ ॥

शुद्ध भिलावें एक सौ संख्या लें, बावची का चूर्ण दस पल ले। शिलाजीत आधा पल लेवें। शुद्ध गूगल दो पल लेवें ॥ २ ॥

पलं पुष्करमूलस्य पलार्धं त्रिवृतस्य च।
सचित्रकं समरिचं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ ३ ॥

पोहकरमूल का चूर्ण एक पल लें, त्रिवी आधा पल लें। चीता, मिरच,

पीपल, सोंठ ॥ ३ ॥

त्वक्पत्रं कुङ्कुमं मुस्ता कार्षिकानुपकल्पयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावत्खण्ड प्रदापयेत् ॥ ४ ॥

दारचीनी, तेजपात, केशर, मोथा इनका चूर्ण एक २ कर्ष लें। सबको एकत्र करके मिलावें। फिर समस्त चूर्ण के समान खांड मिलावें ॥ ४ ॥

पालिकान्मोदकान्कृत्वा प्रातरुत्थाय नित्यशः ।
एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञो यथेष्टं चात्र भोजनम् ॥ ५ ॥

और विधिपूर्वक एक २ पल के मोदक बना लें। इन मोदकों में से एक २ मोदक प्रतिदिन प्रातःकाल खावे और यथेष्ट भोजन करे ॥ ५ ॥

कुष्ठान्यष्टादशापीह प्लीहगुल्मभगंदरान् ।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ६ ॥

१८ प्रकार के कुष्ठ, प्लीहा, गुल्म, भगन्दर, ८० वातजरोग, ४० पित्त के रोग।

विंशतिं श्लैष्मिकांश्चापि संसृष्टान्सांनिपातिकान् ।
शालाक्यगतरोगांश्च शिरोऽक्षिभ्रूगतांस्तथा ॥ ७ ॥

तथा २० कफ के रोग, द्वंद्वज तथा सन्निपात के रोग। शालाक्यगतरोग अर्थात ऊर्ध्वजत्रुगतरोग (विशेष कर के सिर, कान, नेत्र के रोग, भ्रू, शंख, कण्ठ तथा मन्या के रोगों को शालाक्यगतरोग कहते हैं, जैसे कि कहा भी है, "शिरोरोगाः नेत्ररोगाः कर्णरोगाः विशेषतः, भ्रूशंखकण्ठमन्यासु ये रोगाः संभवन्ति हि। तेषां प्रतीकारकर्म्म नासावर्त्त्यञ्जनानि च। अभ्यङ्गमुखगण्डूष क्रियाः शालाक्यनामकाः" ॥ वैद्य० सं० २ अ०) शिरोगतरोग, अक्षिगतरोग, भ्रूगतरोग ॥ ७ ॥

कण्ठतालुगतांश्चापि जिह्वायामुपजिह्वकम् ।
ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे भुक्तस्योपरि दापयेत् ॥ ८ ॥

कण्ठगतरोग, तालुगतरोग, जिह्वा में उपजिह्वरोग, ऊर्ध्वजत्रुगत इन सभी रोगों में भोजन करने के बाद इस त्रिफलामोदक को देवे ॥ ८ ॥

शारीरे दापयेत्पूर्वमौदरे मध्यभोजने ।
निर्दिष्टरोगान्शमयेत्क्रियमाणं रसायनम् ॥ ९ ॥

शरीर के अन्य रोगों में इसे भोजन से पूर्व देवे। उदररोगों में भोजन के मध्य में देवे। इन सब रोगों को यह सेवन किया हुआ रसायन औषध अवश्य नष्ट कर देता है ॥ ९ ॥

अथावलेहः ।

तत्राऽऽदौ भल्लातकावलेहः—निम्बगोपारुणाकट्वीत्रायन्तीत्रिफलाघनम् ।
पर्पटावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ १ ॥

नीम की छाल, श्यामालता, अतीस, कुटकी, त्रायमान, हरड़, बहेड़ा, आंवला मोथा, पित्तपापड़ा, सोमराजी, अनन्तमूल, बच, खैर, चन्दन ॥ १ ॥

पाठा शुण्ठी शटी भार्ङ्गी वासा भूनिम्बवत्सकम् ।
श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडङ्गातिविषानलम् ॥ २ ॥

पाठा, सोंठ, कचूर, भार्गी, बांसा, चिरायता, कुड़े की छाल, श्यामालता अथवा काली त्रिवृत्, इन्द्रायण, मूर्वा, विडंग, अतीस, चीता ॥ २ ॥

हस्तिकर्णामृताब्दाह्वं पटोलं रजनीद्वयम् ।
कृष्णारग्वधसप्ताह्वशिरीषं चोचटाफलम् ॥ ३ ॥

गजकर्णकन्द की जड़, गिलोय, मोथा, पटोलपत्र, हल्दी, दारुहल्दी, पिप्पली अम्लतास, सप्तपर्ण की छाल, सिरस की छाल, लालरत्तियां ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठा लाङ्गली रास्ना नक्तमालः पुनर्नवा ।
दन्ती बीजकसारश्च भृङ्गराजकुरण्टकम् ॥ ४ ॥

मंजीठ, लांगलीविष, रास्ना, वृहत्करंज, पुनर्नवा, दन्ती, विजयसार, भांगरा, पीलीझिण्टी ॥ ४ ॥

एतान्द्विपलिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टं च कषायमवतारयेत् ॥ ५ ॥

इन में से प्रत्येक द्रव्य को दो २ पल ले और दो द्रोण जल में डालकर उबाल लेवे । जब पककर आठवां भाग अर्थात् चौथाई द्रोण जल शेष रह जावे तो उतार कर छान लेवे ॥ ५ ॥

भल्लातकसहस्राणि क्षिपेच्छित्त्वाऽर्मणेऽम्भसि ।
चतुर्भागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ ६ ॥

एक हजार शुद्ध भिलावें छीलकर एक द्रोण जल में डालकर पकावें जब चौथाई जल शेष बचे तो उतार कर छान लेवे ॥ ६ ॥

तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ तु कारयेत् ।
एकीकृत्य कषायौ तौ पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ७ ॥

फिर इन दोनों काथों को वस्त्र से छानकर एक पात्र में डाल इकट्ठा कर अग्नि पर पकावे ॥ ७ ॥

गुडस्यैकतुलां दत्त्वा लेहवत्साधयेद्भिषक् ।
भल्लातकसहस्रस्य तत्र बीजानि दापयेत् ॥ ८ ॥

फिर गुड एक सौ पल डालकर मिला लेवे और एक बार फिर वस्त्र में से छानकर पकावे । जब अवलेह के समान बनने को आवे तो उन एक हजार भिलावें के बीजों को कूटकर इसी में डाल देवे ॥ ८ ॥

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ।
चन्दनं सैन्धवं कुष्ठं दीप्यकं च पलं पलम् ॥ ९ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल इन का मिलित चूर्ण एक पल, त्रिफला का चूर्ण एक पल, मोथा का चूर्ण एक पल, बायविडंग का चूर्ण एक पल, चीता का चूर्ण एक पल, चन्दन का चूर्ण एक पल, सेंधानमक एक पल, कूठ १ पल, अजवायन १ पल ॥९॥

चातुर्जातं च संचूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत्।
सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥ १० ॥

दारचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर सब समभाग लेकर मिलित एक पल डाले। गन्धक शोधित चूर्ण कर के ४ पल डाले इन सब को अत्यन्त मिलाकर एक प्राण कर रखे ॥ १० ॥

महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः।
प्राणिनां तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव च ॥ ११ ॥

यह महादेव जी ने प्रथम २ प्राणियों के हित के लिये बनाया था इस का नाम महाभल्लातकावलेह है ॥ ११ ॥

श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृष्यजिह्वं सकाकणम्।
पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ १२ ॥

इस के सेवन से शीघ्र ही श्वित्रकुष्ठ, उदुम्बरकुष्ठ, दद्रु, ऋष्यजिह्व, काकण, पुण्डरीक, चर्म, विस्फोट, रक्तमण्डल ॥ १२ ॥

कृच्छ्रं कापालिकं कुष्ठं पामां चापि विपादिकाम्।
वातरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं वमीन्कृमीन् ॥ १३ ॥

कष्टदायक कापालिककुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पाण्डुरोग, वमीरोग, कृमिरोग ॥ १३ ॥

अर्शांसि षट्प्रकाराणि श्वासं कासं भगंदरम्।
अनुपानेन दातव्यं छिन्नातोयेन तं भिषक् ॥ १४ ॥

छः प्रकार की बवासीर, श्वास, कास, भगन्दर ये सभी नष्ट हो जाते हैं। इसे गिलोय के स्वरस से या क्वाथ से खाना चाहिये ॥ १४ ॥

भोजने न सदा योज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः।
अन्यान्यपि च कुष्ठानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १५ ॥

भोजन में गरम पदार्थ तथा खटाई नहीं खानी चाहिये। इस से अन्यान्य कुष्ठ भी निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥ इति महाभल्लातकावलेहः ॥

अथ शशाङ्कलेखादिलेहः—

शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा सपिप्पलीका सहुताशमूला।
सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लीढा ॥१॥

सोमराजी, विडङ्ग के बीज, पिप्पली, चीते की जड़, मण्डूर की भस्म, आमला इन सब के चूर्ण को पृथक २ समभाग लेकर एकत्र मिलावें। फिर तैल

मिलाकर चाटे तो सभी कुष्ठों को यह शशाङ्कलेखादिलेह नष्ट कर देता है ॥१॥

अथ धात्र्यवलेहः—

धात्र्यक्षपथ्यासविडङ्गवह्निभल्लातकावल्गुजलोहभृङ्गाः ।
भागाभिवृद्धैस्तिलतैलमिश्रैः सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेहः ॥१॥

आंवले का चूर्ण एक भाग, बहेड़े का चूर्ण दो भाग, हरड़ का चूर्ण तीन भाग, विडंग का चूर्ण ४ भाग, चीता का चूर्ण ५ भाग, भिलावें का चूर्ण ६ भाग सोमराजी बीज का चूर्ण ७ भाग, लोहभस्म ८ भाग, भांगरे का चूर्ण ६ भाग । इन सबको एकत्र करे । इसे तिल के तैल से मिलाकर अवलेह बनालें । इसे चाटे तो सभी कुष्ठों का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

तत्राऽऽदौ तिक्तषट्पलं घृतम्—

निम्बं पटोलदार्व्यौ दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम् ।
कुर्यादर्धपलांशान्पर्पटकं त्रायमाणां च ॥ १ ॥

नीम की छाल, पटोलपत्र, दारुहल्दी, जवासा, कुटकी, हरड़, बहेड़ा, आंवला पित्तपापड़ा, त्रायमान इनमें से प्रत्येक द्रव्य आधा २ पल लें ॥ १ ॥

सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते पूते ।
चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणं च ॥ २ ॥

सबको एकत्र करके एक आढक जल में डालकर क्वाथ करें । जब आठवां भाग जल शेष रह जावे तब उतार कर छान लें । फिर लालचन्दन, चिरायता, पिप्पली, त्रायमान ॥ २ ॥

मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्धकार्षिकान्भागान् ।
नवसर्पिषश्च षट्पलमेतात्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ ३ ॥
कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपाण्ड्वामयान्हन्ति ।
पामाविसर्पपिटिकाकण्डूगण्डव्रणान्सिद्धम् ॥ ४ ॥

मोथा, इन्द्रजौ इन में से प्रत्येक द्रव्य आधा २ कर्ष लें । सबका कल्क करलें, फिर ताजा नया घी छह पल लें । उसमें कल्क तथा क्वाथ डालकर पकालें । घी का पाक शेष होने पर उतार कर छान लेवें । इस घी को पीने से कुष्ठ, ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग, पामा, विसर्प, पिड़िका, कण्डू, गण्ड, व्रण ये सब रोग नष्ट होते है ॥२॥

अथ पञ्चतिक्तकं घृतम्—**निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा ।**
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ १ ॥

नीम, पटोलपत्र, कटेली, गिलोय, बांसा इनमें से प्रत्येक पदार्थ कूटकर दस दस पल ले ॥ १ ॥

जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ २ ॥

फिर सबको एक द्रोण जल में डालकर पकावे, जब चौथाई जल शेष बच जावे तो उतारकर छान लेवे । फिर एक प्रस्थ नया गौ का घी लेवे, चौथाई प्रस्थ त्रिफला का कल्क ले । सबको एकत्र करके घृतपाक करे ॥ २ ॥

पञ्चतिक्तमिति ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ३ ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति ।
दुष्टव्रणकृमीनर्शःपञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥ ४ ॥

यह पंचतिक्तघृतकुष्ठ नाश करने में प्रसिद्ध है । ८० वातजरोग, ४० पैत्तिक-रोग, २० श्लैष्मिकरोग इसको पीने से ही नष्ट होते हैं । दुष्टव्रण, कृमिरोग, अर्श, तथा पांचों प्रकार की खांसी भी इससे नष्ट होती है ॥ ४ ॥

अथ महातिक्तकं घृतम्—

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम् ।
मुस्तामुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमन्दपर्पटकम् ॥ १ ॥

सप्तपर्ण की छाल, अतीस, अम्लतास की जड़, कुटकी, पाठा, मोथा, खस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पटोलपत्र, नीम की छाल, पित्तपापड़ा ॥ १ ॥

धन्वयवासकचन्दनमुपकुल्यापद्मकरजन्यौ च ।
षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिवे चोभे ॥ २ ॥

धमासा, लाल चन्दन, पीपली, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, बच, इन्द्रायण, शतावर, श्वेतशारिवा, कृष्णशारिवा ॥ २ ॥

वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तं च ।
कल्कान्कुर्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वं त्रायमाणं च ॥ ३ ॥

इन्द्रजौ, बांसा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलठ्ठी तथा त्रायमान ॥३॥

कल्कस्य चतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।
द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः प्राशयेत्सिद्धम् ॥ ४ ॥

इनको एक २ भाग लेकर कल्क करे । और इन ही औषधियों के कल्क में आठगुणा जल डालकर पकाकर चौथाई भाग शेष रखकर इन द्रव्यों का क्काथ भी कर रखे । फिर कल्क १ भाग, कल्क से चौगुना शुद्ध नया गौ का घी ले । और उस क्काथ को भी ले । और आंवलों का स्वरस घी से दुगना ले । इन सबको विधिपूर्वक लेकर घृत पका लेवें ।

कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि ।
वीसर्पमम्लपित्तं वातासृक्पाण्डुरोगं च ॥ ५ ॥

इस घी के सेवन करने से कुष्ठ, रक्तपित्त, प्रबल अर्श जिन में से रक्त बहता

हो। वीसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग ॥ ५ ॥

विस्फोटकान्सपामानुन्मादं कामलां ज्वरं कण्डूम्।
हृद्रोगं गुल्मपिटिकां भगन्दरं गण्डमालां च ॥ ६ ॥

विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिड़िका, भगन्दर, गण्डमाला ॥ ६ ॥

हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः।
योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ ७ ॥

इन सब को यह महातिक्त घी पीने से शीघ्र ही नष्ट कर देता है और सैकड़ों योगों से भी जो महारोग अच्छे नहीं होते वे इस से शीघ्र ही अच्छे हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अथ महाखदिरघृतम्—खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले।
तुलार्धं सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥ १ ॥

खैर ५०० पल, शीशम की छाल, एक सौ पल, विजयसार की छाल १०० पल ॥ १ ॥

पर्पटः कुटजश्चैव वृषः कृमिहरस्तथा।
हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत् ॥ २ ॥

करंज, नीम की छाल, बेत की छाल, पित्तपापड़ा, कुड़े की छाल, बांसा, वायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी, अम्लतास, गिलाय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, त्रिवी॥२॥

सप्तपर्णश्च संक्षुण्णो दशद्रोणे तु वारिणि।
अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ ३ ॥

सप्तपर्ण इन सब को समभाग लेकर कुल ५० पल लें। सब को कूटकर दस द्रोण जल में डालकर पकावें। जब आठवां भाग शेष रह जाये तो उतार कर छान ले ॥ ३ ॥

धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाऽऽढकं पचेत्।
महातिक्तककल्कैस्तु यथोक्तैः पलसंमितैः ॥ ४ ॥

फिर आंवले का स्वरस एक आढक लें, तथा नया गौ का घी एक आढक ले। तथा पूर्वलिखित महातिक्तक घृत के सप्तपर्ण, अतीस आदि द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लेकर कल्क करे। फिर यह कल्क, घी, आंवले का स्वरस तथा खैर आदि का क्वाथ यथाक्रम डालकर घी पकाले ॥ ४ ॥

निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात्।
महाखदिरमित्येतत्परं कुष्ठविकारनुत् ॥ ५ ॥

इस घी को पीने और मलने से सभी प्रकार के कुष्ठरोग नष्ट होते हैं। यह महाखदिर घृत सभी कुष्ठों के विकारों को नष्ट करता है ॥ ५ ॥

अथ तैलानि।

अथ चित्रकादितैलम्–शुभ्रस्य करवीरस्य रसो वेल्लं च चित्रकम्।
त्रिभिश्च पाचितं तैलमभ्यङ्गात्कुष्ठजातिनुत् ॥१॥

श्वेत कनेर का स्वरस, वायावडंग, चीता इन सब को समभाग लेकर कल्क करे। इस कल्क से चौगना सरसों का तेल ले, और तेल से चौगुना पानी ले। सब को एकत्र पाक करे। तेलमात्र शेष रहने पर छान ले। इसे मालिश करने से कुष्ठ नाश होता है ॥ १ ॥

अथ वज्रतैलम्–सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजान्।
मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोटयोरपि ॥ १ ॥

सतौने की जड़, करंज की जड़, आक की जड़, चमेली को जड़, कनेर की जड़, थोहर की जड़, सिरस की जड़, चीते की जड़, आक की जड़ ॥ १ ॥

करञ्जबीजं त्रिफलां त्रिकटुं रजनीद्वयम्।
सिद्धार्थकं विडङ्गं च प्रपुन्नाटं च संहरेत् ॥ २ ॥

करंज का बीज, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिरच, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सरसों, वायविडंग, पनवाड़ के बीज ॥ २ ॥

मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम्।
अभ्यङ्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ३ ॥

इन सबको समभाग लेकर गोमूत्र से पीसकर कल्क करे। इस कल्क से चौगुना सरसों का तेल और तेल से चौगुना पानी डालकर तेल पका ले। इस वज्रक तेल के मलने से कुष्ठ, नाड़ीव्रण तथा दुष्टव्रण नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

अथ मञ्जिष्ठाद्यं तैलम्–मञ्जिष्ठारुग्निशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः।
तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं परम् ॥ १ ॥

मंजीठ, कूठ, हल्दी, पनवाड़ के पत्ते, अमलतास के पत्ते, प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लेकर सबका कल्क बनावे। इस कल्क से चौगुना सरसों का तेल ले, तेल से चौगुना जल लेवे। और तेल के समभाग ही "तृणक" अर्थात् गन्धतृण वा चीनी घास का स्वरस डालकर तेल पाक कर लेवे। यह तेल परम कुष्ठनाशक है ॥ १ ॥ इति तैलानि।

अथाऽऽसवाः।

तत्राऽऽदौ खदिरासवः–खदिरस्य तुलार्धं तु तत्तुल्यं देवदार्वपि।
वराया विंशतिर्दार्व्याः पलानां पञ्चविंशतिः ॥१॥

खैर ५० पल, देवदार ५० पल, त्रिफला २० पल, दारुहल्दी २५ पल ॥१॥

वाकुच्या द्वादश पलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्।

द्रोणशेषे कषाये तु पूतशेषे विनिक्षिपेत् ॥ २ ॥

बावची १२ पल, इन सब द्रव्यों को कूटकर आठ द्रोण जल में डालकर पकावे। जब पककर एक द्रोण क्वाथ रह जावे तो उतारकर छान लेवे ॥ २ ॥

धातक्या विंशतिपलं माक्षिकस्य शतद्वयम्।
शर्करायास्तुलामेकां चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ३ ॥

इस क्वाथ में धाय के फूल २० पल डाले, शहद २०० पल डाले। खांड १०० पल डाले ॥ ३ ॥

कङ्कोलकं लवङ्गं च एलाजातीफलत्वचम्।
केशरं मरिचं पत्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥ ४ ॥

और कङ्कोल, लौंग, इलायची, जायफल, दारचीनी, नागकेसर, मिरच, तेजपात इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लेकर चूर्ण कर के डाले ॥ ४ ॥

पिप्पलीनां तु कुडवं स्थापयेद्घृतभाजने।
मासादूर्ध्वं पिबेन्मात्रामनपेक्ष्य बलाबलम् ॥ ५ ॥

पिप्पली का चूर्ण एक कुडव भर लेकर डाले। सब को एकत्र कर के घी से चिकने हुए २ एक पात्र में डाल देवे। एक महीना भर बन्द रखने के पीछे इसे निकाल कर पीवे। मात्रा बलाबल के अनुसार लेवे ॥ ५ ॥

सर्वकुष्ठहरो ह्येष पाण्डुहृद्रोगकासनुत्।
कृमिग्रन्थ्यर्बुदग्रन्थिगुल्मप्लीहोदरान्तकृत्।
एष वै खदिरारिष्टः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ६ ॥

इस से सभी प्रकार के कुष्ठरोग दूर होते हैं, पाण्डुरोग, हृद्रोग तथा कासरोग नष्ट होता है। कृमिरोग, ग्रन्थि, अर्बुद, ग्रन्थिगुल्म, प्लीहा, उदररोग इन सब रोगों को कृष्णात्रेय का माना हुआ यह खदिरारिष्ट नाश करता है ॥ ६ ॥

अथ कनकारिष्टः—खदिरकषायं द्रोणं सर्पिष्कुम्भे निधापयेन्मध्ये।
पलिकामात्रान्क्षिप्यान्कृत्वा तु तानेव सूक्ष्मचूर्णं तु ॥१॥

खैर का क्वाथ एक द्रोण भर लेकर घी से चिकने हुए मटके में डाल देवे ॥१॥

त्रिफला त्रिकटुरजनीकनकत्वग्बाकुची गुडूची च।
सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्वयं प्रक्षिपेत्सर्वम् ॥ २ ॥

फिर त्रिफला, त्रिकुटा, हल्दी, धतूरे की छाल, बावची तथा गिलोय, विडंग इन सब को एक २ पल लेकर सूक्ष्म चूर्ण कर के उसी मटके में डाल देवे। शहद २०० पल डाल देवे ॥ २ ॥

धातक्याश्च पलान्यष्टौ क्वाथेऽस्मिन्प्रदेयानि।
प्रातः प्रातस्तु पिबेन्नाशयति चिरोत्थितं कुष्ठम् ॥ ३ ॥

धाय के फूल आठ पल डाले। इस को एक मासभर बन्द कर के रखने के बाद खोलकर निकाल लेवे ॥ ३ ॥

मासेन सर्वरोगान्विनिहन्ति च सर्वशोफमेहांश्च।
निर्जितकासश्वासो गुदकीलभगंदरैर्मुक्तः।
कनकारिष्टं प्रपिबन्भवति पुमान्कनककान्तिश्च ॥ ४ ॥

इसे प्रातःकाल पीने से १ मास में ही सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं, सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं। खांसी तथा श्वास नष्ट होते हैं, गुदा के कील अर्थात् मस्से तथा भगन्दर नष्ट होते हैं। इस कनकारिष्ट को पीने से मनुष्य सोने की सी कान्तिवाला हो जाता है ॥ ४ ॥ इत्यासवाः ॥

अथ दद्रुचिकित्सा—**कासमर्दकमूलानि सौवीरेण तु पेषयेत्।**
दद्रुकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १ ॥

कसौंदी की जड़ को सौवीराम्ल से पीसकर लेप करें तो यह दद्रु, किटिभ तथा अन्य कुष्ठों को भी नाश करती है ॥ १ ॥

मूलकबीजादियोगः—

बीजानि वा मूलकसर्षपाणां लाक्षारजन्यौ प्रपुनाटबीजम्।
श्रीवेष्टकं व्योषविडङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण विलेपनं स्यात्।
दद्रूणि सिध्मं किटिभानि पामां कपालकुष्ठं विषमं च हन्युः ॥२॥

मूली के बीज, सरसों के बीज, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, पनवाड़ के बीज, श्रीवेष्टक अर्थात् चील का गोंद या तारपीन, सोंठ, मिरच, पीपल, विडंग, कूठ इन सब को गोमूत्र से पीसकर लेप करे तो दद्रु, सिध्म, किटिभ, पामा, कपाल कुष्ठ, भयंकर भी हों तो भी नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

आरग्वधपत्रयोगः—**आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत्।**
दद्रुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिध्ममसंशयः ॥ ३ ॥

अम्लतास के पत्ते कांजी से पीस लेवे, इस का लेप करें तो दद्रु, किटिभ, कुष्ठ तथा सिध्मरोग निस्सन्देह नष्ट होजाते हैं ॥३॥

दद्रौ प्रपुन्नाटयोगः—**प्रपुन्नाटस्य बीजानि धात्री सर्जरसः स्नुही।**
सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्वर्तनं परम् ॥ ४ ॥

पनवाड़ के बीज, आंवला, राल, थोहर इन का सौवीराम्ल से पीसकर लेप करें और उबटना करें तो दाद या दद्रु के नाश करनें में यह श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

कण्डूदूर्वादियोगः—

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः।
त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलं दद्रुं च कण्डूं च विनाशयन्ति ॥५॥

दूबघास, हरड़, सेंधानमक, पनवाड़ के बीज, श्वेत तुलसी इनको समभाग लेकर कांजी तथा तक्र में पीसकर तीन वार लेप करें तो दद्रु गहरी जड़ वाली कण्डू या खुजली इससे नष्ट हो जाती है ॥ ५ ॥

विडंगादिलेपः—विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः ।
धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठनिषूदनः ॥ ६ ॥

वायविडंग, पनवाड़, कूठ, हल्दी, सेंधानमक, सरसों इन सबको धान्याम्ल से पीसकर लेप करें तो दद्रु तथा कुष्ठरोग का नाश होता है ॥ ६ ॥

अथ लघुमरीचाद्यं तैलम्—मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत् ।
शकृद्रसविशालारुङ्निशायुग्दारुचन्दनैः ॥ १ ॥
कटुतैलं पचेत्प्रस्थं द्व्यक्षे विषपलान्विते ।
सगोमूत्रं तदभ्यङ्गाद्दद्रुश्वित्रविनाशकृत् ॥ २ ॥

कालीमिरच, हड़ताल, मनसिल, नागरमोथा, आक का दूध, कनेर की जड़, त्रिवी, गोबर का रस, इन्द्रायण, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, देवदार, लालचन्दन इन में से प्रत्येक द्रव्य दो २ अक्ष लेवें, विष एक २ पल लेवे । सबका कल्क करले, इस कल्क से चौगुना सरसों का तल ले, तेल से चौगुना गोमूत्र ले । सबको एकत्र करके पाक करे । इस तेल की मालिश करने से दद्रु तथा श्वित्र का नाश होता है २

अथ दरदादिलेपः—

दरगन्धकपारदपिप्पलीविषविडङ्गनिशाग्निमरीचकम् ।
अभयशुण्ठिघनाब्धिकबाकुचीकटुनृपद्रुमभेडगजान्वितम् ॥१॥

शिंगरफ, गन्धक, पारा, पिप्पली, विडंग, मीठा तेलिया विष, हल्दी, चीता, मिरच, हरड़, सोंठ, मोथा, समुद्रफेन, बावची, कुटकी अम्लतास के पत्ते, पनवाड़ के पत्ते, या बीज ॥ १ ॥

सममिदं खलु निम्बरसैर्युतं हरति दद्रुजकण्डुविसर्पकान् ।
हरति लूतभगंदरमण्डलं तनुविलिप्तमहो क्षणतो नृणाम् ॥ २ ॥

इनमें से प्रत्येक द्रव्य समभाग लेवे । इसे नीम के स्वरस से पीसकर पतला २ लेप करें तो दद्रु, कण्डू, विसर्प, लूताविष, भगन्दर, मण्डल, इनको क्षणभर में ही नष्ट कर देता है ॥ २ ॥ इति दद्रुचिकित्सा ।

अथ चर्माख्यचिकित्सा—सूतगन्धकयोः पिष्ट्वा कज्जलिकां विधाय च ।
म्रक्षणेन विमर्द्याथ करित्वग्लेपने हितम् ॥१॥

पारा और गन्धक दोनों को समभाग लेकर कज्जली बना लें फिर मक्खन से मिलाकर खरल करें फिर लेप करदें तो गजचर्म अर्थात् चर्मरोग शान्त हो जाता है १

कबाबादिलेपः ।

कबाबगौरीगदतुत्थजीरवल्लीभवं कर्षमिदं पृथक्च ।
शिलाबली तौ रविकर्षसंख्यौ सार्धौ विभागः किल पारदस्य ॥२॥

कबाबचीनी (गौरी—मंजीठ, हल्दी, दारुहल्दी आदि) हल्दी, कूठ, तुत्थ, जीरा, मिरच इन में से प्रत्येक द्रव्य एक २ लें । मनसिल १२ कर्ष, गन्धक १२

कर्ष, पारा ६ कर्ष ॥ २ ॥

कर्षैश्च विंशत्प्रमितैर्घृतस्य सर्वं विमर्द्य किल ताम्रपात्रे ।
ततोऽङ्गलेपात्त्रिदिनं च तीव्रां हरेच्च रोगी गजकर्णपामाम् ॥ ३ ॥

सबको विधि पूर्वक खरल करे, फिर इसमें २० कर्ष घी मिला देवे । सबको ताम्बे के पात्र में खूब खरल करके अङ्ग पर लेप करे तो तीव्र गजकर्ण तथा पामा को भी तीन दिन में नाश करता है ॥ ३ ॥

गुञ्जाद्युद्वर्तनम्—गुञ्जाचित्रकशङ्खभस्मरजनीदूर्वाभयालाङ्गली-
स्नुक्सिन्धूत्थकुमारिकाजलधरार्कक्षीरधूमेशजैः ।
वल्गूपडगजाविडङ्गमरिचक्षौद्रैश्च खारीयुतैः
कार्यं वै गजचर्मदद्रुरकसाकण्डूग्नमुद्वर्तनम् ॥ ४ ॥

गुञ्जा अर्थात् रत्तियां, चीता, शंख की भस्म, हल्दी, दूब, हरड़, लांगली, विष थोहर, सेंधानमक, घीकुमार, मोथा, आक का दूध, रसोई घर का धुंआ, पारा, सोमराजी बीज, पनवाड़ के बीज, विडंग, मिरच, शहद, (खारीयुतैः········) (खारिकः बड़ी खजूर) इन सबको पीसकर गजचर्म, दद्रु, रकसा, कण्डू इन पर उबटना करें तो इन रोगों का नाश होता है ॥ ४ ॥

अपर आरग्वधपत्रयोगः—आरग्वधदलैः पिष्टैर्लेपः काञ्जिकयुक्कृतः ।
करित्वग्दद्रुकुष्ठानि हन्ति पामां विचर्चिकाम् ॥

अम्लतास के पत्तों को कांजी से पीसकर लेप करें तो गजचर्म, दद्रु, कुष्ठ, पामा तथा विचर्चिकारोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥ इति चर्माख्यचिकित्सा ।

अथ किटिभचिकित्सा—चक्राङ्कबीजं त्वक्क्षीरभावितं मूत्रसंयुक्तम् ।
रविवेतसकन्दं च लेपनं किटिभापहम् ॥ १ ॥

पनवाड़के बीज और दारचीनी इन दोनों को दूधसे भावित करें, आक की जड़ तथा बेत की जड़ मिलाकर गोमूत्र से पीसकर लेप करें तो किटिभरोग नष्ट होता है ॥१॥

पिप्पल्यादिलेपः—पिप्पलीपूतिकायस्थाकुष्ठगोपित्तचित्रकैः ।
लेपं सम्यक्प्रशंसन्ति किटिभघ्नं चिकित्सकाः ॥ २ ॥

पिप्पली, पूतिकरंज, संभालु, या हरड़ (कायस्था—हरीतकी, काकोली, सूक्ष्मैला, आमलकी, सिन्धुवारे) कूठ, गौ का पित्त, चीता इन सबको समभाग लेकर जल से पीसकर लेप करें तो किटिभ कुष्ठ का नाश होता है ॥ २ ॥

गोमूत्रादिलेपः—गोमूत्रवारिसंपिष्टैः शिलाकासीसतुत्थकैः ।
लेपः किटिभवीसर्पकुष्ठनाशाय पूजितः ॥ ३ ॥

मनासिल, कसीस, नीलाथोथा, इन सबको गोमूत्र तथा पानी से पीसकर लेप करें तो किटिभ, विसर्प तथा कुष्ठ नाश करने में यह लेप उत्तम माना जाता है ॥३॥

अथ सिध्मचिकित्सा । धात्र्यादिलेपः—

धात्रीफलं सर्जरसो यावशूकास्त्विदं त्रयम् ।

सौवीरपेषितं सर्वं सिध्मशूलविदारणम् ॥ १ ॥

आंवले का फल, राल, जौखार इन तीनों को सौवीराम्ल या कांजी से पीसकर लेप करें तो सभी प्रकार के सिध्म शूल को नाश करता है ॥ १ ॥

शिखरीरसादि–शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्मम्।
क्षारेण कदल्या वा रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २ ॥

अपामार्ग के रस से मूली के बीजों को पीसकर लेप करें। अथवा केले के क्षार को हल्दी में मिलाकर लेप करें तो सिध्म का नाश होता है ॥ २ ॥

कुष्ठादिलेपः–कुष्ठमूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपा दुरालम्भा।
एतत्केसरपिष्टं निहन्ति चिरकालजं सिध्मम् ॥ ३ ॥

कूठ, मूली के बीज, प्रियंगु, सरसों, जवासा, केसर इन सबको पीसकर लेप करें तो चिरकाल से हुए २ सिध्मरोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गंधपाषाणादिलेपः–गन्धपाषाणमिश्रेण यवक्षारेण लेपितम्।
सिध्मं नाशमुपैत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ ४ ॥

गन्धक, यवक्षार इन दोनों को कड़वे तेल से पीसकर लेप करे तो सिध्मरोग तुरन्त नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कासमर्दबीजलेपः–कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च।
गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ ५ ॥

कसौंदी के बीज, मूली के बीज, गन्धक इन सबको पीसकर लेप करने से सिध्मरोग की शान्ति होती है। सिध्मरोग के लिये यह परम औषध है ॥ ५ ॥

मूलबीजादिलेपः–बीजं मूलकजं निम्बपत्राणि सितसर्षपान्।
गृहधूमं च संपिष्य जलेनाङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥

मूली के बीज, नीम के पत्ते, श्वेत सरसों, गृहधूम इन सबको जल से पीसकर अंगों पर प्रलेप करे ॥ ६ ॥

उद्वर्त्य नवनीतेन क्षालयेदुष्णवारिणा।
त्र्यहादनेन सिध्मानि शाम्यन्त्याशु शरीरिणाम् ॥ ७ ॥

फिर मक्खन से उबटन करे फिर गरम जल से धो देवे। इस प्रकार से तीन दिन करने से सिध्मरोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

लाक्षादिलेपः—लाक्षा श्रीवेष्टकं कुष्ठं हरिद्रा गौरसर्षपाः।
व्योषं मूलकबीजानि प्रपुन्नाटफलानि च ॥ ८ ॥

लाखा, राल, कूठ, हल्दी, श्वेत सरसों, सोंठ, मिरच, पीपल, मूली के बीज, पनवाड़ के फल अर्थात् बीज ॥ ८ ॥

एतान्यत्र प्रदिष्टानि कुष्ठेषूद्वर्तनं परम्।
सिध्मानां किटिभानां च दद्रूणां च विशेषतः ॥ ९ ॥

इन सबको समभाग लेकर पीस के। जल से मिलाकर उबटना करे। यह उबटना कुष्ठ, सिध्म, किटिभ तथा दद्रु इन सबको विशेष करके लाभ देता है ॥९॥

कार्पासपत्रलेपः—

कार्पासिकापत्रविमिश्रकाकजङ्घाकृतो मूलकबीजयुक्तः।
तक्रेण लेपः क्षितिपुत्रवारे सिध्मानि सद्यो नयति प्रणाशम् १०

कपास के पत्ते, काकजंघा, मूली के बीज इन सब को समभाग लेकर छाछ से पीसकर भौमवार को लेप करें तो सिध्मरोग को शीघ्र ही नष्ट कर देता है ॥१०

सिध्महरोलेपः—**गोमूत्रेणाथ तक्रेण जीर्णसौवीरकेण वा।**
पिष्टमूलकबीजानां लेपनात्सिध्मनाशनम् ॥ ११ ॥

गोमूत्र से, तक्र से, पुरानी कांजी से मूली के बीजों को पीसकर लेप करें तो सिध्म नाश होता है ॥ ११ ॥ इति सिध्मचिकित्सा ॥

अथ विपादिकाचिकित्सा—**धत्तूरबीजकल्केन माणकक्षारवारिणा।**
कटुतैलं विपक्वं तु द्रुतं हन्याद्विपादिकाम् ॥

धतूरे के बीज के कल्क से, तथा मानकन्द के क्षार के जल से। विधिपूर्वक सरसों का तेल पकाया जाये तो विपादिकारोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ तुण्डीघृतम्—**तुण्डीरसेन संसिद्धं घृतं हन्ति विपादिकाम् ॥ १ ॥**

विंबाफल के स्वरस से पकाया हुआ घी विपादिकारोग को नष्ट करता है ॥१॥
इति विपादिकाचिकित्सा ॥

अथ क्रमेण—

पामाकण्डूकच्छूविसर्पविस्फोटचर्मदलविचर्चिकाचिकित्सां।
व्याख्यास्यामः।

सिन्दूरादिः—

सिन्दूरजीरद्वयरात्रियुग्ममनःशिलावह्निजगन्धकानाम्।
रसान्वितानां घृतयोजितानां पामा व्रजेद्दूरतरं त्रिलेपात् ॥ १ ॥

सिन्दूर, श्वेतजीरा, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, मनसिल, मिरच, गंधक, पारा सब द्रव्य समभाग लेकर घी से मिलाकर तीन बार लेप करें तो पामा नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

सैन्धवादिपामाहरः—**सैन्धवं चक्रमर्दं च सर्षपं पिप्पलीं तथा।**
सेचयेदारनालेन पामाकण्डूविनाशनम् ॥ २ ॥

सेंधा नमक, पनवाड़ के बीज, सरसों, पिप्पली इन सब को पीसकर कांजी से मिलाकर सींचें तो पामा तथा कण्डू का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ जीरकतैलम्—**जीरकस्य पलं पिष्ट्वा सिन्दूरार्धपलं तथा।**
कटुतैलं पचेदाभ्यां सद्यः पामाहरं परम्।

वृद्धवैद्योपदेशेन पाच्यं तैलं पलाष्टकम् ॥ १ ॥

जीरा एक पल लेकर पीसले, सिन्दूर आधा पल ले, इन दोनों को मिलाकर सरसों का तैल पकावे। इस से शीघ्र ही पामा का नाश होता है॥ वृद्ध वैद्यों के उपदेश से सरसों का तेल आठ पल पकाना चाहिये ॥ १ ॥

अथ बृहत्सिन्दूराद्यं तैलम्—सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडङ्गं रजनीद्वयम्।
प्रियंगु पद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठां खदिरं वचाम् ॥१॥

सिन्दूर, लाल चन्दन, जटामांसी, वायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगू, पद्माख, कूठ, मंजीठ, खैर, बच ॥ १ ॥

जात्यर्कत्रिवृतानिम्बकरञ्जं विषमेव च।
कृष्णचित्रकलोध्रं च प्रपुन्नाटं च संहरेत् ॥ २ ॥

चमेली के पत्ते, आक के पत्ते, त्रिवी, नीम के पत्ते, करंज के पत्ते, मीठा विष, पीपली, चीता, लोध, पनवाड़ ॥ २ ॥

श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया।
अभ्यङ्गेन प्रयोज्यं तद्वर्णकृत्कुष्ठनाशनम् ॥ ३ ॥

इन सब को पीसकर सरसों का तेल पकाले। इस तेल की मालिश करने से रंग निखरता है, कुष्ठ का नाश होता है ॥ ३॥

पामां विचर्चिकां कच्छूं विसर्पं विषमेव च।
रक्तपित्तोत्थितान्हन्ति रोगानेवंविधान्बहून् ॥
सिन्दूराद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ४ ॥

पामा, विचर्चिका, कच्छु, विसर्प, विष तथा रक्तपित्त से उत्पन्न हुए २ अनेक रोगों का नाश करता है। यह सिन्दूराद्य तैल अश्विनी कुमारों ने सब से पहले बनाया था ॥ ४ ॥

अथ बृहन्मरिचाद्यं तैलम्—मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥१॥

कालीमिरच, त्रिवी, दन्ती, आक का दूध, गोबर का रस, देवदार, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, कूठ, लाल चन्दन ॥ १ ॥

विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला।
चित्रको लाङ्गली चव्यं विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ २ ॥

इन्द्रायण, कनेर, हड़ताल, मनसिल, चीता, कलिहारी, चव्य, वायविडंग, पनवाड़ के बीज ॥ २ ॥

शिरीषकुटजौ निम्बः सप्तपर्णोऽमृता स्नुही।
शम्याको नक्तमालोऽब्दः खदिरः पिप्पली वचा ॥ ३ ॥

शिरीष की छाल, कुड़े की छाल, नीम की छाल, सतौने की छाल, गिलोय, थोहर, अमलतास के पत्ते या छाल, करंज, मोथा, खैर, पीपल, बच ॥ ३ ॥

ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्।
आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥ ४ ॥

मालकंगनी इन में स प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लें। विष दो पल लें। सबको पीसकर कल्क करले। कड़वा तेल एक आढक ले, गोमूत्र चार आढक लेवे ॥४॥

मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
पक्त्वा तैलं वरं ह्येतन्म्रक्षयेत्कोठकव्रणान् ॥ ५ ॥

सबको एकत्र करके मिट्टी के पात्र में वा लोहे के पात्र में डाल तेल पकावे। मन्द २ अग्नि से यह तेल पकाना चाहिये। तेल पक चुकने पर उतारकर छानकर शीशी में रखे। इस तेल की मालिश से कोठ, व्रण ॥ ५ ॥

पामाविचर्चिकाकण्डूदद्रुविस्फोटकानि च।
वलयः पलितं छाया नीला व्यङ्गं तथैव च ॥
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ ६ ॥

पामा, विचर्चिका, कण्डू, दद्रु, विस्फोटक ये सभी नष्ट हो जाते हैं। बलि, पलित, छाया, नील, व्यंग ये सभी रोग भी इस तेल की मालिश से नष्ट हो जाते हैं तथा शरीर सुकुमार बन जाता है ॥ ६ ॥

अथ माहेश्वरघृतम्—

कृत्वा कज्जलिकां रवौ कुनटिका द्वे जीरके द्वे निशे
गोदन्तोषणनाग एडगजिका बाकुश्चिका सर्पिषा।
लौहे लोहविमर्दितं दृढतरं माहेश्वराख्यं घृतं
कण्डूकुष्ठविचर्चिकादिशमनं पामाहारं लेपनात् ॥ १ ॥

पारे गंधक की कज्जली, आक का दूध मिलाकर करले। मनसिल, जीराश्वेत, कालाजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, गोदन्त, कालीमिरच, सीसाभस्म, पनवाड़ के बीज, बावची के बीज। इन सबको समभाग लेकर घी से मिलाकर लोहे के खरल में लोहे से खूब घोटे। इसे माहेश्वर घृत कहते हैं। इसके लेप से कण्डू, कुष्ठ, विचर्चिका आदि की शान्ति होती है तथा पामा का भी नाश होता है ॥ १ ॥

कण्डूहरो मांस्यादिगणः—मांसीचन्दनशम्याककरञ्जारिष्टसर्षपम्।
यष्टीकुटजादार्वीभिर्हन्ति कण्डूमसं गणः ॥ २ ॥

जटामांसी, चन्दन, अम्लतास के पत्ते, करंज के पत्ते, नीम के पत्ते, सरसों, मुलहठी, कुड़े की छाल, दारुहल्दी इन सबको पीसकर मलने से कण्डू का नाश होता है ॥ २ ॥

अवगुल्जादिः—अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम्।
मणिमन्थेन तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥
कण्डूं कच्छूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ३ ॥

सोमराजी के बीज, कसौंदी के बीज, पनवाड़ के बीज, हल्दी, सब एक २ भाग लेकर, नमक सबके समान लेकर, एकत्र करे, सबको दही के पानी और कांजी से पीसकर लेप करे तो कण्डू, कच्छु, इन दोनों को यह प्रयोग नष्ट कर देता है ॥३॥

सिंहास्यपल्लवलेपः—कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन संपिष्टम्।
दिवसत्रयेण नियतं शमयति कच्छूं विलेपनतः ॥४॥

कोमल बांसे के पत्ते और हल्दी इन दोनों को समभाग लेकर गौ के मूत्र से पीसकर लेप करें तों कच्छूरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

हरिद्रादिलेपः—हरिद्राकल्कसंयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम्।
पिबेन्नरः कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ५ ॥
गन्धपाषाणचूर्णं तु कटुतैलेन योजितम्।
लेपनादथ पानाद्वा कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ६ ॥

हल्दी के कल्क को गोमूत्र दो पल लेकर उसमें घोल दे और रोगी को पिला देवे। तो फिर यथेष्ट आहार विहार करने पर भी कच्छु तथा पामा का नाश होता है ॥ ६ ॥

अथ सिन्दूराद्यं तैलम्—सिन्दूरगुग्गुलुरसाञ्जनसिक्थतुत्थैः
कल्कीकृतैः कटुकतैलमिदं सुपक्वम्।
कच्छूं स्रवत्पिटिकिकामथ वाऽपि शुष्का-
मभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥ १ ॥

सिन्दूर, गूगल, रसौंत, मोम, नीलाथोथा इन सबको समभाग लेकर कल्क करे। इस कल्क से चौगना कड़वा तेल लेकर पकावे। इस तेल की मालिश से कच्छु, बहती हुई पिडिकायें, अथवा सूखी पिडिकायें सब नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथार्कतैलम्—अर्कपत्ररसे पक्वं रजनीकल्कसंयुक्तम्।
कटुतैलं हरेत्तूर्णं पामाकच्छूविचर्चिकाः ॥ १ ॥

हल्दी का कल्क एक भाग, सरसों का तेल ४ भाग और आक के पत्तों का स्वरस १६ भाग अथवा ४ भाग लेकर तैल पाक कर लेवे। इस तेल के मलने से शीघ्र ही पामा, कच्छु तथा विचर्चिका का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ चर्मदललेपः—राजिकागुडयुक्तेन सैन्धवेन प्रलेपितम्।
विजलं चर्मणा बद्धं नाशं चर्मदलं व्रजेत् ॥ २ ॥

राई, गुड, नमक इन सबको पीसकर लेप करे निर्जल या सूखे, चमड़े में जड़ पकड़े हुए भी चर्मदल का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ रसाः।

तत्राऽऽदौ विजयेश्वरो रसः—

शुद्धतालं मृतं सूतं तुल्यं ताभ्यां चतुर्गुणाम्।

भर्जित्वा विजया योज्या सर्वतुल्यं गुडं क्षिपेत् ॥ १ ॥

शुद्ध हड़ताल एक भाग, शुद्ध पारा एक भाग ले। भुनी हुई भांग ८ भाग ले गुड १० भाग सबको एकत्र घोटकर मिलावें ॥ १ ॥

श्वेतकुष्ठहरं निष्कं रसोऽयं विजयेश्वरः।
दार्वीखदिरनिम्बानां क्वाथं तदनु पाययेत् ॥ २ ॥

यह विजयेश्वररस एक निष्क भर प्रतिदिन खाकर ऊपर से दारुहल्दी, खैर तथा नीम की छाल इनका क्वाथ पीवे तो श्वित्र या श्वेत कुष्ठ का इससे नाश होताहै २॥

इत्यष्टादशकुष्ठचिकित्सा।

अथ श्वित्राण्याह—श्वित्रिणो हृतदोषस्य हृतरक्तस्य वा सकृत्।
खदिराम्बुयवान्नानां तृप्तस्य मलयूरसः॥
सगुडः शस्यते पाने यवागूमण्डभोजिनः ॥ १ ॥

श्वित्ररोगी के दोषों को निकालने के पश्चात् एक बार रक्त को निकाले। फिर खैर के जल से पकाये हुए जौ के भोजन को खिलाकर। अथवा जौ के बने भोजन और पीने को खैर का पानी मिलाकर मलयू का स्वरस अर्थात् काकोदुम्बरिका (जिसे जंगली अंजीर भी कहतें हैं जो पहाड़ में बहुत होता है तथा जिसे पहाड़ी लोग फिगु वोलते हैं) का स्वरस गुड सहित पिलाना उत्तम है। यवागू तथा मण्ड का भोजन करावे ॥ १ ॥

खदिरादिकषायः श्वित्रहरः—

खदिरामलककषायं बाकुचिबीजान्वितं पिबेन्नित्यम्।
शङ्खेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं हन्तीह तच्चित्रम् ॥ २ ॥

खैर तथा आमले का क्वाथ बावची के बीजों के साथ नित्य पीवे तो शंख, चांद, कुन्द के फूल के समान भी श्वेत रंग का कुष्ठ हो तो भी इस क्वाथ से नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

शिलादिलेपः-शिलापामार्गभसितलेपाच्छ्वित्रं विनाशयेत्।
किं पुनर्यदि युज्येत धनंजयजटात्वचा ॥ ३ ॥

मनसिल, अपामार्ग की भस्म इन दोनों को समभाग पीसकर लेप करे तो श्वित्र कुष्ठ का नाश होजाता है। परन्तु यदि अर्जुन की जड़ की छाल के साथ मिलाकर मनसिल अपामार्ग की भस्म का लेप किया जाये तब तो निश्चय ही श्वित्र नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥

त्रिफलादिः श्वित्रहरः-त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहचूर्णं रसाञ्जनम्।
श्वेतगुञ्जा दन्तिदन्तभस्म तुत्थं च मार्कवम् ॥४॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, नील के पत्ते, लोहे का चूर्ण, रसौंत, श्वेत रत्तियां, हाथी दांत की भस्म, नीलाथोथा, भांगरा ॥ ४ ॥

मेषीदुग्धेन संपिष्य स्थापयेल्लोहभाजने।
दिनमेकं ततो लिम्पेन्मुहुः श्वित्रेष्वनुक्रमात्॥
श्वित्राण्यनेन लेपेन त्रिजवर्णं त्यजन्ति वै॥ ५॥

इन सब को भेड़ के दूध से पीसकर एक दिन लोहे के पात्र में रखो फिर श्वित्रों पर बार २ क्रम से लेप करे। इस से श्वित्रों का श्वेत रंग नष्ट होकर त्वचा का असली रंग होजाता है॥ ५॥

अयोरजआदिलेपः-

सायोरजःकृष्णतिलाञ्जनानि सावल्गुजान्यामलकानि दग्ध्वा।
पिष्टानि भृङ्गस्य सकृद्रसेन हन्यात्किलासं परिघृष्टलेपात्॥ ६॥

लोहे का चूर्ण, कालेतिल, रसौंत, सोमराजी के बीज, तथा आंवलों को जलाकर इनका कोयला। इन सबको एकत्र पीसकर भांगरे के स्वरस से मिलाकर किलास कुष्ठ पर घिसकर लेप करें तो किलास का नाश होता है॥ ६॥

अथ विषतैलम्-नक्तमालो हरिद्रे द्वे अर्कं तगरमेव च।
करवीरवचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम्॥ १॥

करंज के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, आक के पत्ते, तगर, कनेर की जड़, बच, कूठ, अपराजिता लालचन्दन॥ १॥

मालती सप्तपर्णं च मञ्जिष्ठा सिन्धुवारिका।
एषामर्धपलान्भागान्विषस्य द्विपलं भवेत्॥ २॥

मालती के पत्ते, सतौने की छाल, मंजीठ, संभालु, इन में से प्रत्येक द्रव्य आधा २ पल लेवे, मीठा विष दो पल लेवे॥ २॥

चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः॥ ३॥

सबका कल्क करे। सरसों का तेल एक प्रस्थ ले गौ का मूत्र ४ प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र करके तेल पकावे। इस तेल के लगाने से श्वित्र, विस्फोटक, किटिभ, कीट, लूता, विचर्चिका॥ ३॥

कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः।
विषतैलमिदं नाम सर्वव्रणविशोधनम्॥ ४॥

कण्डू, कच्छुके विकार तथा विष से दूषित हुए २ व्रण, ये सब नष्ट होते हैं तथा सभी व्रणों का शोधन होता है॥ ४॥

अथ ज्योतिष्मतीतैलम्-मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्रुतम्।
सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गाच्छ्वित्रनाशनम्॥ १॥

मालकंगनी के तेल को अपामार्ग के क्षारवाले चौगुने जल से सात बार पकालें। तो इस तेल के लगाने से श्वित्र नष्ट हो जाता है॥ १॥

अथ शशिलेखावटी—

शुद्धसूतं समं गन्धं तुल्यं च मृतताम्रकम्।
मर्दितं बाकुचीकाथैर्दिनैकं वटकीकृतम् ॥ १ ॥
निष्कमात्रां सदा खादेच्छ्वित्रघ्नीं शशिलेखिकाम्।
बाकुचीतैलकर्षैकं सक्षौद्रमनुपाययेत् ॥ २ ॥

एक भाग शुद्ध पारा एक भाग शुद्ध गंधक दोनों की कज्जली करे। एक भाग ताम्रभस्म लें। सबको खरल करें। फिर बावची के क्वाथ से सबको एक दिन मर्दन करें इसकी एक निष्क भरकी गोली बनालें। इसकी एक गोली नित्य खाने से (मात्रा आधी रत्ती सेवन करें) श्वित्रका नाश होता है। इस शशिलेखावटी को खिलाकर बावची का तेल एक कर्ष और शहद मिलाकर अवश्य पिलाना चाहिये॥

अथ पथ्यापथ्यम्—अन्नपानं हितं कुष्ठे न त्वम्ललवणोषणम्।
दधिदुग्धगुडानूपतिलमाषांस्त्यजेत्तराम् ॥ १ ॥

साधारण अन्नपान कुष्ठ में हितकारी है। परन्तु अम्ल, लवण, कालीमिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ दही, दूध, गुड, आनूपमांस, तिल तथा उड़द कभी न खावें ॥ १ ॥ इति कुष्ठ श्वित्र चिकित्सा।।

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्वरत्नगर्भानाम्नीटीकायां कुष्ठश्वित्रचिकित्सा समाप्ता॥

अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम्।

आदौ तस्य दोषत्रयजन्यत्वमाह—

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ।
पित्तेन सह संभूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥

शीत तथा वायु के लगने से प्रदुष्ट हुए २ कफ और वायु, पित्त के साथ मिलकर वाहर तथा अन्दर को फैलते हैं ॥ १ ॥

अथ तस्य पूर्वरूपमाह—पिपासारुचिहृल्लासदाहसादाङ्गगौरवम्।
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ २ ॥

प्यास लगती है, अरुचि होती है, हृल्लास अर्थात् वमन की इच्छा होती है, दाह होता है, अङ्गसाद होता है तथा अंग गौरव होता है, आंखें लाल हो जाती हैं। यह उनका पूर्वरूप है ॥ २ ॥

लक्षणमाह—वरटीदंष्ट्रसंस्थानः शोफः संजायते बहिः।
सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥

भिड़ों के काटे हुए के समान शरीर की त्वचा पर सोजा हो जाता है। उस

सूजन में खुजली तथा शूल बहुत होता है, वमन, ज्वर तथा विदाह भी होता है ३।

उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे।
वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः॥ ४॥

उसको ही उदर्द कहते हैं। कोई २ उसे शीतपित्त कहते हैं। वात अधिक हो तो शीत पित्त कहाता है कफाधिक हो तो उदर्द कहाता है॥ ४॥

अथोदर्दस्य धर्मान्तरमाह—**सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः।**
शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः॥५॥

उठे हुए, रंगदार, खुजली वाले, मण्डलों से युक्त, शिशिर में उत्पन्न होने वाला कफजरोग उदर्द कहाता है॥ ५॥

अथ त्वग्दोषसामान्यादत्रैव कोठःप्रोच्यते—

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः।
आरनालैश्च शुक्तैश्च आसुरीलवणेन च॥ १॥

उचित विधि से वमन न होने पर बढ़े हुए पित्त तथा कफ, इनसे तथा अन्न की वमन को रोक लेने से, तथा कांजी के सेवन करने से, सिरका अधिक खाने से, आसुरी लवण अर्थात् विड्लवण के सेवन करने से अथवा राई और लवण के अधिक सेवन करने से॥ १॥

वर्षाकाले प्रकुप्येत्स तथा दुष्टैश्च कारणैः।
मण्डलानि सकंडूनि रागवन्ति बहूनि च॥ २॥

तथा अन्य दुष्ट कारणों से वर्षाकाल में वह प्रकुपित होता है। इससे गोल कमल आदि के समान खुजली वाले तथा लाल रंग वाले बहुत चकत्ते से पड़ जाते हैं उन्हें कोठ कहते हैं॥ २॥

अथ उत्कोठमाह—**उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते॥३॥ इति॥**

कोठ में कोई अनुबन्ध नहीं होता है अर्थात् वह क्षण में उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है (जैसे "क्षणिकोत्पादविनाशः कोठ इति निगद्यते तज्ज्ञैः" कहा है) परन्तु उत्कोठ में अनुबन्ध होता है। अर्थात् कोठ के बार २ होने से ही अनुबन्ध जाना जाता है। इस बार २ होने वाले कोठ को उत्कोठ कहते हैं॥ ३॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम्।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठानां चिकित्सा।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन स्वेदश्चोष्णेन वारिणा।
तथाऽऽशु वमनं कार्यं पटोलारिष्टवासकैः॥ १॥

कड़वे सरसों के तेल से शरीर पर मालिश करे, गरम जल से स्नान करे तथा पटोलपत्र नीम के पत्ते और बांस के पत्तों को मिलाकर क्वाथ करके पिलावे और इसके द्वारा शीघ्र ही वमन करा देवे॥ १॥

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रशस्यते।
सर्पिः पीत्वा महातिक्तं कार्यं शोणितमोक्षणम्॥
क्षारसिन्धुतैलैश्च गात्राभ्यङ्गं प्रकल्पयेत्॥ २॥

अथवा हरड़, बहेड़ा, आंवला, गूगल, पिप्पली इन सबके क्वाथ से विरेचन करावे। अथवा महातिक्तघृत जो कुष्ठ चिकित्सा में लिखा जा चुका है उसे पिलाकर खून निकलवा देवे। तथा क्षार, सेंधानमक और कड़वा तेल मिलाकर मालिश करे॥ २॥

अथ गांभारिकाफलादि—गम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः।
क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खादितं पथ्यसेविना॥३॥

गंभारी का पका हुआ फल स्विन्न कर के अर्थात् उबाल कर दूध के साथ खावें और पथ्य सेवन करें तो शीतपित्त का नाश होता है॥ ३॥

अथ यष्ट्यादियोगः—यष्टी मधूकपुष्पं च रास्नं चन्दनद्वयम्।
निर्गुण्डी सकणाक्वाथं शीतपित्तहरं पिबेत्॥ ४॥

मुलठ्ठी, महुए के फूल, रास्ना, लाल चन्दन, श्वेत चन्दन, निर्गुण्डी तथा पीपली इन सब का क्वाथ पीने से शीतपित्त नाश होता है॥ ४॥

अथ अमृतादिः—अमृतारजनीनिम्बधन्वयासैः पृथक्शृतम्।
प्राणिनां प्राणदं चैतच्छीतपित्ते समाचरेत्॥ ५॥

गिलोय, हल्दी, नीम, धमासा इन में से किसी एक का क्वाथ पिलावे। यह प्राणियों के लिये प्राणदायक है तथा शीतपित्त का नाश करनेवाला है॥५॥

अथ सगुडदीप्यकयोगः सर्वदेहजेउदर्दे—

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः।
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः॥ ६॥

गुड में अजवायन मिलाकर खावे और पथ्य भोजन करे तो सर्वशरीर में हुआ २ उदर्द एक सप्ताह में नष्ट होजाता है॥ ६॥

अथ यवान्यादि—यवानीं पाययेद्वाऽपि सव्योषां क्षीरसंयुताम्।
पिप्पलीवर्धमानं वा लशुनं वा प्रयोजयेत्॥ ७॥

अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल इन का चूर्ण दूध से पीवे। अथवा पिप्पली वर्धमान सेवन करे अथवा लहसुन का सेवन करे॥ ७॥

अथ शीतपित्तोदर्दकोठे अग्निमन्थयोगः—

अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतं च सर्पिषा।
शीतपित्तोदर्दकोठान्सप्ताहादेव नाशयेत्॥ ८॥

अरणी की जड़ को पीसकर घी के साथ मिलाकर पिलावें तो शीतपित्त, उदर्द, कोठ इन सब को एक सप्ताह में ही यह योग नाश कर देता है॥ ८॥

अथ निम्बपत्रयोगः—

निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राण्यथ वा प्रयुञ्ज्यात् ।
विस्फोटकोठक्षतशीतपित्तं कण्डूवस्रपित्तं सकलं निहन्यात् ॥९॥

नीम के पत्तों को घी से सदा खावे । अथवा नीम के पत्ते और आंवलों का चूर्ण घी से मिलाकर खावे तो बिस्फोट, कोठ, क्षत, शीतपित्त, कण्डु तथा सब प्रकार के रक्तपित्त को यह योग नाश करता है ॥ ९ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—

कुष्ठं हरिद्रे सुरसं पटोलं निम्बाश्वगन्धे सुरदारु शिग्रुः ।
ससर्षपं तुम्बरुधान्यकं त्वक्काण्डावचूर्णानि समानि कुर्यात् ॥

कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, तुलसी, पटोलपत्र, नीम, असगन्ध, देवदारु, सुहांजना, सरसों, तेजबल के फल, धनियां इन में से किसी की त्वचा किसी का कांडादि लेकर, समभाग एकत्र करले ॥ १० ॥

तैस्तक्रपिष्टैः प्रथमं शरीरं तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत् ।
तथा सकण्डूः पिटिका सकोठा कुष्ठानि शोफश्च शमं व्रजन्ति ॥११॥

फिर इन सब को तक्र से पीसले । पहले शरीर पर सरसों का तेल मले । फिर इस तक्रयुक्त उबटने को मले । इस से खुजली, पिड़िका, कोठ, कुष्ठ तथा शोथ शान्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥

अथ सैन्धवादियोगः—ससैन्धवेन कुष्ठेन सर्पिषा लेपमाचरेत् ।
सुरसास्वरसैर्वाऽथ लेपयेत्परमौषधम् ॥ १२ ॥

सेंधानमक, कूठ दोनों को पीसकर घी से मिलाकर लेप करे । अथवा तुलसी के स्वरस से शरीर पर लेपन करदे । इस से शीतपित्त, उदर्द तथा कोठों की शान्ति होती है यह सिद्धयोग है ॥ १२ ॥

अथ सिद्धार्थादियोगः—सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैः सह ।
कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ॥ १३ ॥

श्वेत सरसों, हल्दी, कूठ, पनवाड़ और तिल इन के चूर्ण को कड़वे तेल से मलें तो सभी शीतपित्तोदर्द तथा कोठ शान्त होजाते हैं ॥ १३ ॥

अथ चिकित्साविधिः—शीतपित्त उदर्दे च तथा कोठाभिदे गदे ।
कृमिदद्रुहरः कार्यः शीतपित्तेऽखिलः क्रमः ॥१४॥

शीतपित्त, उदर्द, कोठ इन में सभी चिकित्साक्रम क्रिमिरोग तथा दद्रुरोग के समान ही करना चाहिये ॥ १४ ॥

स्निग्धस्विन्नस्य संशुद्धिमादौ कोष्ठे समाचरेत् ।
ततः कुष्ठहरः सर्वो विधेयो विधिरादरात् ॥ १५ ॥

स्नेहन तथा स्वेदन करने के पश्चात् कोष्ठ की पहले शुद्धि करनी चाहिये ।

फिर सब विधि कुष्ट नाश करनेवाली करनी चाहिये ॥ १५ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्—

शालिमुद्गकुलत्थांश्च कारवेल्लमुपोदिकाम् ।
वेत्राग्रं तप्तनीरं च पित्तश्लेष्महराणि च ॥ १ ॥

शालि धान्य, मूंग, कुलथ, करेला, पोईशाक, बेत का अगला भाग, गरम पानी तथा पित्त कफनाशक पदार्थ सेवन करने चाहियें ॥ १ ॥

शीतपित्तोदर्दकोठरोगिणां पथ्यमीरितम् ।
स्नानमातपमम्लं च गुर्वन्नं च विवर्जयेत् ॥ २ ॥

ये सभी पदार्थ शीतपित्त, उदर्द तथा कोठरोगियों को सेवन करने चाहियें ॥ परन्तु रोगी स्नान न करे, धूप में न बैठे, अम्लरस सेवन न करे तथा गुरु अन्न सेवन नहीं करे । ये सभी पदार्थ अपथ्य हैं ॥ २ ॥ इति शीतपित्तादिचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद् दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां शीतपित्तोदर्दकोठरोगाणांचिकित्सा समाप्ता ॥

अथाम्लपित्तनिदानम् ।

अथ तस्यसम्प्राप्तिमाह—

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

विरुद्ध अर्थात् दूध मछली आदि विरुद्ध भोजनों के सेवन से, दुष्ट हुए २ अन्न के सेवन से, अम्लसेवन से, विदाहि पदार्थों के सेवन से, पित्त को कुपित करने वाले पान और अन्नों से अर्थात् तक्रसुरादि पीने से विदग्ध हुआ २ तथा अपने कारणों से पूर्व से ही कुपित हुआ २ पित्त अम्लपित्तरोग को करता है ॥ १ ॥

अथ तस्य लिङ्गमाह—**अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ।**
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

भोजन के न पचने से, क्लांति से अर्थात् विना श्रम लिये ही थकान होने से, वमन की इच्छा होने से, कड़वा या खट्टा २ डकार आने से अर्थात् डकार आने के समय ही कड़वे रस या खट्टे रस से मुंह को भर जाने से, गुरुता होने से, हृदय तथा कण्ठ में दाह होने से और अरुचि होने से अम्लपित्तरोग जाना जाता है ॥ २ ॥

अथ तस्य कदाचिदधोगतिमाह—

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।
हृल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥

वह अम्लपित्त कभी तो प्यास, दाह, मूर्च्छा, भ्रम तथा मोह अर्थात् विपरीत ज्ञान को कराता हुआ नीचे को जाता है। इस के हरे, पीले, काले, लाल आदि अनेक रंग तथा दुर्गन्ध आदि होती है॥ तथा हृल्लास अर्थात् वमन की इच्छा, कोठ, अग्नि की मन्दता, हर्ष, स्वेद तथा अंगों को यह पीला कर देता है॥३॥

अथ कदाचिदूर्ध्वगतिमाह—

वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुयातं विविधं रसेन॥४॥

हरा, पीला, नीला तथा काला, कुछ लाल तथा गाढा लाल, अत्यन्त खट्टा, मांस के धोवन के समान, अति पिच्छिल तथा निर्मल, लवण, कटु, तिक्त रस से युक्त वमन होता है तथा श्लेष्म से युक्त होता है॥ ४॥

आहारस्यावस्थामाह-

भुक्ते विदग्धेऽप्यथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं वा॥ ५॥

खाये हुए भोजन के विदग्ध हो जाने पर अथवा कभी भोजन न खाने पर भी कड़वी तथा खट्टी कै होती है। तथा कड़वा तथा खट्टा डकार आता है और कण्ठ हृदय तथा कुक्षि में दाह होता है तथा सिर में पीड़ा होती है॥ ५॥

अथ कफपित्तजन्यमाह-

करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम्।
जनयति कण्डूमण्डलापिटिकाचितगात्ररोगचयम्॥ ६॥

कफयुक्त पित्त हाथ तथा पैर में दाह तथा उष्णता करता है, महती अरुचि करता है, ज्वर करता है। कण्डू, मण्डल, पिड़िका से युक्त गात्रों को करता है, तथा रोगों के समूह को करता है॥ ६॥

अथ साध्यासाध्यत्वमाह-

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कष्टसाध्यः स कस्यचित्॥ ७॥

यह अम्लपित्त रोग नया हो तो यत्न से साध्य होता है। चिरकालिक हो तो याप्य होता है तथा किसी २ हिताहार विहार वाले रोगी का पुराना अम्लपित्त भी कष्ट से साध्य होजाता है॥ ७॥

अथ तस्मिन्ननिलकफसंसर्गमाह—

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्।
दोषलिङ्गेन मतिमान्भिषङ्मोहकरं हि तत्॥ ८॥

यह अम्लपित्त वातयुक्त होता है, वात कफ युक्त होता है तथा कफ युक्त होता है। वातादि दोषों के लक्षणों से उसे जान लेना चाहिये। वैद्यों को इसमें मोह

होजाता है क्योंकि वमन या अतीसार होने से अन्य रोगों का भी उन्हें भ्रम होजाता है ८

कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि।
तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षा अनिलयुते ॥ ९ ॥

वात युक्त अम्लपित्त में कम्प होता है, प्रलाप होता है, मूर्च्छा होती है, चिमचिमाहट होती है, गात्र थक जाते हैं, शूल होता है, अन्धकार दिखाई देता है, विभ्रम होता है, प्रमोह होता है तथा हर्ष होता है ॥ ९ ॥

अथ कफानुगतमाह—कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः।
दहनबलसादकण्डूनिद्राचिन्हं कफानुगते ॥ १० ॥

कफयुक्त, अम्लपित्त रोग में रोगी कफ थूकता है, गुरुता होती है, जड़ता होती है, अरुचि होती है, शीत लगता है, अङ्गसाद होता है, वमन होती है तथा मुंह कफ से लिपा होता है। अग्निमन्द होती है तथा बल कम हो जाता है, कण्डू होती है तथा निद्रा होती है ॥ १० ॥

अथ वातश्लेष्मानुगतमाह—

उभयमिदमेव चिन्हं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले।
कट्वम्ललवणरसासेविते कोपं भजत्येव।
तिक्ताम्लकटुकोद्गारवामिहृत्कण्ठदाहकृत् ॥ ११ ॥

वात कफ युक्त अम्लपित्तरोग मे पूर्वलिखित वात के तथा कफ के दोनों के लक्षण होते हैं। कटु, अम्ल तथा लवण रस के सेवन करने से यह कुपित हो जाता है। इसमें कड़वा, अम्ल तथा कटु, डकार तथा वमन होता है हृदय तथा कण्ठ में दाह होता है ॥ ११ ॥

अथ कफपित्तमाह—भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा।
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

कफपित्त युक्त जब अम्लपित्त रोग होता है तब भ्रम होता है, मूर्च्छा होती है, अरुचि होती है, छर्दि होती है, आलस्य होता है, सिर में पीड़ा होती है, थूक आता है तथा मुख का स्वाद मीठा रहता है।१२॥ इत्यम्लपित्तस्य निदानम् ॥

अथाम्लपित्तस्य चिकित्सा।

सामान्यचिकित्साक्रमः—अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवारिणा।
कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तं ततो भिषक्।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुना त्रिफलाद्रवैः ॥ १ ॥

अम्लपित्तरोग में पहले पटोलपत्र तथा नीम को उबालकर इनके क्वाथ में मैनफल का चूर्ण, शहद तथा सेंधानमक मिलाकर पिलावे। इससे वमन होगी। फिर विरेचन देवे। त्रिफला के क्वाथ में त्रिवी का चूर्ण और शहद मिलाकर पिलावे ॥ १ ॥

कृतवमनविरेकस्यापि दोषोपशान्ति-
र्भवति न यदि कार्यो रक्तमोक्षश्च युक्त्या।
कृतशिशिरविलेपस्याम्लपित्तघ्नभक्ष्यौ-
दनसमुदिततृप्तेर्वातरक्षा च कार्या ॥ २ ॥

इस प्रकार से वमन विरेचन करा चुकने के बाद भी यदि दोषों की शान्ति न हो तो युक्तिपूर्वक रक्त निकलवा देना चाहिये। तथा शिशिर पदार्थों का लेप करना चाहिये। अम्ल पित्तनाशक भक्ष्यपदार्थ तथा चावलों से तृप्ति करानी चाहिये तथा वायु से रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ लक्ष्मणोत्सवात—

ज्वलन्तमिव चाऽऽत्मानं मन्यते योऽम्लपित्तवान्।
तस्य संशोधनं पूर्वं कार्यं पश्चाच्च भेषजम् ॥ १ ॥

जो अम्लपित्त का रोगी अपने आपको जलता हुआ सा मानता हो उसका पहले संशोधन कराना चाहिये फिर औषध देनी चाहिये ॥ १ ॥

तत्र चिकित्साक्रमः—पूर्वं तु वमनं कार्यं पश्चान्मृदु विरेचनम्।
कृतवान्तिविरेकस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ २ ॥

पहले वमन करावे फिर मृदु विरेचन देवे। उसके बाद वमन विरेचन के पीछे स्नेह न करे। अच्छी प्रकार से स्निग्ध हो जाने के बाद अनुवासन करे ॥ २ ॥

आस्थापनं चिरोत्थेऽस्मिन्देयं दोषाद्यपेक्षया।
दोषसंसर्गजे कार्यमौषधाहारकल्पनम् ॥ ३ ॥

यदि अम्लपित्त पुराना हो गया हो तो इसमें आस्थापन करे। दोषों के संसर्गज होने पर दोषों आदि की अपेक्षा करके इसमें औषध तथा आहार देना चाहिये ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वदेहस्थिते वान्त्याऽप्यधःस्थं रेचनैर्हरेत्।
पाचनं तिक्तबहलं पथ्यं च परिकल्पयेत् ॥ ४ ॥

ऊर्ध्व देहस्थ दोष हो तो वमन से निकाले, अधःस्थित दोष हो तो विरेचन से निकाले। तिक्त अर्थात् कड़वे रस वाले द्रव्यों की अधिकता वाला पाचन तथा पथ्य देवे ॥ ४ ॥

विकारान्यवगोधूमकृतांस्तीक्ष्णविवर्जितान्।
भक्षयेल्लाजसक्तूंश्च सिताक्षौद्रयुतान्पिबेत् ॥ ५ ॥

जौ, गेहूं के बने हुए पदार्थ जो तीक्ष्ण अर्थात् मिरचादि द्रव्योंसे युक्त न हों वे खाने को देवें। तथा लाजा के बने हुए सत्तुओं को खांड तथा शहद मिलाकर पीने को देवें ५

अथ वृन्दात्—अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः।
गुडकूष्माण्डकं चैव तथा खण्डामलक्यपि ॥ १ ॥

अम्लपित्त रोग में कफपित्तनाशक क्रिया करे। गुड कूष्माण्डक तथा खण्डामलकी का सेवन करावे ॥ १ ॥

गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिरत्र प्रयोजयेत्।
सवाते सविबन्धेऽस्मिन्हिता कंसहरीतकी ॥ २ ॥

गुड, दूध तथा पीपल से पकाया हुआ घी इसमें प्रयुक्त करे। यदि वात भी मिली हुई हो तथा विबन्ध भी हो तो कंसहरीतकी का सेवन करावे ॥ २ ॥

अथ क्वाथाः।

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत्।
नाशयेदम्लपित्तं च ह्यरुचिं च वमिं तथा ॥ १ ॥

जौ, पीपल तथा पटोलपत्र इनका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे तो अम्लपित्त, अरुचि तथा वमन का नाश होता है ॥ १ ॥

निस्तुषयवादिक्वाथः—

निस्तुषयववृषधात्रीक्वाथं त्रिसुगन्धिमधुयुतं पीत्वा।
अपहरति चाम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूषेण ॥ २ ॥

छिलके रहित जौ, बांसा, आंवला इनके क्वाथ में दारचीनी इलायची तथा तेजपात डालकर शहद मिलाकर मूंग के यूष से पिलावें तो अम्लपित्त रोग का नाश होता है ॥ २ ॥

गुडूच्यादिक्वाथः—**गुडूचीचित्रकारिष्टपटोलैः क्वथितं पिबेत्।**
क्षौद्रयुक्तं निहन्त्येतच्छर्दिं पित्ताम्लसंभवाम् ॥ ३ ॥

गिलोय, चीता, नीम, पटोलपत्र इनका क्वाथ करके शहद मिलाकर पीवे तो अम्लपित्त की वमन नष्ट होती है ॥ ३ ॥

भूनिम्बादिक्वाथः—

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलवासामृतापर्पटमार्कवाणाम्।
क्वाथो हरेत्क्षौद्रयुतोऽम्लपित्तं चित्तं यथा वारवधूकटाक्षः ॥४॥

चिरायता, नीम, हरड़, बहेड़ा, आंवला, पटोलपत्र, बांसा, गिलोय, पित्तपापड़ा और भांगरा इन सबका क्वाथ शहद मिलाकर पिलावें तो अम्लपित्त रोग ऐसे नष्ट होता है जैसे वेश्याओं के कटाक्ष से चित्त ॥ ४ ॥

पटोलादिक्वाथः—**पटोलत्रिफलानिम्बक्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत्।**
अम्लपित्तं हरेच्छर्दिदाहशूलकफान्वितम् ॥ ५ ॥

पटोलपत्र, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम इन सब का क्वाथ शहद मिलाकर पीवे तो अम्लपित्त, छर्दि, दाह, शूल तथा कफ का नाश होता है ॥५॥

कण्टकार्यादिक्वाथः—**कण्टकार्यमृतावासाकषायं मधुसंयुतम्।**
अम्लपित्तं जयेत्पीत्वा श्वासं कासं वमिं ज्वरम् ६॥

कटेली, गिलोय, बांसा इन का क्वाथ शहद से मिलाकर पीवे तो अम्लपित्त श्वास, कास, वमन तथा ज्वर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

चित्रकादिक्वाथः—चित्रकैरण्डमूलानि यवाश्च सयवासकाः।
जलेन क्वथितं पीतं कोष्ठदाहाम्लपित्तजित् ॥ ७ ॥

चीते की जड़, एरण्ड की जड़, जौ, जवासा इन सब का क्वाथ कर के पिलावे तो कोष्ठ का दाह तथा अम्लपित्त का नाश होता है ॥ ७ ॥

अथैलादिचूर्णम्—

एलातुगाचोचशिवाभयानां सग्रन्थिपाटीरदलाल्लकानाम्।
चूर्णं सितातुल्यमपाकरोति प्रौढाम्लपित्तं दिवसास्यभुक्तम् ॥१॥

इलायची, वंशलोचन, दारचीनी, आंवला (शिवा-हरड़ वा आंवला) हरड़, पिप्पलामूल, चंदन, तेजपात, अकरकरा, इन सब का चूर्ण करे, खांड सब के बराबर मिलावे। सब को एकत्र कर के उचित मात्रा में प्रातःकाल खावे तो अम्लपित्त रोग पुराना हो तो भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ त्रिकटुकाद्यं चूर्णं लेहश्च—

त्रिकटुकसकण्टकारीपर्पटवारिकुटजबीजानाम्।
सौराष्ट्रिकापटोलीत्रायन्तीदारुमूर्वाणाम् ॥ १ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, कटेली, पित्तपापड़ा, सुगंधबाला, इन्द्रजौ, सोरठमिट्टी पटोलपत्र, त्रायमाण, देवदारु, मूर्वामूल ॥ १ ॥

तिक्तामृणालमलयजकलिङ्गैकलाकिराततिक्तानाम्।
सवचातिविषाकेसरदीप्यकमधुशिग्रुबीजानाम् ॥ २ ॥

कुटकी, मृणाल अर्थात् कमल की नाल, चन्दन, कुड़े की छाल, इलायची, चिरायता, बच, अतीस, नागकेसर, अजवायन, मीठे सुहांजने के बीज ॥२॥

चूर्णं पटघृष्टमिदं पीतं शिशिरेण वारिणा प्रातः।
क्षौद्रेण चाथ लीढं प्रायेणाधोगतं हन्ति।
अतिविषममलपित्तं पथ्यभुजो वासरैः कैश्चित् ॥ ३ ॥

इन सब को समभाग ले चूर्ण कर के कपड़े में से छान लेवे। इसे प्रातःकाल शीतल जल से पिलावें अथवा शहद से मिलाकर चटावें तो इस प्रयोग से अधोगत अम्लपित्त चाहे कितने ही अधिक विष से युक्त हो तो भी इस का कुछ ही दिनों में नाश होजाता है ॥ ३ ॥

अथ द्राक्षादिगुटिका—

द्राक्षापथ्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां सितां क्षिपेत्।
संकुट्याक्षद्वयमितां तत्पिण्डीं कारयेद्भिषक् ॥ १ ॥

दाख, हरड़ दोनों समभाग लेलें, दोनों के समान खांड डालें। कूटकर

दो २ अन्न की गोली बना लेवे ॥ १ ॥

तां खादेदम्लपित्तार्तो हृत्कण्ठदहनापहाम्।
तृण्मूर्च्छाभ्रममन्दाग्निनाशिनीमामवातहाम् ॥ २ ॥

उसे खावें तो अम्लपित्त, हृदय तथा कण्ठकी दाह नष्ट होती है। और प्यास मूर्छा, भ्रम, मन्दाग्नि तथा आमवात रोग नष्ट होते हैं ॥२॥

अथाभयाद्यवलेहः—अभया पिप्पली द्राक्षा सिता धन्वयवासकम्।
मधुना कण्ठहृद्दाहमूर्च्छाश्लेष्माम्लपित्तनुत् ॥ १ ॥

हरड़, पीपल, दाख, खांड, धमासा इन का चूर्ण मधु से मिलाकर खावें तो कण्ठ तथा हृदय का दाह, मूर्च्छा तथा श्लेष्मासहित अम्लपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ खण्डपिप्पल्यवलेहो योगरत्नावल्याः—

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम्।
पलषोडशकं खण्डाच्छतावर्याः पलाष्टकम् ॥ १ ॥

पिप्पली का चूर्ण एक कुड़व ले, घी दो कुडव ले। खांड १६ पल ले, शतावर का चूर्ण ८ पल ले ॥ १ ॥

शिवायाः स्वरसस्यापि पलषोडशकं मतम्।
क्षीरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽत्र निक्षिपेत् ॥ २ ॥
त्रिजातकाभयाजाजीधान्यमुस्तशिवातुगाः।
एतेषां कार्षिकं चूर्णं कर्षार्धं कृष्णजीरकम् ॥ ३ ॥

(शिवा—हल्दी, हरड़, आंवला, नीलीदूर्वा, श्यामा, भूम्यामलकी) आंवलों का स्वरस १६ पल लेवे। दूध दो प्रस्थ लेवे। सब को एकत्र पाकर अवलेह बनावे। इस में दारचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, जीरा श्वेत, धनियां, मोथा, आंवला, वंशलोचन इन में से प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष ले, कालेजीरे का चूर्ण आधा कर्ष लें ॥ ३ ॥

नागरं नागकं जातीफलं समरिचं हिमम्।
दत्वा पलत्रयं क्षौद्रं स्निग्धभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ४ ॥

सोंठ, नागकेसर, जायफल, मिरच, कपूर इन में से प्रत्येक का चूर्ण आधा २ कर्ष लेकर सब को एकत्र मिलाकर अवलेह बनावे। और शहद ३ पल मिलावें सब को चिकने पात्र में रखे ॥ ४ ॥

प्रातर्यथाबलं लिह्यादम्लपित्तप्रशान्तये।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम्।
शूलहृद्रोगशमनं हृद्यं चेदं रसायनम् ॥ ५ ॥

इसे प्रातःकाल बलानुसार खावे तो अम्लपित्त की शान्ति होती है। हृल्लास

अर्थात् वमनेच्छा, अरुचि, वमन, पिपासा, दाह इन सबका नाश होता है। शूल तथा हृदयरोग की शान्ति होती है तथा हृदय के लिये हितकारी तथा रसायन है ॥ ५ ॥

अथ नारिकेलखण्डपाको योगरत्नावल्याः—

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिःपाचितं तुल्यखण्डम्।
निजपयसि तदेतत्प्रस्थमात्रे विपक्वं
कुडवमथ सुशीते शाणमात्रं क्षिपेच्च ॥ १ ॥

अच्छी प्रकार से पिसाहुआ नारियल एक कुड़व लें, गौ का घी एक पल लेकर पकावें और समभाग खांड डालें। नारियल का जल एक प्रस्थ डालकर दोनों को पकाकर अवलेह सा बनावें ॥ १ ॥

धान्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरैः
साकं त्रिजातमिभकेसरवह्निचूर्णम्।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं सकलपौरुषकारि पुंसाम् ॥ २ ॥

धनियां, पीपली, मोथा, वंशलोचन, जीरा, कालाजीरा, दालचीनी, इलायची, तेजपात तथा नागकेसर इन सबको एक २ शाण लेकर चूर्ण करके उसी अवलेह में मिलादेवे। इस से अम्लपित्तरोग, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल, वमन ये रोग नष्ट होते हैं तथा सभी प्रकार का पौरुष मनुष्यों में उत्पन्न करता है। इसे नारिकेल खण्डपाक कहते हैं ॥ २ ॥

अथ गुडाद्यो मोदकः—गुडपिप्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः।
पित्तश्लेष्महरः प्रोक्तो मन्दाग्नित्वं च नाशयेत् ॥१॥

गुड, पीपल का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण इन सबको पीसकर मोदक बनावें तो इस से पित्तश्लेष्म का नाश होता है तथा मन्दाग्नि का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डः—कूष्माण्डस्य रसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकः।
रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ १ ॥

पेठे का स्वरस एक सौ पल, गौ का दूध एक सौ पल, आंवले का चूर्ण ८ पल ले ॥ १ ॥

लघ्वग्निना पचेत्तावद्यावद्भवति पिण्डितम्।
धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्धं लेहयेदनु।
खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तं नियच्छति ॥ २ ॥

सबको मिलाकर तब तक मन्दाग्नि से पकावे जब तक पिण्ड सा बनजावे। फिर आंवले के समान ही खांड डाले। इसे आधापल प्रतिदिन खिलावें। इस खण्डकूष्माण्डक के सेवन करने से अम्लपित्त का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ मधुपिप्पल्यादियोगः—

पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी।
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥ १ ॥

पिप्पली का चूर्ण शहद से मिलाकर चाटे तो अम्लपित्तरोग का नाश होता है।जम्बीरी नींबू का स्वरस सायंकाल पिलाने से भी अम्लपित्त का नाश होता है॥१॥

अथ पिप्पलीघृतम्—**पिप्पलीक्वाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम्।**
पिबेत्प्रातः समुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ १ ॥

पिप्पली के क्वाथ से तथा पिप्पली के कल्क से विधिपूर्वक गौ का घी पका लेवे इस में शहद मिलाकर प्रातःकाल पिलावे तो अम्लपित्त की शान्ति होती है॥१॥

अथ द्राक्षादिघृतम्—

द्राक्षाभयाशक्रपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीयवचन्दनैश्च।
त्रायन्तिकापद्मकिराततधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥१॥

दाख, हरड़, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, खस, आंवला, जौ तथा चन्दन, त्रायमाण, पद्मकाष्ठ, चिरायता, धनियां इन सब को समभाग लेकर इन का कल्क बनावे। कल्क से चौगना गौ का घी लेवे, घी से चौगना जल लेवे। सब को मिलाकर पकावे। घीमात्र शेष रहने पर उतार कर छान लेवे ॥१॥

भुञ्जीत मात्रां सह भोजनेन सर्वं तु पाने ह्यमृतोपमं च ॥२॥

इसे भोजन के साथ उचित मात्रा में खवे, यह सर्वावस्था में अमृत के समान है तथा अम्लपित्त का नाश करत है ॥ २ ॥

अथ शतावरी घृतम्—**शतावरीमूलकल्के घृतं प्रस्थं पयः समम्।**
पचेन्मृद्वग्निना सम्यक्क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥ १ ॥
नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तोद्भवान्गदान्।
रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं संतापमेव च ॥ २ ॥

शतावरी की जड़ का कल्क बनावे, इस से चौगुना गौ का घी एक प्रस्थ लेवे इस में एक प्रस्थ पानी और चार प्रस्थ दूध डालकर मन्दाग्नि से घी पका लेवे। इस के सेवन से अम्लपित्त, वातपित्तज रोग, रक्तपित्त, प्यास, मूर्च्छा, श्वास तथा संताप ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथ नारायणघृतम्—**जले दशगुणे क्वाथ्यं पिप्पलीनां पलाष्टकम्।**
पादशेषं हरेत्क्वाथं क्वाथतुल्यं घृतं क्षिपेत् ॥ १ ॥

पिप्पली को आठ पल लेकर कूट लें, उसमें ८० पल जल डालकर पका लेवें। उस में से जब २० पल शेष बचे तो छान लें। इस २० पल पिप्पली के क्वाथ में २० पल ही गौ का घी डालें और मन्दाग्नि से पकावें ॥ १ ॥

अम्लपित्तहरं श्रेष्ठं घृतं नारायणं महत्।

गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिश्चात्रापि योजयेत् ॥ २ ॥

घी मात्र शेष रहे तो उतार कर छान लें। यह महानारायणघृत अम्लपित्त के नाश करने में श्रेष्ठ है। गुड, दूध तथा पिप्पली से पकाया हुआ घी यहां प्रयोग करना उचित है ॥ २ ॥

अथ रसा आरभ्यन्ते ।

तत्राऽऽदौ लीलाविलासो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्ररोचनम् ।
तुल्यांशं मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् ॥ १ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म, वंशलोचन सब समान २ भाग लेकर विधिपूर्वक खरल करें। फिर शराब सम्पुट में रखकर लघुपुट में फूंक देवे ॥ १ ॥

अक्षधात्रीहरीतकीः क्रमवृद्ध्या विपाचयेत् ।
जलेनाष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषकम् ॥ २ ॥

बहेड़ा १ भाग, आंवला २ भाग, हरड़ ३ भाग इनको एकत्र कर इनसे आठ गुणा जल डालकर इनको पका के जब आठवां भाग जल शेष रहे तो छान लेवे ॥ ३ ॥

अनेन भावयेत्पूर्वं पक्वसूतं पुनःपुनः ।
पञ्चविंशतिवारं च तावता भृङ्गजद्रवैः ॥ ३ ॥
शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पञ्चगुञ्जं मधुप्लुतम् ।
रसो लीलाविलासोऽयमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ४ ॥

इस क्वाथ से पूर्व लिखित पक्व पारदादि को खरल करे। इस प्रकार २५ बार इस क्वाथ से भावना देवे फिर भांगरे के स्वरस से २५ बार भावना देवे। इसके सूख जाने पर ५ रत्ति चूर्ण लेकर शहद से मिलाकर खावे। यह लीलाविलास रस अम्लपित्त को नाश कर देता है ॥ ४ ॥ इति लीलाविलासो रसोवृन्दात् ।

अथ रसामृतम्—त्रिकटु त्रिफला मुस्ता विडङ्गश्चित्रकं तथा ।
एषां संचूर्णितानां तु प्रत्येकं तु पलं भवेत् ॥ १ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मोथा, वायविडंग, चीता इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण पृथक् २ एक २ पल लेवें ॥ १ ॥

कर्षद्वयं गन्धकस्य तदर्धं पारदस्य च ।
बिडालपदमात्रं तु लिह्यात्तन्मधुसर्पिषा ॥ २ ॥

गन्धक शुद्ध दो कर्ष लेवे, शुद्ध पारा एक कर्ष लेवे, इनकी कज्जली करके सबको खूब मर्दन करके एक प्राण कर लेवे। इसे एक कर्ष भर (मात्रा बलानुसार लेवें) लेकर घी तथा शहद से मिलाकर खावें ॥ २ ॥

शीतोदकं चानु पिबेत्क्रमाद्गव्यं पयस्तथा ।

अम्लपित्तमग्निमान्द्यं परिणामरुजं तथा ।
कामलां पाण्डुरोगं च हन्यादेतद्रसामृतम् ॥ ३ ॥

और इसे चाटने के पीछे ठण्डा पानी पीवें । फिर क्रम से गौ का दूध पीवें । इसके सेवन से अम्लपित्त, अग्निमांद्य, परिणामजशूल, कामला, पाण्डुरोग ये सभी रोग रसामृत से नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥ इति रसामृतम् ॥

अथ सूतशेखररसः सारसंग्रहात्—

शुद्धं सूतं मृतं स्वर्णं टङ्कणं वत्सनाभकम् ।
व्योषमुन्मत्तबीजं च गन्धकं ताम्रभस्मकम् ॥ १ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध स्वर्णभस्म, सुहागा, शुद्ध वत्सनाभविष, सोंठ, मिरच, पीपल धतूरे के शुद्ध बीज इन में से प्रत्येक द्रव्य का चूर्ण लेवे । शुद्धगन्धक, ताम्रभस्म १॥

चतुर्जातं शङ्खभस्म बिल्वमज्जा कचोरकम् ।
सर्वं समं दिपेत्खल्वे मर्द्यं भृङ्गरसैर्दिनम् ॥ २ ॥

दारचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, शंखभस्म, बिल का गूदा, कचूर सबके चूर्ण को समभाग लेकर मिलाकर विधिपूर्वक खरल करे फिर भांगरे के स्वरस से एक दिन खरल करे ॥ २ ॥

गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा द्विगुञ्जे मधुसर्पिषी ।
भक्षयेदम्लपित्तघ्नो वान्तिशूलामयापहः ॥ ३ ॥

इसकी एक २ रत्ति की गोली बनाकर शहद तथा घी दो २ रत्ति मिलाकर खावे तो अम्लपित्त का नाश होता है, वमन तथा शूल इन दोनों का नाश होता है ॥ ३॥

पञ्च गुल्मान्पञ्च कासान्ग्रहण्यामयनाशनः ।
त्रिदोषोत्थातिसारघ्नः श्वासमन्दाग्निनाशनः ॥ ४ ॥

पांचों गुल्म, पांचों प्रकार की खांसियें, ग्रहणीरोग, त्रिदोषज अतीसार, श्वास, मन्दाग्नि इन सबका नाश होता है ॥ ४ ॥

उग्रहिक्कामुदावर्तं देहयाप्यगदापहः ।
मण्डलान्नात्र संदेहः सर्वरोगहरः परः ।
राजयक्ष्महरः साक्षाद्रसोऽयं सूतशेखरः ॥ ५ ॥

उग्र हिचकी, उदावर्त्तरोग तथा देह के जो याप्य रोग हैं उन सबको नाश करता है । एक मण्डल अर्थात् ४८ दिन में सब रोगों को नाश करता है । यह सूत शेखर रस राजयक्ष्मा को नाश करने में साक्षात् रसशिरोमणि है ॥ ५ ॥ इति सूतशेखरोरसः ।

अथ पथ्यापथ्यम् ।

यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा रक्तशालयः ।
जलानि तप्तशीतानि शर्करा मधु सक्तवः ॥ १ ॥

जौ, गेहूं, मूंग, पुराने लाल चावल, तपाकर शीतल किये हुए जल पिलाना, खांड, शहद, सत्तू ॥ २ ॥

कर्कोटकं कारवेल्लं रम्भापुष्पं च वास्तुकम्।
वेत्राग्रं वृद्धकूष्माण्डं पटोलं दाडिमं तथा ॥ २ ॥

ककोड़ा, करेला, केले का फूल, बाथु वा बथुये का शाक, बेत का अगला भाग, पुराना पेठा, परवल, अनार ॥ २ ॥

पानान्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि च।
अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ ३ ॥

समस्त कफपित्त नाशक अन्न तथा पान, अम्लपित्तरोग में पूर्व वर्णित सभी पदार्थ सेवन करने चाहियें ॥ ३ ॥

वमिवेगं तिलान्माषान्कुलत्थांस्तिलभक्षणम्।
अविदुग्धं च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च।
गुर्वन्नं दधि मद्यं च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥ ४ ॥

परन्तु वमन का वेग, तिल, उड़द, कुलथ, तिलों के बने पदार्थ, भेड़ का दूध, धान्याम्ल, लवण, अम्ल तथा कटु पदार्थ, भारी अन्न, दही, मद्य ये सभी पदार्थ अम्लपित्त का रोगी न खावे ॥ ४ ॥ इत्यम्लपित्तचिकित्सा ॥

इति हरिद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेद-शास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायामम्लपित्तस्य चिकित्सा समाप्ता।

अथ विसर्पनिदानमाह।

अथ तस्य संप्राप्तिमाह—**लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः।**
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

लवण रस, अम्लरस, कटु तथा उष्णादि तथा चरकोक्त हरे शाक शिण्डाकी आदि पदार्थों के संसेवन से तथा दोषों के कोप से विसर्परोग होता है, यह सात प्रकार का होता है, चारों ओर रोग के परिसर्पण होने के कारण इसे विसर्परोग कहते हैं ॥ १ ॥

अथ तस्य संख्यामाह—**वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सांनिपातिकः।**
चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वंद्वजास्त्रयः ॥ २ ॥

वातिक, पैत्तिक, कफज, सन्निपातिक ये चार तथा द्वन्द्वज तीन विसर्प होते हैं अर्थात् वातपित्तज विसर्प, पित्तकफज विसर्प, तथा वातकफज विसर्प। इस प्रकार से सात विसर्प होते हैं ॥ २ ॥

नामान्याह—**आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः।**

यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसंभवः ॥ ३ ॥

वात पित्त से आग्नेय विसर्प होता है, कफवात से ग्रन्थि नामक विसर्प होता है। जो पित्त कफसे उत्पन्न होता है वह कर्दम विसर्प नाम से पुकारा जाता है यह भयंकर है

सप्तधातुजन्यत्वमाह—रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः।
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥४॥

रक्त, लसीका, त्वचा, मांस ये दूष्य हैं और वात, पित्त, कफ ये तीन दोष हैं। ये सातों धातु विसर्पों की उत्पत्ति के कारण होते हैं ॥ ४ ॥

अथ तत्र वातिकमाह—तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः।
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥

वातज विसर्प में वातज्वर के समान व्यथा होती है, सोजन, फड़फड़ाहट, शूलसा होता है, भेद अर्थात् फटता सा प्रतीत होता है। विस्तारवाला होता है तथा पीड़ा होती है तथा रोमहर्ष होता है ॥ ५ ॥

अथ पैत्तिकमाह—पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ॥

पित्त से हुआ २ विसर्प तीव्र गतिवाला होता है, पित्तज्वर के उसमें सब लक्षण होते हैं तथा अति लाल रंग का होता है ॥

अथ कफजमाह—कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ६ ॥

कफ से हुआ २ विसर्प कण्डुयुक्त होता है, स्निग्ध होता है तथा कफज्वर के समान उसमें पीड़ा होती है ॥ ६ ॥

अथ सांनिपातिकमाह—संनिपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः।
स चात्रान्तर्बहिर्भेदाद्विसर्पः पठितो द्विधा ॥ ७ ॥

सन्निपात से हुए २ विसर्प में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं ॥ यह विसर्प अन्दर और बाहर दो प्रकार का होता है ॥ ७ ॥

अन्तर्जबाह्यजविसर्पावाह—मर्मोपतापात्संमोहादयनानां विघट्टनात् ॥
तृष्णादियोगाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात् ॥८॥

मर्मों के उपताप से, संमोह से, वर्ष के दो अयनों अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन के विघट्टन से, तृष्णादि के योग से, मल मूत्रादि वेगों के विषम प्रवर्तन से ॥ ८ ॥

विद्याद्विसर्पमन्तर्जमाशु चाग्निबलक्षयात्।
अतो विसर्पणाद्बाह्यमन्यं विद्यात्सुलक्षणैः ॥ ९ ॥

अन्तर्ज विसर्प होता है। तथा शीघ्र ही अग्निबल के क्षय हो जाने से तथा विपरीत लक्षणों से युक्त होने पर बाह्य विसर्प होता है ॥ ९ ॥

अथ द्वंद्वजमाह। तत्र वातपित्तजमाह—

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातिसारतृड्भ्रमैः।
अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ १० ॥

वातपित्तज विसर्प में ज्वर होता है, वमन होती है, मूर्च्छा होती है, अतीसार होता है, तृष्णा तथा भ्रम होता है। हड्डियां टूटती हैं, अग्निमन्द होती है, तमक श्वास तथा अरुचि होती है ॥ १० ॥

करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत्।
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ॥ ११ ॥

सारे अंग ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे जलते हुए कोयले शरीर पर बिखेर दिये हों। जिस २ देश में अर्थात् स्थान में वह वीसर्प फैलता जाता है ॥११॥

शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते।
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ॥ १२ ॥

वह स्थान बुझे हुए कोयलों के समान काला, नीला वा लाल रंग का शीघ्र ही होजाता है, देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों अग्नि से जला हुआ कोई घाव हो गया हो उसी प्रकार उस स्थान पर छाले पड़ जाते हैं और वह बढ़ता जाता है ॥ १२ ॥

मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः।
व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥ १३ ॥
हिध्मां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना।
क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १४ ॥

शीघ्रगामी होने के कारण शीघ्र ही वह विसर्प मर्मानुसारी होता है अर्थात् हृदयादि मर्मस्थानों की ओर जाता है। तब वात अति बलवान होजाता है और सभी अंगों को पीड़ित करता है। निद्रा नाश होजाती है तथा संज्ञा नाश होजाती है। तथा श्वास और हिचकी का प्रकोप हो जाता है। ऐसी अवस्था में पहुंचे हुए मनुष्य को कहीं पर भी अर्थात् चारपाई या भूमि आदि पर बैठने या लेटने से सुख प्राप्त नहीं होता, प्रत्येक समय मनुष्य दुखी रहता है ॥ १४ ॥

चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्भवाम्।
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १५ ॥

यदि अति क्लेशित होकर अर्थात् तंग आकर मनुष्य कुछ चेष्टा भी करता है तो मन और देह को थकाने के कारण उत्पन्न हुई २ दुष्प्रबोध अर्थात् जिस से फिर जगाना कठिन होता है ऐसी निद्रा को प्राप्त होता है, अर्थात् मरणरूप नींद को प्राप्त होता है ॥ इसे अग्निविसर्प कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ कफमारुतजग्रन्थिविसर्पमाह—

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम्।
रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥ १६ ॥

कुपित कफ से रुका हुआ कुपित वायु उस कफ को अनेक प्रकार से तोड़

फोड़कर, अथवा जिस मनुष्य का रक्त बढ़ा हुआ हो उस की त्वचा, शिरा, स्नायु तथा मांस में स्थित रक्त को दूषित कर के ॥ १६ ॥

दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम्।
ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ १७ ॥

लंबी, छोटी, गोल, स्थूल अर्थात् मोटी तथा कठिन गांठों की माला को उत्पन्न कर देता है (इसी ग्रन्थिविसर्प को सुश्रुत में अपची नाम से लिखा गया है) ॥ वह गांठें लाल होती है, तीव्र पीड़ायुक्त तथा ज्वरयुक्त होती है ॥ १७ ॥

श्वासकासास्यवैरस्यशोषहिध्मावमिभ्रमैः।
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥ १८ ॥
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥

उन के साथ २ श्वास, कास, मुंह की विरसता होती है, शोष, हिक्का, वमन तथा भ्रम होता है, मोह होता है, मूर्च्छा होती है, अङ्ग भङ्ग होता है, तथा अग्नि मन्द हो जाती है ॥ १८ ॥ यह ग्रन्थिविसर्प कफ वायु के कोप से होता है ॥

अथ कफपित्तात्मककर्दमविसर्पमाह—

कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ॥ १९ ॥

कफपित्त के प्रकोप से हुए २ विसर्प में ज्वर होता है, अंगों की स्तब्धता हो जाती है। निद्रा आती है, तन्द्रा आती है, सिर में दर्द होता हैं ॥ १९ ॥

अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः।
मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥ २० ॥

अङ्ग खिन्न होते हैं, अङ्गों को इधर उधर रोगी पटकता है और प्रलाप करता है, अरुचि तथा भ्रम होता है। मूर्च्छा होती है, अग्नि मन्द होजाती है, हड्डियां टूटती हैं, प्यास लगती है तथा चक्षु आदि इन्द्रियें भारी होजाती है ॥ २० ॥

आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति।
प्रायेणाऽऽमाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ २१ ॥

मल त्याग के समय आंव निकलता है। स्रोत कफ आदि से लिप्त होजाते हैं। आमाशय के एक स्थान को घेरकर (क्योंकि कफ पित्त का स्थान आमाशय होता है इसीलिये आमाशय को ग्रहण करता है) ही फैलता है, अत्यन्त पीड़ा भी इस में नहीं होती है ॥ २१ ॥

पिटकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः।
स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोथवान्गुरुः ॥ २२ ॥

इस में अत्यन्त पीला, अत्यन्त लाल, अत्यन्त भूरी पिड़िकायें उत्पन्न होकर फैल जाती हैं। यह स्निग्ध होता है, काला होता है, अञ्जन के समान काला होता है, मैला होता है, सूजनयुक्त तथा गौरवयुक्त या भारी होता है ॥ २२ ॥

गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते।

पक्ववच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः ॥ २३ ॥

यह गम्भीर पाक अर्थात् अन्दर से पकता है, अत्यन्त ऊष्मावाला अर्थात् गरम होता है। छूने से गीला प्रतीत होता है। तथा फट जाता है और कीचड़ के समान मांस फटकर गिरता जाता है और मांस के फटकर गिर जाने से अन्दर की स्नायु तथा शिरायें स्फुटित अर्थात् स्पष्ट दीखने लगती हैं ॥ २३ ॥

शवगन्धिः स वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम्।
अग्निकर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥ २४ ॥

ऐसे वीसर्प में से मुर्दे के समान दुर्गन्ध आया करती है इसे कर्दम कहते हैं। कफपित्त से अग्निकर्दम नाम का यह विसर्प होता है जो अत्यन्त भयंकर होता है॥२४

क्षतजमाह—बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयेत्।
विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम्।
स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावलोहितम् ॥ २५ ॥

बाहर के प्रहारादि से हुए २ क्षत में क्रुद्ध हुआ २ वायु रक्त सहित पित्त को प्रकुपित करके विसर्परोग को करता है, इसमें कुलथ के सदृश फुंसियें हो जाती हैं, और शोथ, ज्वर, पीड़ा और दाह की अधिकता होती है। इस विसर्प का सांवला तथा लाल रंग होता है। (भोज आदि ने इसे पित्तज विसर्प में ही माना है— " शस्त्रप्रहारैस्तैस्तैस्तु व्याड्दन्तनखैरपि। क्षते वा प्यथवा भग्ने बहुदोषस्यदेहिनः। रक्तं पित्तं च कुपितं व्रणमाशु प्रपद्यते। कुरुतस्ते समेततु व्रणशोथं सुदारुणम्। आचितं तनुविस्फोटैः कृष्णैः पीतकसन्निभैः। पित्तवीसर्पवल्लिङ्गं तस्य शेषं विनिर्दिशेत्) ॥ २५ ॥

अथ विसर्पोपद्रवानाह—ज्वरातिसारवमथुत्वङ्मांसदरणक्लमाः।
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥२६॥

ज्वर, अतिसार, वमन, त्वचा का फटना, मांस का फटना तथा क्लांति होना अरुचि, भोजन का न पचना ये सभी विसर्परोग के उपद्रव हैं ॥ २६ ॥

अथ साध्यासाध्यमाह—सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः
सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति।
पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः
कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २७ ॥

वात, पित्त तथा कफ के विसर्प तो साध्य हैं। सन्निपातज विसर्प तथा क्षतज विसर्प असाध्य हैं। पित्त के अत्यन्त ही बढ़ जाने से काले अंजन के समान जिस में शरीर का रंग हो जावे वह अग्निविसर्प असाध्य है। मर्मों में होनेवाले सभी विसर्प कृच्छ्रसाध्य वा असाध्य होते हैं (भोज ने लिखा है—"त्याज्यस्तु क्षतजस्तेषां सन्निपाताच्च यो भवत्। भिषजा जानता त्याज्याः सर्व एव तु मर्मजाः ॥ "अर्थात् मर्मज विसर्प असाध्य होता है) ॥ २७ ॥ इति विसर्पनिदानमाह ॥

अथ विसर्पचिकित्सा।

पूर्वमेव विसर्पेषु कुर्याल्लङ्घनरूक्षणे।
विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः॥
उपाचरेद्यथा दोषं विसर्पानविदाहिभिः॥ १॥

सब से पूर्व विसर्प रोगों में लंघन करावे तथा रूक्षण कर्म करावे। विरेचन देवे, वमन करावे, लेप करे, जलादि का सिंचन करे तथा रक्त निकलवावे। दोषानुसार विसर्पों की चिकित्सा करे विशेष कर विदाही पदार्थ न देवे॥ १॥

अथ विरेचनम्—त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये॥
त्रिवृद्धरीतकीभर्वा विसर्पे शोधनं हितम्॥ १॥

त्रिफला के क्वाथ में घी पकाकर त्रिवी के चूर्ण के साथ पिलाया जावे तो यह विरेचन विसर्पज्वर की शान्ति के लिये उत्तम होता है॥ अथवा त्रिवी और हरड़ों के चूर्ण को पिलावें यह शोधन भी विसर्परोग में हितकर है॥ १॥

अथ वमनम्—पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन वा।
विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रयवैः सह॥ १॥

पटोलपत्र, नीम इन को उबाल कर पिलावें या पिप्पली तथा मदन का चूर्ण जल से पिलावें। अथवा इन्द्रजौ का चूर्ण पिलावें तो वमन कराने में ये श्रेष्ठ होते हैं॥ १॥

श्लैष्मिकेऽत्र वमिः कार्या पूर्वं रेचनकं ततः।
मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च॥
एतैर्वमिर्विधातव्या विसर्पे कफसंभवे॥ २॥

कफजविसर्प में पहले वमन कराना चाहिये, फिर विरेचन करावें। मदनफल मुलट्ठी, नीम, इन्द्रजौ इन सब के क्वाथ को अथवा चूर्ण को जल से पिलाकर वमन करानी चाहिये॥ २॥

अथ लेपः—

वातजे रास्नादि लेपः—रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला।
पिष्टाऽऽज्यक्षीरवांल्लेपो वातवीसर्पनाशनः॥ १॥

रास्ना, नीलाकमल, देवदारु, चन्दन लाल, मुलठ्ठी, खिरेंटी सब को घी तथा दूध में पीसकर लेप करें तो वातजविसर्प का नाश होता है॥ १॥

पित्तजे प्रपौण्डरीकादि—प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः।
सयष्टीन्दीवरैः पैत्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपनम्॥ २॥

पुण्डरिया काष्ठ, मंजीठ, पद्माख, खस, चन्दन लाल, मुलहठी, नीला

कमल इन सब को समभाग लेकर दूध सें पीसकर पित्तजविसर्प पर लेप करदें तो इस से लाभ होता है ॥ २ ॥

कसेर्वादि–कसेरुश्टङ्गाटकपद्मगुञ्जाः सशैवलाः सोत्पलकर्दमाश्च ।
वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥

कसेरु, सिंघाड़ा, कमल, रत्तियां, शैवाल अर्थात् काई, नीला कमल, कीचड़ इन सब को पीसकर घी से मिलाकर सुशीतल करके वस्त्र पर लगाकर लेप करदे ॥ ३

श्लेष्मजे गायत्र्यादि–गायत्रीसप्तपर्णाब्दवासारग्वधदारुभिः ।
कुटन्नटैर्भवेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसंभवे ॥ ४ ॥

खैर, सतौने की छाल, मोथा, बांसा, अम्लतास, देवदारु, श्योणाक की छाल (कुटन्नटम्=मोथा, भांगरा, बिकंकतवृक्ष तथा श्योणाक) । इन सब को पीसकर लेप करने से श्लेष्मज विसर्प में लाभ होता है ॥ ४ ॥

त्रिफलादि–त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ।
नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ५ ॥

हरड़, बहेड़ा, आंवला, पद्माख, खस, मंजीठ, कनेर, नड़े की जड़, अनन्त मूल इन सब को पीसकर लेप करने से श्लेष्मजविसर्प का नाश होता है ॥५॥

शतधौतसर्पिर्लेपः–सर्पिषा शतधौतेन कृतो लेपो मुहुर्मुहुः ।
निहन्ति सर्वबीसर्पं सर्पं पतगराडिव ॥ ६ ॥

एक सौ बार जल से धुले हुए घी से बार २ लेप करने से सभी प्रकार के विसर्परोग इस प्रकार से शान्त होजाते हैं जैसे गरुड़ से सांप ॥ ६ ॥

अथ दशाङ्गलेपः–

शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ।
लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पदुष्टव्रणशोथहारी ॥ १ ॥

सिरस की छाल, मुलट्ठी, तगर, लालचन्दन, छोटी इलायची, जटामांसी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ, सुगंधबाला इसे जल से पीसकर तथा कुछ घी मिलाकर लेप करें तो विसर्प, दुष्टव्रण तथा शोथ को दूर करता है (घी सब द्रव्यों से ४वां भाग लेवे ऐसा अन्यत्र लिखा हैं) ॥ १ ॥

अथ मांस्यादिलेपः–मांसी सर्जरसो लोध्रं मधुकं सहरेणुकम् ।
मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमानि च ॥
एतैः प्रदेहः कथितो वह्निवीसर्पनाशनः ॥ १ ॥

जटामांसी, राल, लोध, मुलट्ठी, रेणुका, मूर्वामूल, नीलोफर, कमल, शिरीष के फूल इन सब को पीसकर जल से लेप करे तो अग्निविसर्प नष्ट होता है ॥ १ ॥

पञ्चत्वगादिलेपः–शतधौतघृतविमिश्रः कल्कस्त्वक्पञ्चकस्य लेपेन ।
बहुदाहकरमुच्चैरग्निविसर्पं विनाशयति ॥ २ ॥

सौ बार धुले हुए घी से पञ्चवल्कलों के चूर्ण को मिलाकर लेप करने से अत्यन्त दाह करनेवाला उच्च अग्निविसर्परोग भी नष्ट होता है ॥ पीपल की छाल बड़ की छाल, गूलर की छाल, पिलखन की छाल, बेत की छाल इन्हें पञ्चवल्कल कहा जाता है ॥ २ ॥

न्यग्रोधपादादिः—न्यग्रोधपादो गुञ्जा च कदलीगर्भ एव च ।
एतैर्ग्रन्थिविसर्पघ्नो लेपो धौताज्यसंयुतः ॥ ३ ॥

बड़ की जड़ की छाल, लालरत्तियां, केले का बीच का भाग इन सब को समभाग लेकर पीसलें और सौ बार के धुले हुए घी में मिलाकर लेप करे इस से ग्रन्थिविसर्प का नाश होता है ॥ ३ ॥

शिरीषत्वगादिलेपः—शतधौतघृतोन्मिश्रः शिरीषत्वग्रजःकृतः ।
लेपः शमयति क्षिप्रं विसर्पं कर्दमाभिधम् ॥ ४ ॥

सौ बार के धुले हुए घी में सिरस की छाल का चूर्ण मिलाकर लेप करें तो कर्दम नाम का विसर्प शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥४॥ इति लेपाः ॥

अथ क्वाथाः ।

पित्तविसर्पे क्वाथः—कनीयः पञ्चमूलस्य यववल्कलकस्य वा ।
कषायः पित्तवीसर्पे पाके सेकेऽपि शस्यते ॥ १ ॥

लघुपञ्चमूल अर्थात् छोटी कटेली, बड़ी कटेली, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, गोखरू तथा जौ का भूसा इन सब को समभाग लेकर क्वाथ करे । इस क्वाथ को पिलावे तथा पित्तजविसर्प पर सिंचन करें तो लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ पटोलादिः—

कुलकवृषकिराततारिष्टतिक्तात्तपथ्या-
मलकमलयजानां कौशिकाढ्यः कषायः ।
सकलगदसमुत्थं हन्ति वीसर्पमुग्रं
ज्वरवमिविषदाहभ्रान्तितृष्णारुजाभिः ॥ १ ॥

पटोलपत्र, बांसा, चिरायता, नीम, कुटकी, बहेड़ा, आमला, हरड़, चन्दन इन सबका क्वाथ करे और गूगल मिलाकर पीयें तो ज्वर, वमन, विष, दाह, भ्रम, तृष्णा, पीड़ा तथा अन्य रोगों से युक्त भी उग्र विसर्प हो तो भी इस क्वाथ से शान्त होता है ॥ १ ॥

अथ गुडूच्यादिः—

अमृतवृषपटोलं निम्बकल्कैरुपेतं
त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यम् ।
क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोः पादयुक्तं
हरति विषविसर्पान्कुष्ठसंघातमाशु ॥ १ ॥

गिलोय, बांसा, पटोलपत्र, नीम की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कत्था,

अम्लतास इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करे इसमें चौथाई भाग गूगल मिला देवे तो यह विष, विसर्प तथा कुष्ठ समूह को नाश करता है ॥१॥ इति वृन्दात्।

अथ भूनिम्बाद्यः—

भूनिम्बवासाकटुकापटोलं फलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः।
विसर्पदाहज्वरशोफकण्डूविस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः ॥ १ ॥

चिरायता, बांसा, कुटकी, पटोलपत्र, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चन्दन, नीम की छाल इनसे पकाया हुआ क्वाथ पिलाने से विसर्प, दाह, ज्वर, सूजन, कण्डू, विस्फोट, तृष्णा तथा वमन इन सबका नाश होता है ॥ १ ॥

अथ दुरालभादिः—**दुरालभा पर्पटकं गुडूची विश्वभेषजम्।**
निशापर्युषितं दद्यात्तृष्णावीसर्पशान्तये ॥ १ ॥

जवासा, पित्तपापड़ा, गिलोय, सोंठ इनको जल में डालकर रात भर पड़ा रहने दें। प्रातःकाल इनका बासी पानी पिलाने से तृष्णा तथा वीसर्प की शान्ति होती है

अथ द्वितीयः पटोलादिर्वृन्दात्—

पटोलं पिचुमन्दं च दार्वीं कटुकरोहिणीम्।
यष्ट्याह्वं त्रायमाणां च दद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ १ ॥

पटोलपत्र, नीम की छाल, दारुहल्दी, कुटकी, मुलठी, त्रायमाण इन सबको पीसकर लेप करें तो विसर्प की शान्ति होती है ॥ १ ॥

अथ मुस्तादिः—**मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत्।**
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंयुतः ॥ १ ॥

मोथा, नीम, पटोलपत्र इनको समभाग लेकर क्वाथ करें तो सभी विसर्पों का नाश होता है। अथवा आंवला, पटोलपत्र, मूंग इनका क्वाथ घी मिलाकर पिलावें तो सभी विसर्प नष्ट होते हैं ॥ १ ॥ इति क्वाथाः।

अथ घृतानि।

तत्रादौ गौराद्यं सर्पिः—**द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम्।**
मधुकं मधुपर्णी च पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ १ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, मूर्वामूल, सारिवा, लालचन्दन, श्वेत चन्दन, मुलठी, गिलोय वा गम्भारी की छाल, पद्माख, पद्मकेसर ॥ १ ॥

उशीरमुत्पलं मेदा त्रिफला पञ्चवल्कलम्।
कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

खस, नीलोफर, मेदा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बड़ की छाल, पीपल की छाल, गूलर की छाल, पिलखन की छाल, बेत की छाल। इन सब द्रव्यों को एक २ अक्ष भर लेकर कल्क करें, इसे एक प्रस्थ गौ के घी में रख और ४ प्रस्थ पानी डालकर घी पका लेवे ॥ २ ॥

विषवीसर्पविस्फोटकीटलूताव्रणापहम्।
गौराद्यमिति विख्यातं सर्पिः श्लेष्ममरुत्प्रणुत्॥ ३॥

इसे खावें तथा लगावें तो विष, विसर्प, विस्फोट, कीट, लूता अर्थात् मकड़ी के विष को तथा व्रणों को नष्ट करता है। यह गौराद्यघृत कफबात के रोगों को नाश करने में श्रेष्ठ है॥ ३॥

अथ वृषादिःसर्पिः—

वृषखदिरपटोलपत्रनिम्बैः सममममृतामलकीकषायकल्कैः।
घृतमभिनवमेतदाशुः पक्कं जयति सदाऽस्रविसर्पकुष्ठगुल्मान्॥१॥

बांसा, खैर, पटोलपत्र, नीम की छाल, गिलोय, आंवला इन सबको समभाग लेकर कल्क करे। इस कल्क से चौगुना गौ का नया घी लेवे, घी से चौगुना बांसादि पूर्वलिखित कल्क के द्रव्यों का ही क्राथ ले लेवे। फिर कल्क, घी तथा क्राथ को मिलाकर एकत्र पाककर, घी मात्र शेष रख लेवे। इस घी के सेवन करने से शीघ्र ही रक्त विसर्प, कुष्ठ तथा गुल्म का नाश होता है॥ १॥

अथ दूर्वादिसर्पिः—

दूर्वावटोदुम्बरजम्बुसालसप्तच्छदाश्वत्थकषायकल्कैः।
सिद्धं विसर्पज्वरदाहपाकविस्फोटशोफान्विनिहन्ति सर्पिः॥१॥

दूब, बड़ की छाल, गूलर की छाल, जामुन की छाल, साल की छाल, सप्तपर्ण या सतौने की छाल, पीपल की छाल इन सब द्रव्यों का कल्क बनावे। इस कल्क से चौगुना गौ का घी लेवे। और घी से चौगुना इनही दूब आदि द्रव्यों का क्राथ लेवे। सबको एकत्र कर घी पका लेवें। इस घी से विसर्प, ज्वर, दाह, पाक विस्फोट तथा सूजन नष्ट होते हैं॥ १॥ इति घृतानि।

अथ करञ्जादितैलम्—करञ्जसप्तच्छदलाङ्गलीकास्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजः।
तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्कं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम्॥

करंज के पत्ते, सतौने की छाल, लांगली विष, थोहर का दूध, आक का दूध, चीता, भांगरा, हल्दी, गोमूत्र तथा विष इन सबको समभाग लेकर कल्क करे, सरसों का तेल कल्क से चौगुना ले और तेल से चौगुना जल ले। एकत्र सबका पाक करे। तैल मात्र बचे तो उतार कर छान ले। इसकी मालिश की जाये तो विसर्प, विस्फोट तथा विचर्चिका रोग नष्ट होता है॥ १॥

अथ मञ्जिष्ठाभया—मञ्जिष्ठा कुटजो मुस्ता गुडूची रजनीद्वयम्।
कण्टकारी वचा शुण्ठी कुष्ठारिष्टपटोलकम्॥ १॥

मंजीठ, कुड़े की छाल, मोथा, गिलोय, हल्दी, दारुहल्दी, कटेली, बच, सोंठ कूठ, नीम, पटोलपत्र॥ १॥

नागी विडङ्गकामाची मोरटा सुरदारुकम्।
कलिङ्गभृङ्गत्रायन्तीपाठाकाश्मीरिका बलिः॥ २॥

बांझ ककोड़ा, विडङ्ग, छोटी मकोय, अंकोल की जड़, पिलखन की छाल, देवदारु, इन्द्रजौ, भांगरा, त्रायमाण, पाठा, गाम्भारी की छाल, गन्धक ॥ २ ॥

गायत्री त्रिफला तिक्ता सारिवा नक्तमालकः ।
वासोशीरमहावृक्षसोमराजीप्रियंगुकाः ॥ ३ ॥

खैर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी, शारिवा, करंज के पत्ते, बांसा, खस, अम्लतास, कालीजीरी, प्रियंगु ॥ ३ ॥

चन्दनं पर्पटानन्ताविशालात्रिवृता जलम् ।
कटुत्रिकं खुरासानं पलमेकं पृथक्पृथक् ॥ ४ ॥

चन्दनलाल, पित्तपापड़ा, अनन्तमूल, इन्द्रायण, त्रिवी, सुगन्धबाला, सोंठ, मिरच, पीपल, खुरासानी अजवायन इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक २ पल लें ॥ ४ ॥

द्वाविंशतिपलां पथ्यां जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टावशेषः कर्तव्यः क्वाथः सद्भिषजा ततः ॥ ५ ॥

बड़ी हरड़ें ३२ पल लें । एक द्रोण जल में डालकर सबको पकावे । जब पक कर आठवां भाग क्वाथ शेष रहे तब उतारकर हरड़ों को छानकर पृथक् २ कर लें ॥ ५ ॥

वस्त्रपूता शिवा कार्या तीक्ष्णलोहेन वेधयेत् ।
मधुमध्ये विनिक्षिप्य दिनत्रिःसप्तसंख्यया ॥ ६ ॥

फिर किसी लोहे के तीक्ष्ण नोकदार कांटे से उन हरड़ों को बींधे । फिर शहद के अन्दर इन हरड़ों को २१ दिन तक डुबा रखे ॥ ६ ॥

विनष्टं मधु संत्यज्य मधु श्रेष्ठं पुनः क्षिपेत् ।
ततः सुस्वादसंपन्नां प्रभाते भक्षयेच्छिवाम् ॥ ७ ॥

फिर उस मधु को बिगड़ा हुआ तथा कम हुआ २ देखकर नया श्रेष्ठ शहद और डाल देवे । फिर जब अच्छी स्वादिष्ट हो जावें तब प्रातःकाल एक हरड़ खावें७

विसर्पान्नाशयेत्सर्वान्कुष्ठान्यष्टादशापि च ।
खुडं पामां च कण्डूं च दद्रुविस्फोटविद्रधीन् ॥
अन्यांस्त्वग्दोषजान्रोगांस्तथा रक्तसमुद्भवान् ॥ ८ ॥

इसके सेवन से सभी प्रकार के विसर्परोग नष्ट होते हैं, अठारह प्रकार के कुष्ठरोग नष्ट होते हैं । वातरक्त, पामा, कण्डू, दद्रु, विस्फोट, विद्रधि, अन्य त्वचा के रोग, रक्त से उत्पन्न हुए २ रोग । ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥ इति मञ्जिष्ठाभया ।

द्वन्द्वजे विसर्पे क्रिया—त्रिदोषघ्नीं क्रियां कुर्याद्विसर्पे द्वंद्वसंभवे ।
रसायनानि कुष्ठेषु सर्पींषि क्वाथनानि च ।
चूर्णादीन्यपि सर्वाणि विसर्पेष्वपि तान्यलम् ॥१॥

द्वन्द्वज विसर्प में त्रिदोष नाशक क्रिया करनी चाहिये। कुष्ठरोग में जो रसायन, घी, क्वाथ, चूर्ण कहे गये हैं वे सब विसर्परोग में देने पर्याप्त हैं ॥१॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

विरेको वमनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् ।
पुराणयवगोधूमकङ्गुषष्टिकशालयः ।
मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गलो रसः ॥ १ ॥

विरेचन देना, वमन देना, लेप करना, लंघन करना, खून निकलवाना, पुराने जौ, गेहूं, कंगनी, साठी तथा शालीधान सेवन करना । मूंग, मसूर, चने, अरहर, जांगल जीवों का रस ॥ १ ॥

नवनीतं घृतं द्राक्षा दाडिमं कारवेल्लकम् ।
वेत्राग्रं कुलकं धात्री खदिरो नागकेसरम् ॥ २ ॥

मक्खन, घी, दाख, अनार, करेला, बेत का अगला भाग, परवल, आंवला, खैर, नागकेसर ॥ २ ॥

द्राक्षा शिरीषकर्पूरं चन्दनं तिललेपनम् ।
यथादोषं पथ्यमिदं सेवितव्यं विसर्पिभिः ॥ ३ ॥

दाख, शिरीष अर्थात् सिरस, कपूर, चन्दन, तिल इन का लेप करना । ये सब पथ्य विसर्परोगियों को दोषानुसार सेवन करने चाहियें ॥ ३ ॥

व्यायाममह्नि शयनं सुरतं प्रवातं
क्रोधं शुचं वमनवेगविधारणं च ।
गुर्वन्नपानमखिलं लशुनं कुलित्था-
न्माषांस्तिलान्सकलमांसमजाङ्गलं च ॥
स्वेदं विदाहिलवणाम्लकटूनि मद्य-
मर्कप्रभामपि विसर्पगदी त्यजेच्च ॥ ४ ॥

परन्तु व्यायाम करना, दिन में सोना, मैथुन करना, तीव्र वायु का सेवन करना, क्रोध, शोक, वमन को रोकना तथा अन्य वेगों को रोकना । सभी प्रकार का भारी अन्न तथा पान छोड़ देवे । लहसुन, कुलथ, माष अर्थात् उड़द, तिल, जांगल जीवों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार का मांस । स्वेद लेना, विदाही पदार्थ, लवण, अम्ल तथा कटु पदार्थ, मद्य सेवन तथा सूर्य की धूप ये सब बातें विसर्पवाला रोगी छोड़ देवे ॥ ४ ॥ इति पथ्यापथ्यम् ॥ इति विसर्परोग चिकित्सा ॥

इति हरद्वारीयगुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्माचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां विसर्पचिकित्सा समाप्ता ॥

अथ विस्फोटनिदानम् ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ।
तथर्तुदोषेण विपर्ययैश्च कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही, रूक्ष, क्षार, अजीर्ण, अध्यशन तथा धूप के सेवन से, तथा ऋतुओं के दोष से अर्थात् शीत उष्ण आदि की अधिकता से ऋतुदोष होते हैं ॥ तथा ऋतु के विपर्य्यय से अर्थात् ऋतु के स्वभाव के अन्यथा होने से वातादि तीनों दोष कुपित होजाते हैं ॥ १ ॥

त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च ।
घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

वे पवनादि दोष त्वचा को आश्रय करके रक्त, मांस तथा हड्डियों को प्रदूषित कर के घोर विस्फोटों को करते हैं और ये ज्वर के पूर्वरूप होते हैं अर्थात् उन के पीछे ज्वर हो जाया करता है ॥ २ ॥

अथ तेषां रूपमाह—**अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ।**
क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति संस्मृता ॥ ३ ॥

अग्नि से दग्ध हुए के समान वे स्फोट या छाले ज्वरयुक्त होते हैं तथा रक्त पित्त से उत्पन्न हुए २ होते हैं । ये छाले शरीर में किसी एक भाग में होते हैं । या सारे शरीर में ही होते हैं इन्हें विस्फोट कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातिकमाह—**शिरोरुक्शूलभूयिष्ठज्वरतृट्ज्वरपर्वभेदनम् ।**
सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

वातिक विस्फोट में शिर में पीड़ा होती है, शूल अधिक होता रहता है । ज्वर होता है, तृष्णा होती है तथा पर्वों का भेद अर्थात् सन्धियां टूटती रहती हैं । स्फोटों का रंग काला होता है ॥ ४ ॥

अथ पैत्तिकमाह—**ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ।**
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

पित्तज विस्फोट में ज्वर होता है, दाह होता है, पीड़ा होती है, वे बहते रहते हैं, पक जाते हैं, तृष्णा होती है, पीला तथा लाल रंग होता है । ये सब पित्तज विस्फोट कहाते हैं ॥ ५ ॥

अथ श्लैष्मिकमाह—**छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः ।**
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥

कफज विस्फोट में वमन होती है, अरुचि होती है, जड़ता होती है, कण्डू होती है, विस्फोटों में कठिनता होती है तथा पाण्डु वर्ण होता है । वेदना या पीड़ा नहीं होती, देर में पकते हैं । ये सभी लक्षण कफज विस्फोट के होते हैं ॥ ६ ॥

अथ कफपैत्तिकमाह—**कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ॥ ७ ॥**

जिन विस्फोटों में खुजली हो, दाह हो, ज्वर हो, वमन हो इन्हें कफपैत्तिक समझो ॥ ७ ॥

अथ वातपित्तजमाह—**वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥**

वातपित्तज विस्फोट में तीव्र वेदना होती है।

अथ कफवातिकमाह—**कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ८ ॥**

कफवातज विस्फोट में कण्डू होती है, वे भीगे वस्त्र से लिपटे हुए से प्रतीत होते हैं तथा भारी होते हैं ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजमाह—**निम्नमध्य उन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान्।**
दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः।
प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यस्तु त्रिदोषजः ॥९॥

त्रिदोषज विस्फोट मध्यभाग में नीचा होता है तथा किनारों से ऊंचा होता है। कठोर होता है तथा थोड़ा पकता भी है। दाह होता है, रंगदार अर्थात् कुछ २ लाल होता है, तृष्णा करता है, मोह करता है वमन करता है, मूर्च्छा करता है पीड़ा करता है तथा ज्वर करता है। इसके होने से प्रलाप होता है, कंपन होता है तथा तन्द्रा होती है। यह त्रिदोषज विस्फोट असाध्य होता है ॥९॥

अथ रक्तजमाह—**रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाविद्रुमसंनिभाः।**
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ १० ॥
न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि।

रक्तज विस्फोट लाल रंग के होते हैं, रक्त से हुए २ होते हैं लालरत्ति अथवा मूंगे के समान होते हैं। ये रक्तज तथा पित्तज होते हैं ॥१०॥ ये रक्तज विस्फोट उत्तम सिद्ध योगों से भी अच्छे नहीं होते हैं।

साध्यासाध्यमाह—**एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥११॥**

एक दोषज विस्फोट साध्य होते हैं, द्विदोषज विस्फोट कष्टसाध्य होते हैं ११

सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १२ ॥

सर्व रूप वाले अर्थात् त्रिदोषज विस्फोट जो सभी लक्षणों से युक्त हो, अत्यधिक उपद्रवों वाला हो तथा घोर भयंकर हो वह असाध्य होता है ॥१२॥

विस्फोटानामुपद्रवाः—

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदि व्यथा।
विसर्पज्वरहृल्लासविस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १३ ॥

हिचकी, श्वास, अरुचि, तृष्णा, अंगमर्द अर्थात् अंगडाई आना, हृदय में व्यथा होना, ज्वर होना, हृल्लास होना ये सभी विस्फोटों के उपद्रव हैं ॥ १३ ॥

इति विस्फोटक निदानम्।

अथ विस्फोटचिकित्सा।

तत्राऽऽदौ लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम्।
यथादोषं बलं वीक्ष्य प्रोक्तं युक्तं च रेचनम्॥ १॥

आरम्भ में लंघन कराने चाहियें, फिर वमन करावें फिर पथ्य भोजन देवें। दोषानुसार बल को देखकर विरेचन देवे॥ १॥

अथ क्वाथः। तत्राऽऽदौ वातिके द्विपञ्चमूलादिः—

द्विपञ्चमूलीं रास्नां च दार्व्युशीरं दुरालभाम्।
सामृतं धान्यकं मुस्तां क्वाथयित्वा शृतं पिबेत्।
विस्फोटं वातसंभूतं निहन्त्येतन्न संशयः॥ १॥

दशमूल के दसों द्रव्य, रास्ना, दारुहल्दी, खस, जवासा, गिलोय, धनियां, मोथा इन सब को समभाग लेकर क्वाथ करे। इसे पिलावे तो वातजविस्फोट निस्सन्देह नष्ट होते हैं॥ १॥

अथ पित्तजे द्राक्षादिः—द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः।
कटुकालाजदुस्पर्शैः क्वाथः शर्करया युतः।
विस्फोटं पित्तजं हन्ति सोपद्रवमसंशयम्॥१॥

दाख, गंभारी का फल, खजूर, पटोलपत्र, नीम के पत्ते, बांसे के पत्ते, कुटकी लाजा, जवासा इन सब का क्वाथ कर के खांड मिलाकर पिलावें तो पित्तजविस्फोट उपद्रवसहित हो तो भी निस्सन्देह नष्ट होता है॥ १॥

अथ कफजे भूनिम्बादिः—भूनिम्बनिम्बवासाश्च त्रिफलेन्द्रयवासकाः।
पिचुमन्दः पटोली च क्वाथमेषां सशर्करम्।
पीत्वा विमुच्यते नूनं कफविस्फोटकान्नरैः॥१॥

चिरायता, नीम, बांसा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रयव, जवासा, नीम, पटोलपत्र इनके क्वाथ को खांड मिलाकर पिलावें तो कफज विस्फोट निस्सन्देह नाश होते हैं॥ १॥

अथ द्वादशाङ्गः—किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदपर्पटैः।
पटोलवासकोशीरत्रिफलाकौटजैः शृतम्॥ १॥

चिरायता, नीम, मुलठ्ठी, मोथा, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र, बांसा, खस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, इन्द्रजौ इन सबका क्वाथ पिलावें॥ १॥

द्वादशाङ्गं नरः पीत्वा विस्फोटेभ्यो विमुच्यते।
द्वंद्वजेभ्यस्त्रिदोषोत्थाद्रक्तजाच्च हिताशनः॥ २॥

तो इस द्वादशाङ्ग क्वाथ को पीकर द्वन्द्वज, त्रिदोषज, रक्तज तथा अन्य सभी विस्फोटों से मनुष्य छूट जाता है। इसमें हितकारी पथ्य करना चाहिये॥ १॥

अथामृतादिक्वाथः—अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं

खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे।
शृतमिति स विसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डू-
रपनयति मसूरीं शीतपित्तज्वरं च ॥ १ ॥

गिलोय, बांसा, पटोलपत्र, मोथा, सतौना की छाल, खैर, कालीबेत, नीम के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी इन सबका क्वाथ करके पिलावें तो विसर्प, कुष्ठ, बिस्फोट, कण्डू, मसूरिका तथा शीतपित्त और ज्वर का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ पटोलादिर्वृन्दात—पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः।
खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तये ॥१॥

पटोलपत्र, गिलोय, चिरायता, बांसा, नीम के पत्ते, पित्तपापड़ा, खैर, मोथा इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करें तो विस्फोट ज्वर की शान्ति होती है ॥१॥

अथ निम्बादिः—निम्बत्वक्खादिरः सारो गुडूचीशक्रजोऽथ वा।
क्वाथो माक्षिकसंयुक्तो विस्फोटादिज्वरापहः ॥ १ ॥

नीम की छाल, कत्था, इनका क्वाथ अथवा गिलोय और इन्द्रजौ का क्वाथ शहद मिलाकर पिलावें तो विस्फोटादि ज्वर का नाश करता है ॥ १ ॥

अथ भूनिम्बादिश्चिकित्सासारात्—

भूनिम्बवासाकटुकापटोलं फलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः।
विसर्पदाहज्वरशोफकण्डूविस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः ॥ १ ॥

चिरायता, बांसा, कुटकी, पटोलपत्र, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लालचन्दन, नीम की छाल, इन सबका क्वाथ करके पिलावें तो विसर्प, दाह, ज्वर, शोथ, कण्डू, विस्फोट, तृष्णा तथा वमन इन सबको नाश करता है ॥१॥ इति क्वाथाः।

अथ पद्मकं घृतम्—पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पस्य केशरम्।
हरिद्रे द्वे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगरं तथा ॥ १ ॥

पद्माख, मुलठ्ठी, लोध, नागकेसर, हल्दी, दारुहल्दी, विडंग, छोटी इलायची, तगर ॥ १ ॥

कुष्ठं लाक्षा पत्रकं च सिक्थकं तुत्थमेव च।
तोयेनाऽऽलोड्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

कूठ, लाख, तेजपात, मोम, नीलाथोथा इन सबको पीसकर घी से चौगुने जल में घोल ले। और घी एक प्रस्थ ले। एकत्र करके घी पका लेवे ॥ २ ॥

यांश्च रोगान्निहन्याद्धि तान्निबोध महामुने।
सर्पकीटाखुदष्टेषु नाडीदुष्टविसर्पिषु ॥ ३ ॥

हे महामुने! यह पद्मकघृत जिन रोगों को नाश करता है उनको सुनिये! सांप के काटे में, कीड़ों के काटे में, चूहे के काटे में, नाड़ी व्रण में, दुष्ट व्रण में तथा विसर्प रोगों में ॥ ३ ॥

विविधेऽपि च विस्फोटे लूतामूत्रक्षतेषु च ।
नाडीषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः ॥
आस्तीकविहितं धन्यं पद्मकं तु महद्घृतम् ॥ ४ ॥

विविध विस्फोटों में, मकड़ी के मूत्र आदि से हुए २ व्रणों में, क्षतरोग में। नाड़ी व्रण में, गण्डमाला में, विशेष करके गण्डमाला के फूटने पर आस्तीक मुनि के बनाये हुए इस महापद्मकघृत को प्रयुक्त करें तो ये सभी रोग दूर होते हैं ॥४॥

अथ पञ्चतिक्तकं घृतम्—

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासाफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वम् ।
तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्यात्त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥१॥

पटोलपत्र, सतौना, नीम, बांसा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय इन सबके कल्क से पकाया हुआ घी त्रिदोषज विस्फोट, विसर्प तथा कण्डू को शीघ्र नाश करता है। इसे पञ्चतिक्तघृत कहते हैं ॥ १ ॥

अथ चन्दनादिलेपः—चन्दनं नागपुष्पं च तण्डुलीयकवारिणा ।
शिरीषवल्कलं जाती लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ १ ॥

लालचन्दन, नागकेसर, सिरस की छाल, चमेली के पत्ते इन सबको चौलाई के स्वरस से पीसकर लेप करें तो दाह का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

शोधिते लङ्घिते वान्ते जीर्णशालियवादिभिः ।
मुद्गाढकीमसूराणां रसैर्वाविश्वसंयुतैः ॥ १ ॥

शोधन करने पर, लंघन करने पर, वमन करने पर, पुराने शाली धान तथा जौ आदि का भोजन करावे। मूंग, अरहर, मसूर इनके रस में सोंठ मिलाकर पिलावे ॥ १ ॥

सुनिषण्णकवेत्राग्रतण्डुलीयकटिल्लकैः ।
कुलकाभीरुकैरेभिः सपर्पटसतीनकैः ॥ २ ॥

सुनिषण्णक शाक या चनपत्ती शाक, बेत के अगले भाग का शाक, चौलाई, करेला, पटोल या परवल, शतावर, पित्तपापड़ा, मटर इनके शाक ॥ २ ॥

टङ्कारवेल्लैः कुसुमैर्निम्बपल्लवबिल्वजैः ।
तिक्तयूषसमायुक्तैर्भोजनं संप्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

टेकारी क्षुपका साग, वायविडंग, नीम के कोमल पत्ते, विल के फूल, कड़वे पदार्थों के यूषों से मिलाकर भोजन करे। ये सभी पदार्थ विस्फोटरोग में पथ्य हैं ३

तिलान्माषान्कुलित्थांश्च लवणाम्लकटूनि च ।
विदाहि रूक्षमुष्णं च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥ ४ ॥

परन्तु तिल, उड़द, कुलथ, लवण, अम्ल, कटु, विदाही पदार्थ, रूक्ष तथा

चरम पदार्थ विस्फोट रोगी छोड़ देवे ।४। इति विस्फोटचिकित्सा।

इति हरिद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेणायुर्वेदशास्त्रिणा लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्नीटीकायां विस्फोटचिकित्सा समाप्ता।

अथ स्नायुकनिदानम्।

पूर्वरूपमाह—**शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत्।**

भिनत्ति तत्क्षते तत्र सोष्मा स्नायुं विशोष्य च ॥ १ ॥

बाहु तथा टांगों में कुपित हुए २ दोष विसर्प के समान सूजन को कर के उस सूजन को फिर तोड़ देते हैं। उस क्षतस्थान में उष्णता बढ़कर स्नायु को विशुष्क कर देती है ॥ १ ॥

कुर्यात्तन्तुनिभं जीवं वृत्तं श्वेतद्युतिं बहिः।

शनैः शनैः क्षताद्याति छेदात्कोपमुपैति सः ॥ २ ॥

और उस में लंबे तंतु के समान गोल श्वेत रंगवाले जीव को उत्पन्न कर देती है। वह जीव क्षतस्थान के छेद से धीरे २ बाहर को निकलता है और कोप करता है ॥ २ ॥

तत्पाताच्छोफशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत्।

स स्नायुकेति विख्यातः क्रियोक्तास्तु विसर्पवत् ॥ ४ ॥

उस के बाहर निकाल देने से सूजन की शान्ति होजाती है और वह यदि एक स्थान से दूसरे स्थान में जावे तो फिर वहां सूजन होजाती है। उसे स्नायुक रोग या नहरूवारोग कहते हैं इस में विसर्प के समान क्रिया करे ॥ ३ ॥

बाह्वोर्यदि प्रमादेन जङ्घयोस्त्रुट्यति क्वचित्।

संकोचं खञ्जतां चैव छिन्नतन्तुः करोत्यसौ ॥ ४ ॥

यदि बाहुओं में से या जङ्घाओं में से निकालते समय वह नहरुवा कभी टूट जाये तो टूटने पर इस से भुजाओं का संकोच होजाता है अर्थात बांहें सिकुड़ जाती हैं और टांगें भी सिकुड़ कर खञ्ज होजाती हैं ॥ ४ ॥

अथ वातादिभेदेन लक्षणमाह—

वातेन श्यावरूक्षः सरुगथ दहनान्नीलपीतः सदाहो-

ऽथ श्वेतः श्लेष्मणा स्यात्पृथुगरिमयुतोऽथ द्विदोषो द्विलिङ्गी।

रक्तेनाऽऽरक्तकान्तिः समधिकदहनोऽथाखिलैः सर्वलिङ्गो

रोगोऽसावष्टधेत्थं मुनिभिरभिहितः स्नायुकस्तन्तुकीटः ॥५॥

वात से हुआ २ स्नायुकरोग सांवले रंग का तथा रूखा होता है और शूल युक्त होता है। पित्त से हुआ २ स्नायुकरोग नीले तथा पीले रंग का होता है

तथा उस में दाह होता है। कफ से हुआ २ स्नायुकरोग श्वेत रंग का होता है मोटा तथा भारी होता है। तथा दो २ दोषों से उत्पन्न हुए २ स्नायुकरोग में उन २ दोषों के लक्षण होते हैं। रक्त से हुए २ स्नायुकरोग में कीड़े का रंग कुछ लाल अर्थात् हलका लाल होता है, और दाह अधिक होता है। सभी दोषों से हुआ २ स्नायुकरोग सभी दोषों के लक्षणों से युक्त होता है। इस प्रकार से आठ प्रकार का स्नायुकरोग मुनियों ने कहा है। स्नायुक को तन्तुकीट या नहरुवा कहते हैं ॥ ५ ॥ इति स्नायुकनिदानम् ॥

स्नायुकचिकित्सा।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथामलम्।
अहिंस्रामूलगोमूत्रकल्कालेपस्तु वातजे ॥ १ ॥

दोषानुसार स्नेह, स्वेद तथा प्रलेप आदि कर्म करने चाहियें॥ वातज स्नायुक में कण्टकपाली वृक्ष अथवा कांटा गुड़कांटली नामक वृक्ष की जड़ को गोमूत्र से पीसकर लेप करे तो स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन हितो लेपोऽत्र पित्तजे।
श्लेष्मजे स्नायुके लेपः प्रशस्तः काञ्चनारजः ॥ २ ॥

पित्तज स्नायुकरोग में पञ्चवल्कल वृक्षों की छाल अर्थात् पीपल, बड़, पिलखन गूलर, बेत इन की छाल का कल्क कर लेप करें तो लाभ होता है ॥ श्लेष्मज स्नायुकरोग में कांचनार की छाल को पीसकर लेप करें ॥ २ ॥

तद्द्वाभ्यां द्वंद्वजे लेपः सर्वैस्तैः सर्वजे हितः।
रक्तजे स्नायुके लेपो वटप्लक्षत्वचो हितः।
बिसर्पोक्ताः क्रियाः सर्वाः स्नायुके तु हिता मताः ॥ ३ ॥

द्वन्द्वज स्नायुकरोग में दो २ दोषों के नाशक द्रव्यों को मिलाकर कल्क कर के लेप करे। सभी द्रव्यों को मिलाकर सन्निपातज स्नायुकरोग में प्रलेप करे। रक्तज स्नायुकरोग में बड़ और पिलखन की छाल का लेप करे। विसर्पोक्त सभी क्रियायें स्नायुकरोग में हितकारी होती हैं ॥ ३ ॥ इति सारसंग्रहात् ॥

अथ बब्बूलबीजादिलेपः—बब्बूलबीजं गोमूत्रपिष्टं हन्ति प्रलेपनात्।
स्नायुकानि समस्तानि सशोथानि सरुञ्जि च ॥ १ ॥

बबूल के बीज गोमूत्र में पीसकर प्रलेप करे तो सभी प्रकार के स्नायुकरोग जिन में सूजन भी हो और पीड़ा भी हो नष्ट होजाते हैं ॥ १ ॥

अथ शिग्रुमूलादिलेपः—शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेन ससैन्धवैः।
लेपः स्नायुकरोगाणां शमनः परमः स्मृतः ॥ १ ॥

सुहांजने की जड़ तथा पत्ते, सेंधानमक डालकर कांजी से पीस लें। उसका लेप करें तो स्नायुकरोग को परम शान्त कर देता है ॥ १ ॥

सुधादि लेपः—सुधया सह लोणारं जलेनाऽऽलोड्य लेपयेत्।
अनेन तु प्रयोगेण त्रिदिनादेव नश्यति ॥ २ ॥

दक्षिण देश में प्रसिद्ध लोणारक्षार या लवणक्षार को चूने से मिलादे, इन दोनों को जल से घोलकर स्नायुक स्थान पर लेप कर दे। इस प्रयोग से ३ दिन में ही स्नायुकरोग का नाश हो जाता है ॥ २ ॥

पातालगरुडीमूल योगः—पातालगरुडीमूलं पिबेत्स्नायुकनाशनम्।
तिलपिण्याकलेपो वा क्षारनालेन पेषितः ॥ ३ ॥

पातालगरुडी या छिलहिण्टा बेल की जड़ को पीने से स्नायुक का नाश होता है ॥ अथवा तिल की खली को कांजी में पीसकर लेप करें तो स्नायुक का नाश नाश होता है ॥ ३ ॥

अश्वगंधालेपः—तक्रेण वाऽथ तैलेन ह्यश्वगन्धां प्रलेपयेत्।
श्वेतविष्णुक्रान्तया वा शिग्रुमूलेन वा पुनः ॥ ४ ॥

असगंध की जड़ को छाछ वा तेल से पीसकर प्रलेप करें। अथवा श्वेतकोयल या श्वेत विष्णुक्रान्ता की जड़ को तेल वा तक्र से पीसकर लेप करदे। अथवा सुहांजने की जड़ को तेल वा तक्र से पीसकर लेप करदे। इससे स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥४॥

कांचनीलेपः—पुंमूत्रैः काञ्चनीं पिष्ट्वा लेपः स्नायुकजिद्भवेत्।
वार्ताकमूलं पुंमूत्रैः पत्रैर्वाऽश्वत्थजैश्च वा।
सुतप्तैर्बन्धयेच्छीघ्रं शमयेत्स्नायुकं गदम् ॥ ५ ॥

पुरुष के मूत्र से कचनार की छाल को पीसकर प्रलेप करें तो भी स्नायुक रोग नष्ट होता है। बेंगन की जड़ को पुरुष के मूत्र से पीसकर लेप करें तो भी स्नायुक का नाश होता है। अथवा पीपलवृक्ष के पत्तों को पुरुष के मूत्र में पीसकर गरम २ करके स्नायुक पर बांधदें तो स्नायुकरोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ५ ॥ इति सुश्रुतात्॥

अथ रामठादियोगः—रामठं टङ्कणं क्षारं प्रत्येकं शाणसंमितम्।
चूर्णयित्वा सप्तदिनं खादेत्संध्याद्वये नरः।
अनेन योगराजेन स्नायुको नश्यति ध्रुवम् ॥ १ ॥

हींग, सुहागा, यवक्षार प्रत्येक एक २ शाण लेवें। इन सब का चूर्ण करके प्रातः सायंकाल दोनों संध्या समयों में सात दिन खिलावें तो इस रोगराज से स्नायुकरोग निश्चय से नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथातिविषाद्यं चूर्णम्—

अतिविषमुस्तकभार्ङ्गीविश्वौषधपिप्पलीबिभीतानाम्।
चूर्णं तन्तुकमिघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ १ ॥

अतीस, मोथा, भारंगी, सोंठ, पिप्पली, बहेड़ा, इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे और गरम पानी से पिलावें तो स्नायुकरोग का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ कुष्ठादिकल्कः–कुष्ठरामठशुण्ठीभिः कल्कं शिग्रुसमन्वितम्।
पानलेपनयोगेन तन्तुकीटविनाशनम्॥ १॥

कूठ, हींग, सोंठ, सुहांजने की छाल इन सबको पीसकर कल्क करे इसे पिलावें और इसी का लेप करें तो स्नायुकरोग का नाश होता है॥ १॥

गोघृतादि–गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम्।
पीत्वा स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः॥ २॥

गौ का घी तीन दिन पीवें, निर्गुण्डी का स्वरस तीन दिन पीवें तो अत्युग्र स्नायुकरोग अवश्य ही नष्ट होता है इसमें संशय नहीं है॥ २॥

सुषवीमूलादि–

मूलं सुषव्याहिम वारिपिष्टं पानाद्दिनान्ते तु गदं प्रचण्डम्।
शान्तिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धश्च घृतेन पीतः॥ ३॥

सुषवी अर्थात् काले जीरे वा करेले की जड़ को सुगंधबाला के स्वरस से अथवा बरफ़ के जल से पीसकर दिन के अन्त में पिलावें तो प्रचण्ड व्रणयुक्त स्नायुकरोग को शीघ्र शान्त कर देता है॥ अथवा असगंध को घी से पीवें तो भी स्नायुक का नाश होता है॥ ३॥

पारावतविष्ठायोगः–पारावतपुरीषस्य मधुना कल्कितस्य च।
गिलिता गुटिका हन्ति स्नायुकामयमुद्धृतम्॥ ४॥

कबूतर की बीठ का चूर्ण शहद से मिलाकर कल्क करके गोली बनाकर निगलवा दें तो अत्यन्त बढे हुए स्नायुकरोग को भी नष्ट करती है॥ ४॥

निम्बादिः–निम्बशम्याकजात्यर्कसप्तपर्णाश्वमारकाः।
क्रिमिघ्ना मूत्रसंयुक्ताः सेकलेपनधावनैः॥ ५॥

नीम, अमलतास, चमेली, आक, सतौना, कनेर इनमें से प्रत्येक द्रव्य गोमूत्र से मिलाकर सिंचन करें, लेपकरे या धोवें तो ये सभी प्रयोग क्रिमिरोग को नाश कर देते हैं॥ ५॥

अथ वृन्ताकयोगः—

वृन्ताकं भर्जितं भाण्डे कृत्वा दध्ना सहोपरि।
बन्धयेत्स्नायुको बहिः पतति एवं सप्तदिनं कार्यम्॥ ६॥

बेंगन को एक पात्र में दही के साथ भून ले, उसे स्नायुक पर बांध दे तो स्नायुक या नहरुआ बाहर निकल आता है। ऐसा सात दिन करे॥ ६॥

अथ शणबीजादियोगः—

शणबीजचूर्णं भागमेकं गोधूमपिष्टं भागमेकं
द्वयमेकीकृत्य घृतेन पक्वं गुडेन भक्षयेत्।
एवं त्रिदिनं कार्यं स्नायुको नश्यति।

सन के बीजों का चूर्ण एकभाग, गेहूं का आटा एक भाग, दोनों को मिलाकर घी में भून ले। फिर गुड़ मिलाकर खावे। ऐसे तीन दिन करें तो स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥ इति स्नायुकचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीयश्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्नटीकायां स्नायुकरोगप्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ मसूरिकानिदानमाह—

तत्राऽदौतत्संप्राप्तिमाह—**कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ।**
दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टैः पवनोदकैः ॥
क्रुद्धग्रहेक्षणाद्वाऽपि देहे दोषाः समुद्धताः ॥ १ ॥
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ।
मसूराकृतिसंस्थानाः पिटिकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ २ ॥

कटु, अम्ल, लवण, क्षार, विरुद्ध भोजन तथा अध्यशन करने से, दुष्ट अर्थात् दूषित हुए २ सेम तथा शाक आदि खाने से, प्रदुष्ट हुए २ वायु तथा जल के सेवन से, क्रुद्ध शनि आदि ग्रह की दृष्टि पड़ने से, देह में दोष कुपित होकर दुष्ट रक्त से मिलकर मसूर के आकार और शरीरवाली फुंसियां उत्पन्न कर देते हैं उन्हें मसूरिका कहते हैं ॥ २ ॥

अथ तासां पूर्वरूपमाह—**तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरुचिर्भ्रमः ।**
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररोगस्तथैव च ॥ ३ ॥

इस मसूरिकारोग के होने से पहले ज्वर होता है, कण्डू होती है, अंग टूटते हैं, अरुचि होती है तथा भ्रम होता है। त्वचा में शोथ होता है, विवर्णता होती है तथा नेत्ररोग हो जाते हैं। ये मसूरिका के पूर्वरूप कहाते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातजामाह—**स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः ।**
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसंभवाः ॥ ४ ॥

वातिक मसूरिका में काले तथा लाल फोड़े होते हैं, वे रूखे तथा तीव्र पीड़ा से युक्त होते हैं। कठोर होते हैं और देर में पकते हैं ॥ ४ ॥

संध्यस्थिपर्वणां भेदः कासकम्पारतिभ्रमाः ।
शोथस्ताल्वोष्ठ जिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥ ५ ॥

इस वातजमसूरिका में संधि, अस्थि तथा पर्वों का भेद होता है। कास होता है, कंपकंपी होती है, उदासीनता होती है, भ्रम होता है। तालु, ओष्ठ तथा जिह्वा में शोथ होता है। तृष्णा होती है तथा अरुचि होती है ॥ ५ ॥

पित्तजामाह-रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः।
मृदवोऽचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥

लाल, पीले तथा श्वेत फोड़े होते हैं, दाह तथा तीव्र वेदना से युक्त होते हैं। फोड़े मृदु होते हैं तथा शीघ्र पक जाते हैं। ये सभी पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हुई २ मसूरिका के लक्षण हैं ॥ ६ ॥

विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा।
मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ ७ ॥

इस पित्तज मसूरिकारोग में मल टूट २ कर आता है, अंग टूटते हैं, दाह होता है, तृष्णा तथा अरुचि होती है। मुख पक जाता है तथा आंखें पक जाती हैं, भयंकर तीव्र ज्वर होजाता है ॥ ७ ॥

रक्तजामाह—रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः।

रक्तज बवासीर में सभी लक्षण पित्तज मसूरिका के समान होते हैं ॥

अथ कफजामाह—कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ॥ ८ ॥

कफज मसूरिकामें मनुष्य कफ थूकता है, भीगे वस्त्र से लिपटा हुआ सा शरीर प्रतीत होता है। सिर में पीड़ा होती है, गात्र भारी हो जाते हैं ॥ ८ ॥

हृल्लासश्चारुचिर्निद्रा तन्द्राऽऽलस्यसमन्विताः।
श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥

हृल्लास होता अर्थात् जी मतलाता है, अरुचि होती है, निद्रा होती है तन्द्रा तथा आलस्य होता है श्वेत, स्निग्ध, अति स्थूल, खुजली से युक्त तथा मन्द पीड़ावाली फुंसियां होती हैं। यह कफज मसूरिका बहुत देर में पकती है ॥ ९ ॥

अथ संनिपातजामाह—नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः।
प्रभूताश्चिरपाकाश्च पूतिस्रावास्त्रिदोषजाः ॥१०॥

त्रिदोष से उत्पन्न हुई मसूरिका की फुंसियां नीले रंग की होती हैं, चिउड़े के समान चपटी तथा फैली हुई होती हैं, मध्य में से दबी हुई होती हैं और किनारों से उठी हुई होती हैं। महापीड़ादायक होती हैं। बहुत होती हैं तथा देर में पकती हैं। उन में से दुर्गन्धित स्राव निकलता है॥ १० ॥

चर्मपिटिकामाह—कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्राप्रलापारतिसंयुताः।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिटिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ ११ ॥

चर्मपिटिकारोग में कण्ठ रुक जाता है, अरुचि होती है, तन्द्रा होती तथा प्रलाप होता है, उदासीनता अथवा बेचैनी होती है। यह चर्मपिटिका दुश्चिकित्स्य अर्थात् कष्टसाध्य होती है ॥ ११ ॥

रोमान्तिका आह—रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः।
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १२ ॥

रोमकूपों की ऊंचाई के समान ऊंची, लाल रंगवाली, कफपित्त से उत्पन्न हुई २, कास तथा अरुचि से युक्त, ज्वर से पूर्व होनेवाली रोमान्तिका नाम की फुंसियां होती हैं ॥ १२ ॥

अथ सप्तधातुगताः ।

तत्र रसजाः—तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गतास्तु मसूरिकाः ।
स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ १ ॥

रसधातु वा त्वचा में होनेवाली मसूरिका पानी के बुलबुले के समान होती है । यह अल्पदोषों के कारण ही उत्पन्न होजाती है । फूटने पर इस में से पानी निकलता है ॥ १ ॥

अथ रक्तजामाह—रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ २ ॥

रक्तधातुगत मसूरिका लाल रंग की होती है, शीघ्र पक जाती है, उनकी त्वचा या खाल पतली होती है । इसमें दोष अत्यन्त दूषित नहीं हो जाते । इस कारण साध्य होती है । इसकी पिडिकाओं के फूटने पर रक्त निकलता है ॥२॥

अथ मांसस्थामाह—मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ।
गात्रशूलोऽरतिकण्डूस्तृष्णाज्वरसमन्विताः ॥ ३ ॥

मांसगत मसूरिका कठिन होती है, स्निग्ध होती है, देर में पकती है तथा फुंसियों की खाल पतली होती है अंगों में शूल होता है, बेचैनी होती है, खुजली होती है, तृष्णा तथा ज्वर होता है ॥ ३ ॥

मेदोगतामाह—मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किंचिदुन्नताः ।
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ।
संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ ४ ॥

मेदधातुगतमसूरिका मण्डलाकार अर्थात् घेरेदार होती है, कोमल तथा कुछ २ ऊंची उठी हुई फुंसियां होती हैं । घोर ज्वर से रोगी पीड़ित रहता है । फुंसियां स्थूल होती हैं, स्निग्ध तथा पीड़ा युक्त होती हैं। रोगी को संमोह होता है, बेचैनी होती है तथा सन्ताप होता है, इनसे कोई मनुष्य ही बचकर उठता है अन्यथा इसके होने पर मनुष्य की प्रायः मृत्यु हो जाती है ॥ ४ ॥

अस्थिमज्जागतामाह—क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किंचिदुन्नताः ।
मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारातिसंयुताः ॥ ५ ॥

अस्थि तथा मज्जा में हुई २ मसूरिका छोटी २ गात्र के समान, रूखी, चिपटी तथा कुछ २ उठी हुई होती हैं । बार २ संमोह, वेदना तथा बेचैनी करती है ॥५॥

छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च ।
भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ॥ ६ ॥

मर्मस्थानों को छेदन करती हुई शीघ्र ही प्राणों को हर लेती हैं। और हड्डियां भौरों से बिद्ध या काटी हुई के समान सब ओर से हो जाती हैं॥ ६॥

अथ शुक्रगतामाह—पक्काभाः पिटिकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः।
स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः॥ ७॥

वीर्य धातु में हुई २ मसूरिका में पिड़िकायें पकी हुई सी प्रतीत होती हैं, स्निग्ध होती हैं, श्लक्ष्ण होती है तथा अत्यन्त पीड़ा वाली होती हैं। भीगे कपड़ों से लिपटी हुई सी प्रतीत होती हैं। शरीर में बेचैनी होती है, संमोह, दाह तथा उन्माद होता है॥ ७॥

शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि।
निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम्॥ ८॥

ये सब लक्षण शुक्रज मसूरिका में होते हैं। ये लक्षण और चिन्ह लिख दिये गये हैं परन्तु इस मसूरिका के होने पर जीवन नहीं बचता अवश्य मृत्यु हो जाती है॥ ८॥ इति सप्तधातुगताः।

साध्यासाध्यत्वमाह।

दोषमिश्राश्च सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः।
त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा॥ १॥

वातादि दोषों के लक्षणों से इन सातों मसूरिकाओं को दोषों से युक्त जानना चाहिये। त्वचागत मसूरिका, रक्तज मसूरिका, पित्तज तथा श्लेष्मज मसूरिका॥१॥

श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः।
एता विनाऽपि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम्॥ २॥

कफपित्तज मसूरिका ये सभी सुख साध्य हैं। ये मसूरिकायें बिना चिकित्सा किये भी स्वयं शान्त हो जाती हैं॥ २॥

वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः।
कृच्छ्रसाध्या मतास्तस्माद्यत्नादेता उपाचरेत्॥ ३॥

वातजमसूरिका, वातपित्तजमसूरिका, कफवातजमसूरिका ये सब कष्टसाध्य होती है। इसलिये इनकी यत्न से चिकित्सा करे॥ ३॥

अतोऽन्यास्तु विनिर्दिष्टा यास्तु सम्यक्क्रियां विना।
न सिध्यन्ति यतस्तस्मात्तास्तु यत्नादुपाचरेत्॥ ४॥

इनके अतिरिक्त शेष सभी मसूरिकायें ठीक प्रकार से चिकित्सा न करने से सिद्ध नहीं होती हैं इस कारण उनकीचिकित्सा यत्न से करे॥ ४॥

असाध्याः संनिपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्।
प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः॥ ५॥

सांनिपातज मसूरिकायें असाध्य होती हैं। उनका लक्षण लिखते हैं इनमें से

कुछ तो प्रवाल या मूंगे के सदृश लाल होती हैं, कुछ जामुन के फल के समान बड़ी तथा रंगदार होती हैं ॥ ५ ॥

लोहजालनिभाः काश्चिदतसीफलसंनिभाः।
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ ६ ॥

कोई लोहे के जाल के समान काले रंग की होती है, कोई अलसी के फल के समान रंग वाली होती है। दोषों के भेद से इनके अनेक प्रकार के रंग होते हैं ॥६॥

सर्वमसूरिकाया आवस्थिकं लक्षणमाह—

कासो हिक्का प्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः।
प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ ७ ॥

जब कास हो, हिचकी हो, प्रमोह हो, तीव्र भयंकर ज्वर हो, प्रलाप, बेचैनी, मूर्च्छा, तृष्णा, दाह तथा अति जंभाईयें आती हों ॥ ७ ॥

मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा।
कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ ८ ॥

मुखसे, नाकसे तथा आंखों से खून निकलता हो, रोगी कण्ठ में घुर्घुर शब्द करता हुआ अत्यन्त कठिनता से सांस लेता हो ॥ ८ ॥

मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरः।
लक्षणानीह दृश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ९ ॥

ऐसे लक्षणों वाला मसूरिका का रोगी हो तो उसे दवाई नहीं देनी चाहिये क्योंकि वह असाध्य होता है ॥ ९ ॥

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत्।
स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णार्तो वायुदूषितः ॥ १ ॥

मसूरिका का रोगी यदि लगातार बार २ नाक से सांस लेवे और तृष्णा से भी बार २ व्याकुल रहे तो वायु से दूषित हुआ २ वह प्राणों को त्याग देता है अर्थात् वह भी असाध्य है ॥ १० ॥

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके।
तथांऽसफलके वाऽपि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ ११ ॥

मसूरिका के अन्त में कोहनी तथा कलाई और कंधे में भयंकर शोथ हो जाता है वह कष्टसाध्य होता है ॥ ११ ॥ इति मसूरिकानिदानम् ॥

अथ मसूरिकाचिकित्सामाह।

मसूरिकायां कुष्ठोक्ता लेपनादिक्रिया हिता।
पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया वाऽत्र प्रशस्यते ॥ १ ॥

मसूरिका रोग में कुष्ठरोग में कही हुई लेपन आदि क्रिया हितकर है। अथवा पित्त कफज विसर्प रोगमें कही हुई क्रिया भी इस मसूरिका रोग में करनी प्रशस्त है॥१॥

सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टवासकैः।
कषायश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः॥ २॥

सभी मसूरिकाओं में पहले पटोलपत्र, नीमपत्र, तथा बांसा इनके क्वाथ से वमन कराना उत्तम है। अथवा बच, इन्द्रजौ, मुलठी तथा हरड़, बहेड़ा, आंवला इनके कल्क से क्वाथ बनाकर पिलावे तो इससे भी लाभ होता है॥ २॥

सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्मीरसं वा हिलमोचकम्।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनं त्वबले नरे॥
उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिकाः॥ ३॥

अथवा ब्रह्मी बूटी का स्वरस शहद मिलाकर पिलावें। अथवा हिलमोचा वा हरहुच के शाक का स्वरस शहद मिलाकर देने से भी लाभ होता है। जब रोगी वमन कर चुके तो विरेचन देवे। परन्तु निर्बल रोगी को शमन औषध देवे। जब वमन तथा विरेचन दोनों ओर से दोषों को निकाल दिया जाये तो मसूरिका सूख जाती है॥ ३॥

अथ वेणुत्वगादिधूपः—वेणुत्वक्सुरसालाक्षाकार्पासास्थिमसूरिकाः।
यवपिष्टं विषं सर्पिर्वचा ब्राह्मी सुवर्चला॥ १॥

बांस की छाल, तुलसी, लाख, कपास की लकड़ी, मसूर की दाल, जौ की पीठी, मीठा तेलिया, घी, बच, ब्राह्मीबूटी, सूर्यमुखी॥ १॥

धूपनार्थे यथालाभं धूपमेनं प्रयोजयेत्।
आदावयं प्रयोक्तव्यो नश्यन्त्यस्मान्मसूरिकाः॥
न गृह्णन्ति विषं केचिद्यथालाभं श्रुतेरिह॥ २॥

इन में से जितने द्रव्य मिलें उन्हें एकत्र करके इनकी धूप देवे। आरम्भ में इस धूप को देवें इससे मसूरिका नष्ट हो जाती है। यहां पर अनेक वैद्य मीठा तेलिया विष को ग्रहण नहीं करते। वे वैद्य बिना विष के ही जितनी शेष औषधें मिलें उनकी धूप देते हैं॥ २॥

अथ श्वेतचन्दनादिः—श्वेतचन्दनकल्काढ्यं हिलमोचाभवं द्रवम्।
पिबेन्मसूरिकारम्भे नैम्बं वा केवलं रसम्॥ १॥

हिलमोचा या हरहुच का स्वरस श्वेत चन्दन के कल्क से मिलाकर पिलावें अथवा नीम का स्वरस ही केवल मात्र लेकर मसूरिका के आरम्भ में पिलावें तो मसूरिका में लाभ होता है॥ १॥

अथ गुडूच्यादिः—गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह।
पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम्॥
तेन कुप्यति नो वायुः पाकं यान्ति मसूरिकाः॥ २॥

गिलोय, मुलठी, दाख, अंकोल इनके चूर्ण को अनार के स्वरस तथा गुड से मिलाकर मसूरिका के पकने के समय पिलावें तो उससे वायु भी कुपित नहीं

होती और मसूरिका भी पक जाती है ॥ २ ॥

अथ बृहत्पटोलादिक्वाथः—

पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी।
खदिरः पिचुमन्दश्च बला धात्री विकङ्कतः॥
एषां कषायपानं तु हन्ति वातमसूरिकाम् ॥ १ ॥

पटोलपत्र, शारिवा, नागरमोथा, पाठा, कुटकी, खैर, नीम, खिरेंटी, आंवला, विकङ्कतवृक्ष की छाल इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करके पिलावे तो वातज मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ दशमूलादिः—**द्वे पञ्चमूल्यौ रास्ना च धात्र्युशीरं दुरालभा।**
सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् ॥ १ ॥

दशमूल के दश द्रव्य, रास्ना, आंवला, खस, जवासा, गिलोय, धनियां, मोथा, इन सब में से प्रत्येक द्रव्य एक २ भाग लेकर क्वाथ करें। इसके पिलाने से वातज मसूरिका में लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ न्यग्रोधादिलेपः—**न्यग्रोधप्लक्षमञ्जिष्ठाशिरीषोदुम्बरत्वचाम्।**
ससर्पिष्कं मसूर्यां तु वातजायां प्रलेपनम् ॥ १ ॥

बड़ की छाल, पिलखन की छाल, मंजीठ, सिरस की छाल, गूलर की छाल इनको पीसकर घी मिलाकर वातज मसूरिका में प्रलेप करे ॥ १ ॥

पित्तजायां क्रिया—**शोधनं पित्तजायां न कार्यं वैद्येन जानता।**
तत्राऽऽदौ तर्पणं कार्यं लाजचूर्णैः सशर्करैः ॥ २ ॥

विद्वान वैद्य पित्तज मसूरिका में पहले शोधन न करे। वहां पर पहले लाजा के चूर्ण में खांड मिलाकर पहले रोगी को तर्पण करावे ॥ २ ॥

आदावेव मसूर्यां तु पित्तजायां प्रयोजयेत्।
निम्बादिकथितं तेन प्रशाम्यति मसूरिका ॥ ३ ॥

आदि में ही पित्तज मसूरिका में निम्बादिक्वाथ जो आगे लिखेंगे पिलाना चाहिये इससे मसूरिका शान्त होती है ॥ ३ ॥

तद्यथा निम्बादिक्वाथः—**निम्बः पर्पटकं पाठा पटोलं चन्दनद्वयम्।**
वासा दुरालभा धात्री सेव्यं कटुकरोहिणी ॥४॥

नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाठा, पटोलपत्र, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, बांसा जवासा, आंवला, खस, कुटकी ॥ ४ ॥

एतेषां क्वथितं शीतं सितया मधुरीकृतम्।
मसूरिकां पित्तकृतां हन्ति रक्तोत्तरामपि ॥ ५ ॥

इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करे। इस क्वाथ को शीतल करके खांड मिलाकर मीठा करके पिलावें तो पित्तज तथा रक्तज मसूरिका का भी नाश होता है ॥ ५

अथ द्राक्षादिः—**द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः।**

लाजामलकदुस्पर्शैः कथितं शर्करान्वितम् ॥
मसूरिकां पित्तकृतां रक्तजां च विनाशयेत् ॥ १ ॥

दाख, गम्भारी का फल, खजूर, पटोलपत्र, नीम की छाल, बांसा, धान की खीलें, आंवला, जवासा इन सबको समभाग लेकर क्वाथ करके खांड मिलाकर पिलावें तो पित्तज तथा रक्तज मसूरिका का नाश होता है ॥ १ ॥

अथ पञ्चमूलादिक्वाथः—बृहतः पञ्चमूलस्य वृषपत्रयुतस्य च।
कषायः शमयेत्पीतः कफोत्थां तु मसूरिकाम् ॥ १ ॥

बिल की छाल, गंभारी की छाल, पाटला की छाल, अरणी की छाल, श्योणाक की छाल इन सब बड़े पञ्चमूल के द्रव्यों को पृथक् २ एक २ भाग लेवे, बांसे के पत्ते एक भाग ले, सब को मिलाकर क्काथ करे। इस क्काथ से कफजमसूरिका का नाश होता है ॥ १ ॥

वृषपत्ररसः—वृषपत्ररसं दद्यात्पानार्थं मधुसंयुतम्।
कफजायां मसूर्यां तु कठिनायां विशेषतः ॥ २ ॥

बांसे के पत्तों का स्वरस शहद मिलाकर पिलावें। तो कफज मसूरिका जो कठिन होती है उस में लाभ होता है ॥ २ ॥

खदिरादिलेपः—खदिरारिष्टपत्रैश्च शिरीषोदुम्बरत्वचाम्।
कुर्याल्लेपं कफोत्थायां मसूर्यां भिषगुत्तमः ॥ ३ ॥

खैर, नीम के पत्ते, सिरस की छाल तथा गूलर की छाल इन सब को मिला कर पीसकर लेप करे तो कफज मसूरिका में लाभ होता है ॥ ३ ॥

अथ दुरालभादिः—दुरालभा पर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी।
पिबेन्मसूर्यामेतेषां क्वाथं पित्तकफात्मनि ॥ ४ ॥

जवासा, पित्तपापड़ा, पटोलपत्र, कुटकी इन सब को समभाग लेकर क्वाथ कर के पित्तकफात्मक मसूरिकारोग में देवे तो लाभ होता है ॥ ४ ॥

अथ गुडूच्यादिः—गुडूचीपर्पटानन्ताकटुकाक्कथितं पिबेत्।
वातपित्तमसूर्यां तु घोरोपद्रवभाजि च ॥ १ ॥

गिलोय, पित्तपापड़ा, अनन्तमूल, कुटकी इन का क्वाथ वातपित्तजमसूरिका में जिस में घोर उपद्रव भी हों देवें तो लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ नागरादिः—नागरमुस्तगुडूचीधान्यकभार्ङ्गीवृषैः कृतः क्वाथः।
वातश्लेष्ममसूरीं दूरीकुरुतेऽनुपानतः सत्यम् ॥ १ ॥

सोंठ, मोथा, गिलोय, धनियां, भारंगी, बांसा इन सब का क्वाथ पीने से सत्य ही वातकफज मसूरिकारोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ निम्बादिक्वाथः—निम्बः पर्पटकं पाठा पटोलं कटुरोहिणी।
वासा दुरालभा धात्री ससेव्यं चन्दनद्वयम् ॥१॥

नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पाठा, पटोलपत्र, कुटकी, बांसा, जवासा,

आंवला, खस, लालचन्दन, श्वेत चन्दन ॥ १ ॥

एष निम्बादिकः क्वाथः पीतः शर्करयान्वितः।
मसूरीं सर्वजां हन्ति ज्वरवीसर्पसंयुताम् ॥ २ ॥

यह निम्बादिक क्वाथ खांड मिलाकर पिलाने से सर्वदोषज मसूरिका को जिस में ज्वर और वीसर्प भी हों नाश करता है ॥ २ ॥

अथ काञ्चनारादिक्वाथः—**काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः।**
निर्गत्यान्तः प्रविष्टां तु मसूरीं बाह्यतो नयेत् ॥१॥

कचनार की छाल का क्वाथ स्वर्णमाक्षिक की भस्म के साथ मिलाकर पिलावें तो जो निकल कर फिर अन्दर घुस गई हो ऐसी मसूरिका को भी यह क्वाथ बाहर निकाल देता है ॥ १ ॥

अथ पटोलादिः—**पटोलकुण्डलीमुस्तावृषधन्वयवासकैः।**
भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च श्रृतं जलम् ॥ १ ॥

पटोलपत्र, गिलोय, मोथा, बांसा, धमासा, चिरायता, नीम, कुटकी, पित्तपापड़ा इन सब को समभाग लेकर विधिपूर्वक पकाया हुआ जल ॥ १ ॥

मसूरीं शमयेदामां पक्वां चैव विशोधयेत्।
नातः परतरं किंचिच्छीतलाज्वरशान्तये ॥ २ ॥

आम मसूरी को अर्थात् अपक्व मसूरी को शान्त करता है और पकी हुई को विशुद्ध करता है। इस से बढ़कर और कोई औषध शीतलाज्वर को नाश करने के लिये नहीं है ॥ २ ॥

दाहे ज्वरे विसर्पे च व्रणे पित्ताधिकेऽपि च।
मसूर्यो रक्तजा नाशं यान्ति शोणितमोक्षणैः ॥ ३ ॥

दाह में, ज्वर में, विसर्प में, व्रण में, पित्ताधिक्य में भी यह क्वाथ लाभ देता है। रक्तजमसूरिका रक्त निकलवा देने से शान्त होती है ॥ ३ ॥

कण्ठव्रण चिकित्सा—**धात्रीफलं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम्।**
मुखे कण्ठे व्रणे जाते गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥ ४ ॥

आंवले, मुलठी इन दोनों को उबाल कर शहद मिलाकर गण्डूष धारण करें अर्थात् कुल्ले करें तो मुंह और गले के व्रण अच्छे होजाते हैं ॥ ४ ॥

अक्षिव्रणसेकः—**अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधूमधुकाम्बुना।**
मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वीत्वङ् नीलमुत्पलम् ॥ ५ ॥

आंखों में गवेधुक या गरहेड़वा धान और मुलठी का क्वाथ सिंचन करें। मुलठी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, मूर्वामूल, दारुहल्दी, दारचीनी, नीलाकमल ॥५॥

उशीरलोध्रमञ्जिष्ठाः प्रलेपाश्चोतने हिताः।
नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न भवन्ति च ॥ ६ ॥

खस, लोध, मंजीठ, इन सबको पीसकर आंखों पर लेप करें या पकाकर क्वाथ का आश्च्योतन करें तो आंखों में हुई २ मसूरिका नष्ट हो जाती है तथा पहले से ही आंखों में डालें तो कभी आंखों में मसूरिका नहीं निकलेगी ।।६।।

अथाञ्जनम्—**शम्बूकमांसस्वरसेन नेत्रे समञ्जयेत्तेन मसूरिकाभ्यः।**

न जायते तत्र भयं भवन्ति नैताः प्रजातास्तु शमं प्रयान्ति ॥ १ ॥

शम्बूक या घोंघे के मांस का स्वरस आंख में डालें तो आंखों में मसूरिका का भय नहीं होता है। फिर मसूरिका आंखों में नहीं होती है, हो गई हों तो इस का स्वरस डालने से नष्ट हो जाती हैं ॥ १ ॥ इत्यञ्जनम् ॥

अक्ष्णोःप्रलेपमाह—**प्रलेपं चक्षुषोर्दद्याद्बहुवारस्य वल्कलैः।**

लसूड़े की छालको पीसकर आंखों पर लेप करें ॥

क्लेदिन्यवधूलनम्—**पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवधूलयेत् ॥ १ ॥**

जिस मसूरिका में अधिक स्राव निकलता हो और व्रण सदा गीले रहते हों उसपर पञ्चवल्कल अर्थात् पीपल की छाल, बड़ की छाल, पिलखन की छाल, गूलर की छाल तथा बेत की छाल इन का चूर्ण समभाग करके मिलाकर छिड़कें। इस चूर्ण को व्रणों पर छिड़कने से व्रण सूख जाते हैं ॥ १ ॥

गोमयरेणुनावधूलनम्—**भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना।**

निम्बातिमुक्तकास्फोताबिम्बीवेतसवल्कलम् ॥२॥

कोई वैद्य व्रणों पर गोबर की राख, कोई वैद्य सूखे हुए गोबर का चूर्ण छिड़कते हैं कोई २ नीम, तिंदुक या तेंदवृक्ष, हाफरमाली या कचनार, बिम्बी तथा बेत इनकी छाल का क्वाथ ॥ २ ॥

शृतशीतं प्रयोक्तव्यं मसूरीव्रणधावने।

पकाकर शीतल करके मसूरी के व्रणों को धोवें तो लाभ होता है ॥

रालादिधूपनम्—**रालहिङ्गुरसोनैश्च धूपयेत्ता मसूरिकाः।**

कृमयो न पतन्त्यत्र जाताः शाम्यन्ति ते लघु ॥ ३ ॥

राल, हींग, लसुन इन सबको समभाग लेकर उनको कूटकर एकत्र करें। इसे जलाकर इसकी धूनी देने से मसूरिका के व्रणों में कीड़े नहीं पड़ते, और यदि कुछ पड़गये हों तो शान्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ मसूरिकाभेदस्य शीतलाया अधिकारः।

तत्र शीतलाया रूपमाह भावप्रकाशात्—

देव्या शीतलया क्रान्ता मसूर्यैव हि शीतला।

ज्वर एव यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥ १ ॥

जैसे ज्वर ही जब भूतों अर्थात् सूक्ष्म जीवाणुओंसे अधिष्ठित होजाता है तो विषमज्वर कहाता है इसी प्रकार से दिव्यगुण युक्त शीतला नामक सूक्ष्म भूत या जीवाणुओं से

जब मसूरीरोग अक्रान्त हो जाता है तो वह शीतला कहाता है ॥ १ ॥

सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्ष्महे।
ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥ २ ॥

वह शीतलारोग सात प्रकार का होता है, उनका भेद आगे कहेंगे। जिसमें पहले ज्वर होवे और फिर बड़े २ फोड़े निकल आवें तो उसे बृहती शीतला या बड़ी माता कहते हैं ॥ २ ॥

सप्ताहान्निःसरत्येषा सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत्।
ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति त्वचम् ॥ ३ ॥

यह शीतला एक सप्ताह में निकलती है और एक सप्ताह में पूर्णता को प्राप्त हो जाती है फिर तीसरे सप्ताह में सूख जाती हैं तथा त्वचा झड़ जाती है ॥ ३ ॥

तासां मध्ये यदा काश्चित्पाकं गत्वा स्रवन्ति च।
तत्रावधूलनं कुर्याद्वनगोमयभस्मना ॥ ४ ॥

उन में जब कुछ शीतलाओं की फुंसियां पककर बहती हों तो जंगली उपलों की राख उनपर छिड़कनी चाहिये ॥ ४ ॥

निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत्।
जलं च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तप्तकम् ॥ ५ ॥

नीम की शाखा वा कमल की शाखा से मक्खियों को व्रणों पर से उड़ाता रहे। ज्वर हो तो भी शीतल जल पीने को देवे, गरम जल कदापि न देवे ॥ ५ ॥

स्थापयेत्तं स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले।
नाशुचिः संस्पृशेत्तं तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ६ ॥

रोगी को पवित्र रमणीक, एकान्त तथा शीतल स्थल में सुलावे ॥ अपवित्र मनुष्य रोगी को न छुए, न उसके पास जावे ॥ ६ ॥

बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि।
केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तेषामथो ब्रुवे ॥ ७ ॥

बहुत से वैद्य इस रोग में औषध नहीं देते, कुछ देते भी हैं। उनके मतानुसार आगे औषध लिखते हैं ॥ ७ ॥

प्रतिषेधकं चिंचाबीजादिः—**ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्य-**
क्चिञ्चोत्थबीजसहितां रजनीं पिबन्ति।
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे
पीडाकरा जगति शीतलिकाविकाराः ॥ ८ ॥

जो लोग शीतल जल से इमली के बीज और हल्दी को पीसकर पीते हैं उनके देह में कभी भी शीतला के पीड़ा करने वाले विकार नहीं होते ॥ ८ ॥

मोचारसादि—**मोचारसेन सहितं सितचन्दनं ये**

वासारसेन मधुकं मधुकेन वाऽथ ।
आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं
ते नाऽऽप्नुवन्ति भुवि शीतलिकाविकारम् ॥ ६ ॥

केले के स्वरस के साथ श्वेत चन्दन को जो पीते हैं, जो बांसे के स्वरस के साथ मुलहठ्ठी को पीते हैं। अथवा मुलहठी को मुलहठी के स्वरस के साथ पीते हैं। अथवा चमेली के स्वरस से मुलहठी को पीते हैं ॥ इन में से कोइ प्रयोग शीतला के आरम्भ में पीने से शीतला के विकार फिर कभी नहीं होते ॥६॥

अन्या बन्धनक्रिया—शीतलासु क्रिया कार्या शीतलारक्षया सह ।
बध्नीयान्निम्बपत्राणि परितो भवनान्तरे ॥ १० ॥

शीतलारोग में शीतला देवी से रक्षा करने वाली क्रियाओं के साथ २ (anticeptic measures) अन्य औषध करने चाहियें । मकानों के अन्दर सभी ओर नीम के पत्ते बांध देने चाहिये ॥ १० ॥

अस्पृश्यप्रवेशनिषेधः—कदाचिदपि नो कार्यमस्पृश्यस्य प्रवेशनम् ।
स्फोटेष्वधिकदाहेषु क्षारेणूत्करो हितः ॥११॥
तेन ते शोषमायान्ति प्रकोपं न भजन्ति च ।

कभी २ अस्पृश्य प्राणी को उस मकान में नहीं घुसने देना चाहिये जहां रोगी पड़ा हो। अधिक दाह वाले स्फोटों में राख छिड़कनी चाहिये ॥११॥ इससे वे फोड़े सूख जाते हैं और बिगडते नहीं ।

चन्दनादिकषायः—चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह ।
एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः ॥ १२ ॥

चन्दन, बांसा, मोथा, गिलोय, दाख इनका क्वाथ शीतल करके पिलावें तो शीतला ज्वर का नाश होता है ॥ १२ ॥

जपादि—जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः ।
विप्रगोशंभुगौरीणां पूजनैस्ताः शमं नयेत् ॥ १३ ॥

जप, होम, उपहार, दान, स्वस्तिवाचन, पूजन, ब्राह्मण, गौ, महादेव तथा गौरी का पूजन करने से शीतला की शान्ति होती है ॥ ११ ॥

स्तोत्रं च शीतलादेव्याः पठेच्छीतलिनोऽन्तिके ।
ब्राह्मणः श्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ १४ ॥

शीतला देवी का स्तोत्र शीतला वाले रोगी के पास ब्राह्मण श्रद्धा से पढ़े उस से शीतला शान्त होती है ॥ १४ ॥

अथ शीतलाया भेदानाह—कफमारुतसंभूतः कोद्रवो नामतो गदः ।
अपाकः कोद्रवाकारः सूचीनिस्तोदकारकः ॥१॥

कफ तथा वात से उत्पन्न हुआ २ कोद्रव नाम का एक रोग होता है, वह पकता नहीं, कोदों के आकार जैसा होता है तथा सुइयों की तरह चुभता है ॥१॥

जलशूक इवाङ्गेषु विध्यतीव विशेषतः ।
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौषधैः ॥ २ ॥
यदि वा भेषजं दद्यात्खदिराष्टकनिर्मितम् ।
कषायं हि तदा दद्यात्कोद्रवस्य प्रशान्तये ॥ ३ ॥

जल शूक कीड़े के समान अंगों को बींधता रहता है । सात दिन में वा दस दिन में बिना औषध के यह रोग स्वयं शान्त हो जाता है ॥ ३ ॥

खदिराष्टकः--खदिरत्रिफलानिम्बपटोलामृतवासकाः ।
अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठकण्डूविस्फोटकानि च ॥ ४ ॥
विसर्पपामाकिटिभं शीतपित्तमसूरिके ।

खैर की छाल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीम की छाल, पटोलपत्र, गिलोय, बासा इन आठों द्रव्यों को पका कर पीया जाये तो कुष्ठ, कण्डू तथा विस्फोटकों का नाश होता है ॥ ४ ॥ विसर्प, पामा, किटिभ शीतपित्त तथा मसूरिका ये सभी रोग इससे नाश होते हैं ।

सुखसाध्यत्वादिकथनम्—

काश्चिद्विनाऽपि यत्नेन सुखं सिध्यन्ति शीतलाः ॥ ५ ॥

कोई २ शीतला बिना यत्न के स्वयं ही सिद्ध हो जाती हैं ॥ ५ ॥

दुष्टाः कष्टतराः काश्चित्काश्चित्सिध्यन्ति वा न वा ।
काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सिताः ॥ ६ ॥

कोई २ दुष्ट शीतला कष्ट से सिद्ध होतीं हैं, कोई सिद्ध भी हो जातीं हैं कोई नहीं भी होतीं, कोई २ शीतला चिकित्सकों के यत्न करने पर भी सिद्ध नहीं होती है ६

अथ पथ्यापथ्यम् ।

जीर्णाः षष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्गा मसूरायवाः
सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटकापृष्ट्याह्वदात्यूहकाः ।
कर्कोटं कदलं च शिग्रु कुलकं द्राक्षाफलं दाडिमं
मेध्यं बृंहणमन्नपानमखिलं कोलानि मांसो रसः ॥ १ ॥

पुराने साठी के चावल, चने, मूंग, मसूर, जौ, सभी प्रतुद जीव, कबूतर, चिड़ा, पृष्टि नामक जीव, तोता, ककोड़ा, केला, सुहांजना, परवल, दाख, अनार, मेधावर्धक तथा बृंहण सभी प्रकार का अन्न तथा पान देवें, बेर देवें, मांसरस देवें । १

अक्ष्णोः सेकविधौ गवेधुमधुकोद्भूतं सुशीतोदकं
शम्बूकोदरकोशनीरमपि वा कर्पूरचूर्णानि वा ।
पक्वो मुद्गरसोऽपि जाङ्गलरसः शालिश्च शाकं घृतं
धूपो गोमयभस्मगुण्ठनमथो शेषा व्रणोक्तक्रिया: ॥ २ ॥

आंखों में सिंचन करने के लिये गवेधुक धान्य तथा मुलठी का स्वरस देवें ।

सुशीतल जल पिलावें, शम्बूक या घोंघें के अन्दर का जल वा कपूर का चूर्ण आंखों में लगावें। पक्व मूंग का रस, जांगल जीवों का स्वरस, शालिच शाक, घी, धूप देना, बन के उपलों की राख को छिड़कना तथा शेष व्रणोक्त क्रियायें करें ॥२॥

इत्थं सर्वदशा विभागविहितं पथ्यं यथादोषतः।
संयुक्तं मुदमातनोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥ ३ ॥

इस प्रकार से सभी दृष्टियों से विभाग करके दोषानुसार पथ्य देवें, तो मसूरी रोग में लाभ होता है ॥ ३ ॥

वातं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नं क्रोधमातपम्।
कट्वम्लं वेगरोधं च मसूरीगदवांस्त्यजेत् ॥ ४ ॥

परन्तु वायु का सेवन करना, स्वेद देना, श्रम करना, तेल, भारी अन्न सेवन करना, क्रोध, तथा धूप सेवन करना, कटु तथा अम्लरस सेवन करना तथा वेगों को रोकना ये सभी बातें मसूरी का रोगी त्याग देवें ॥४॥ इति मसूरिकाचिकित्सा ॥

इति हरद्वारीय गुरुकुलविश्वविद्यालयस्नातकेन श्रीविद्याधरविद्यालंकारेण लवपुरीय श्रीमद्दयानन्दायुर्वेदमहाविद्यालयीय वैद्यकविराजोपाधिधारिणायुर्वेदशास्त्रिणा राजयक्ष्मचिकित्सकेन जलचिकित्साविशेषज्ञेन रसेन्द्रसारसंग्रहटीकाकर्त्रा कृतायां योगरत्नाकरस्य रत्नगर्भानाम्निटीकायां मसूरिकाशीतलारोगचिकित्सा समाप्ता ॥

अथ क्षुद्ररोगनिदानम्।

ते समासेन चतुश्चत्वारिंशत्क्षुद्ररोगा भवन्ति तद्यथा।

संक्षेप से क्षुद्ररोग ४४ होते हैं। (क्षुद्र का अर्थ छोटे तथा भयंकर, "क्षुद्रा मृगा यत्र शान्ता श्चेरुरन्यैः समं मृगैः" यहां पर क्षुद्र का अर्थ रौद्र या भयंकर है, इसलिये जैसा २ रोग हो वैसा २ उसे अल्प या भयंकर समझना चाहिये। क्षुद्र रोग अनेक हैं परन्तु संक्षेप से ही ४४ यहां पर गिने हैं) ॥

अथाजगल्लिका—**स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा।**
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

स्निग्ध, त्वचा के समान रंगवाली, गांठदार, पीड़ारहित, मूंग के समान पिड़िका कफ तथा वात से बालकों को उत्पन्न हो जाती है उसे अजगल्लिका कहते हैं ॥१॥

अथ यवप्रख्यामाह—**यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता।**
पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥२॥

जौ के समान आकारवाली, अति कठिन, गांठदार, मांस में उत्पन्न हुई २ पिड़िका कफ तथा वात से उत्पन्न होती है उसे यवप्रख्या कहते हैं ॥ २ ॥

अथान्धालजीमाह—**घनामवक्त्रां पिटिकामुन्नतां परिमण्डलाम्।**
अन्धालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥३॥

घनी, सीधीसरल, उठीहुई, गोल, थोड़ी पीपवाली, कफ तथा वात से उत्पन्न

हुई २ पिड़िका को अन्धालजी या अन्त्रालजी कहते हैं॥ (यह पिडिका स्नायु में होती है क्योंकि भोज ने लिखा है "श्लेष्मानिलौ श्रितौ स्नायुं पिडिकां परिमण्डलाम्। दुष्टौ जनयतोऽवक्रामल्पपूयामकण्डुराम्। आमोदुम्बरसंकाशां विद्यादन्त्रालजीं तु ताम्")। यह आंत में भी होती है॥

अथ विवृत्तामाह—**विवृत्तास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसंनिभाम्।**
विवृत्तामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम्॥४॥

पित्त से हुई २ गोल पिड़िका को विवृत्ता कहते हैं। इसका मुंह चौड़ा होता है, इस में महादाह होता है तथा पके हुए गूलर के समान पिड़िका होती है॥४॥

अथ कच्छपिकामाह—**ग्रथिताः पञ्च वा षड्वा दारुणाः कच्छपोन्नताः**
कफानिलाभ्यां संभूता ज्ञेयाः कच्छपिका बुधैः॥५॥

परस्पर गठी हुई पांच वा छह कठोर पिड़िकायें कछुए के समान मध्य भाग से उठी हुई और सिरों से झुकी हुई हों, यह उत्पन्न होती हैं। इसे कच्छपिका कहते हैं॥ ५॥

अथ वल्मीकमाह—

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे संधौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः।
ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः स वृद्धिम्॥६॥

अकर्मण्य पुरुषों के ग्रीवा, कंधों, कक्षा, हाथ, पैर, संधिस्थानों तथा गले में त्रिदोष से उत्पन्न हुई २ गांठ बल्मीक के समान उत्पन्न हो जाती है वह क्रमशः बढती जाती है॥ ६॥

मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः।
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात्॥७॥

उसके अनेक मुख होते हैं उनमें से स्राव बहता रहता है, शूल होता रहता है, विसर्प के समान अगले उठे हुए भागों से वह फैलती रहती है। इस रोगको वैद्य लोग बल्मीक या बांबी कहते हैं यह असाध्य है, विशेष करके पुराना होने पर असाध्य हो जाता है॥ ७॥

अथेन्द्रवृद्धामाह—**पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिटिकां पिटिकाचिताम्।**
इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक्॥ ८॥

पद्म के अर्थात् कमल के गट्टों के समान मध्य में अनेक पिड़िकाओं से भरी हुई पिड़िका हो उसे इन्द्रवृद्धा कहते हैं वह वात तथा पित्त से उत्पन्न हुई होती है॥८

अथ गर्दभिकामाह—**मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिटिकाचितम्।**
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम्॥९॥

मण्डलाकार, गोल २ उठी हुई लाल २ पिड़िकाओं से घिरी हुई, पीड़ा करने वाली पिड़िका को गर्दभिका कहते हैं। वह वात पित्त से उत्पन्न होती है॥ ९॥

अथ पाषाणगर्दभमाह—वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः ।
स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः १०॥

वातकफ से उत्पन्न हुआ २ हनुसन्धि में हुआ २ सूजन, यदि स्थिर हो, मन्द २ पीड़ा करता हो तो उसे पाषाणगर्दभ कहते हैं ॥ १० ॥

अथ पनसिकालक्षणमाह—कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिटिकामुग्रवेदनाम् ।
स्थिरां पनसिकां तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥११॥

कान के अन्दर उत्पन्न हुई २ अत्यन्त वेदना वाली पिड़िका जो स्थिर हो तथा अन्दर से पकती हो उसे पनसिका कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ जालगर्दभमाह—विसर्पवत्सर्पति यः शोफस्तनुरपाकवान् ।
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ।

जो सूजन विसर्परोग के समान फैलती हो, पतली त्वचा से युक्त हो तथा पकती न हो अथवा थोड़ी पकती हो, दाह तथा ज्वर को करती हो उसे जाल-गर्दभ कहते हैं यह पित्त से होती है ॥ १२ ॥

अथेरिवेल्लिकामाह—पिटिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ।
सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥१३॥

सिर से उत्पन्न हुई २ पिड़िका जो गोल हो, अति पीड़ा वाली हो तथा ज्वर से युक्त हो, त्रिदोषज हो तथा तीनों दोषों के लक्षण उसमें मिलते हों उसे इरि-वेल्लिका कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ कक्षालक्षणमाह—बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ।
पित्तप्रकोपसंभूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥१४॥

बाहु, कक्षा अर्थात् काछ, कंधा तथा पसवाड़ों में काले २ फोड़ों वाली, वेदनायुक्त पिड़िका को कक्षा कहते हैं इसे पित्त के प्रकोप से हुआ २ जानना चाहिये ॥१४॥

गन्धनाम्नीमाह—एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिटिकां स्फोटसंनिभाम् ।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते ॥ १५ ॥

कक्षा के समान काले फोड़ों से युक्त एक पिड़िका को त्वचा पर फोड़े के समान देखकर पित्त के प्रकोप से हुई २ जाने । इसे गन्ध या गन्धमाला कहते हैं।

अथाग्निरोहिणीलक्षणमाह—

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः ।
अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसंनिभाः ॥ १६ ॥

कक्षा अर्थात् काछ में जो फोड़े मांस को फाड़ने वाले उत्पन्न होजाते हैं उन के कारण अन्दर दाह होता है तथा शरीर में ज्वर होजाता है, वे फोड़े जलती हुई अग्नि के समान होते हैं ॥ १६ ॥

सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम् ।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां संनिपातजाम् ॥ १७ ॥

वे फोड़े सात दिन में, दस दिन में या १५ दिन में मनुष्य को मार देते हैं, इस गिल्टी का नाम अग्निरोहिणी है यह असाध्य होती है और त्रिदोषज होती है (इसमें वात की अधिकता से सात दिन में, पित्त की अधिकता से दस दिन में और कफ की अधिकता से एक पक्ष में मृत्यु होती है। प्रायः इसे अनेक वैद्य प्लेग कहते हैं)॥ १७ ॥

अथ चिप्यलक्षणमाह—**नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम्।**
कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत्॥

नखों के मांस को आश्रय करके वात और पित्त नखों के मांस में दाह उत्पन्न कर देत हैं तथा पका देते हैं, इस व्याधि को चिप्य कहते हैं (इसे अंग्रेजी में " विटलो " कहते हैं।)॥ १८ ॥

अथ कुनखस्यलक्षणमाह—

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षासितः खरः।
भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीरमिति संज्ञितम्॥ १६॥

चोट पेट लगने से प्रदुष्ट हुआ २ नख रूखा, काला तथा कठोर हो जाता है उसे कुनख या कुलीर कहते हैं॥ १६॥

अथानुशयीलक्षणमाह—**गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरि स्थिताम्।**
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम्॥२०

गहरी, थोड़ी शोथ वाली, त्वचा के समान रंग वाली, ऊपर अर्थात् माथे पर हुई २, अन्दर से पकने वाली पिड़िका को अनुशयी कहते हैं॥२०॥

अथ विदारिकालक्षणमाह—**विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षावङ्क्षणसंधिषु।**
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा॥२१॥

विदारी कन्द के समान गोल, कक्षा तथा वंक्षण की सन्धियों में विदारिका नाम पिड़िका होती है वह लाल रंग की होती है, सभी दोषों से उत्पन्न होती है और सभी दोषों के लक्षण उसमें मिलते हैं॥ २१॥

अथ शर्करार्बुदस्य लक्षणमाह—

प्राप्य मांसं शिरास्नायूर्मेदः श्लेष्मा तथाऽनिलः।
ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम्॥ २२॥

दूषित कफ तथा वायु मांस शिरा स्नायु तथा मेदधातु को प्राप्त होकर गांठ उत्पन्न कर देते हैं। वह गांठ फूटने पर शहद, घी तथा बसा अर्थात् चर्बी के समान स्राव को निकालती है॥ २२॥

स्रवत्यास्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः।
मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः॥ २३॥

उससे पूर्वोक्त स्राव अत्यधिक निकलता है। उसमें वायु बढ़कर मांस को सुखा लेता है तथा उसमें गांठदार शर्करा अर्थात् (शर्करापाषाणकर्कर:) पत्थर की रेता की सीं वस्तु उत्पन्न हो जाती है ॥ २३ ॥

दुर्गन्धि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः।
स्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २४ ॥

वह स्थान दुर्गन्धित हो जाता है अत्यन्त भीगा हुआ होता है। उस में से फिर शिरायें नाना प्रकार के रक्त को एकदम निकालती हैं उसे शर्करार्बुद कहते हैं

अथ पाददार्या लक्षणमाह—**परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः।**
पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥२५॥

जो मनुष्य बहुत भ्रमण करते हों वायु उनके अत्यन्त रूखे पैरों में फड़कर छोटी २ दरारें कर देता हैं उनमें पीड़ा होती है तथा वह पैर के तलवे में होती हैं उसे पाददारी या बिवाई कहते हैं ॥ २५ ॥

अथ कदरस्य लक्षणमाह—

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः।
ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् ॥ २६ ॥

पैर के शर्करा अर्थात् घड़े के टुकड़े रेता आदि से मथित हो जाने से वा कांटे आदि से क्षत विक्षत हो जाने से बेर के समान उठी हुई गांठ उत्पन्न हो जाती है इसे कदर कहते हैं। (भोज के मत में कदररोग हाथों में भी हो जाता है जैसे " हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगतं खरम्। मांसकीलं जनयतः कुपितौ कफमारुतौ। सशल्यमिव तंदेशं मन्यते तेन पीडितः। शर्कराकदरं केचित् मन्यन्ते वातकण्टकम्) ॥ २६ ॥

अथालसस्य लक्षणमाह—**क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ।**
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ २७ ॥

भीगी हुई या भीगने से गली हुई उंगलियों वाले पैरों में खुजली, दाह तथा पीड़ा होती हो तो उसे अलसरोग कहते हैं। यह रोग दूषित कीचड़ आदि में फिरने से उत्पन्न हो जाता है ॥ २७ ॥

अथेन्द्रलुप्तस्य लक्षणम्—**रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम्।**
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः २८॥

रोमकूपों में गया हुआ पित्त वात से मूर्च्छित हुआ २ रोमों को गिरा देता है। फिर कफ, रक्त से मिलकर ॥ २८ ॥

रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसंभवः।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुह्येति च विभाव्यते ॥ २९ ॥

रोमकूपों को रोक देता है उस स्थान के रुक जाने से अन्य रोम वहां उत्पन्न नहीं होते हैं। उसे इन्द्रलुप्त, खालित्य या रुह्या कहते हैं। (इन्द्रलुप्त रोग प्राय:

स्त्रियों को नहीं होता है क्योंकि वे अधिक व्यायाम नहीं करतीं इस कारण दोष कुपित नहीं होते और दूषित रज भी प्रतिमास निकल जाता है इस कारण भी रोम कूप बन्द नहीं होते, कहा भी है, "अत्यन्तं सुकुमाराभ्यो रजोदुष्टं स्रवन्ति च। अव्यायामरता यस्मात्तस्मान्न खलितिः स्त्रियाः" । यद्यपि खालित्य, इन्द्रलुप्त तथा रुह्या पर्यायवाचक शब्द हैं तो भी कार्तिक ने "इन्द्रलुप्तं श्मश्रुणि भवति, खालित्यं शिरस्येव, रुह्या च सर्वदेहे" कहकर यह प्रसिद्ध करना चाहा है कि मूंछ दाढी के बालों के गिरकर न उगने को इन्द्रलुप्त कहते हैं, सिर में यही रोग हो तो खालित्य कहते हैं तथा सारे शरीर पर बाल न आवें तो रुह्या कहा जाता है २६

अथ दारुणकस्य लक्षणमाह—

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते।
कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तत् ॥ ३० ॥

कठिन, खाज से युक्त और रूखी केशों की भूमि अर्थात् बालों की भूमि हो जाती है। तथा सिर आदि स्थानों में से पपड़ियां सी उतरने लगती हैं। यह रोग कफ तथा वायु के कोप से होता है इसे दारुणकरोग कहते हैं। (यहां पर विदेह ने इसमें पित्त तथा रक्त का अनुबन्ध भी माना है वहां दाह तथा राग पित्त से होता है और रक्त से पीड़ा होती है । उसने कहा है—"यदत्रपटलाभासं सरुजस्कं शिरस्त्वचि। परुषं जायते जन्तोस्तस्य रूपं विशेषतः । तोदैः समन्वितं वातात् सकण्डूगौरवं कफात्। सपिपासं सदाहार्तिं रागं पित्तास्रजं तथा" इति) ॥ ३० ॥

अथारुंषिकालक्षणमाह—**अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्धनि।**
कफासृक्कृमिकोपेन तानि विद्यादरुंषिकाम् ३१॥

सिर के अन्दर बहुत से मुखों वाली, बहुत क्लेद वाली अर्थात् बहनेवाली फुंसियें हो जाती हैं, इनको अरुंषि कहा जाता है। ये कफ, रक्त और कृमियों के कारण हो जाती हैं ॥ ३१ ॥

अथ पलितस्य निदानसंप्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह—

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ ३२ ॥

क्रोध, शोक तथा श्रम से उत्पन्न हुई शारीरिक गरमी सिर में जाकर पित्त से मिलकर केशों को पका देती है उससे बाल पलित अर्थात् श्वेत हो जाते हैं ३२

वातिकं विषमं रूक्षं पीतं पित्तात्सितं कफात्।
सर्वरूपान्वितं विद्यात्संनिपातसमुत्थितम् ॥ ३३ ॥

वातिक पलितरोग अर्थात् क्रोधादि वातकारक कारणों से हुआ २ पलितरोग विषम होता है तथा बाल रूखे होते हैं। पित्तज पलितरोग में बाल पीले होते हैं, कफज में श्वेत होते हैं। सन्निपातज पलितरोग में सभी रूपोंवाले बाल होते हैं। (पलितरोग केवल पित्त से ही नहीं समझना चाहिये । क्रोधादि से वात

होता है, चकार से कफ भी ग्रहण किया जाता है। पित्त तो स्पष्टतया लिखा ही है। चरक ने भी यह रोग त्रिदोषजनित माना है, "तेजोऽनिलाद्यैः सह केशभूमिं दग्ध्वा तु कुर्यात् खलतिं नरस्य। किंचित्तु दग्ध्वा पलितानि कुर्यात् हरिप्रभत्वं च शिरोरुहाणाम् ॥ चरकचिकित्सा स्थान अध्याय २.) ॥ ३३ ॥

अथ यौवनपिटिकालक्षणमाह—

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः।
जायन्ते पिटिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३४ ॥

सीमल के कांटे के समान, कफ, वायु तथा रक्त से उत्पन्न हुई २ जवान पुरुषों के मुंह पर पिड़िकायें उत्पन्न होजाती हैं। इन से मुंह का सौन्दर्य दूषित हो जाता है इन्हें यौवनपिड़िका या जवानी की फुंसियें कहते हैं ॥ ३४ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकमाह—**कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डूमत्पाण्डुमण्डलम्।**
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३५ ॥

कमलिनी के कांटों के सदृश कांटों से घिरा हुआ गोल, खुजली वाला, पाण्डुरंग अर्थात् श्वेत पीले रंग का मण्डल या दाग़ पद्मिनीकण्टक कहाता है। यह कफ तथा वात से उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥

अथ जतुमणिमाह—**सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम्।**
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिस्तु सः ॥ ३६ ॥

समं अर्थात् चिकना, उभरा हुआ, पीड़ारहित मण्डल गोल दाग़ कफ तथा रक्त की प्रधानता से उत्पन्न होता है। इसे जतुमणि कहते हैं। कुछ आचार्य इसे जन्म से हुआ २ चिन्ह मानते हैं (लोक में इसे जटुल कहते हैं। इसे स्त्री पुरुष के पृथक् २ अंगों पर होने से शुभाशुभ का सूचक भी मानते हैं ।। ३६ ॥

अथास्य त्रिदोषजत्वं चरकेणोक्तं तद्यथा—

कृष्णः स्निग्धो जतुमणिर्ज्ञेयो वातोत्तरैस्त्रिभिः।
अरुजं त्वपरे रक्तं लक्ष्मेत्याहुर्भिषग्वराः ॥ ३७ ॥

काला, चिकना, पीड़ारहित चिन्ह जतुमणि कहाता है यह वाताधिक तीनों दोषों से उत्पन्न होता है कोई २ इसे लाल रंग का मानते हैं। (सुश्रुत ने लिखा है "नीरुजं सममुत्पन्नं मण्डलं कफरक्तजम्। सहजं रक्तमीषच्च श्लक्ष्णं जतुमणिं विदुः ॥" अर्थात् यह कुछ २ लाल भी होता है, और काला तो होता ही है) ॥ ३७ ॥

अथ माषमाह—**अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन्गात्रे प्रदृश्यते।**
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३८ ॥

वेदनारहित, स्थिर, जिस गात्र पर उत्पन्न होता है वहां उड़द के दाने के समान आकारवाला, काला रंग का तथा उभरा हुआ होता है उसे माष या मस्सा कहते हैं ॥ ३८ ॥

तथा च भोजः—**वातेरिते त्वचि यदा दूष्येते कफमेदसी।**

श्लक्ष्णं मृदु सवर्णं च कुर्यात्तं माषकं वदेत् ॥ ३९ ॥

वात से प्रेरित हुई त्वचा में जब कफ तथा मेद दूषित होजाते हैं, तब चिकना, कोमल तथा त्वचा के समान रंगवाला मस्सा उत्पन्न होजाता है उसे माषक कहते हैं ॥ ३९ ॥

अथ तिलकालकमाह—कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च।
वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥४०॥

काले २ तिल के समान, पीड़ारहित तथा त्वचा के समान ही रहे हुए दागों को तिलकालक कहते हैं ये वात पित्त तथा कफ के बढ़ने से होते हैं इसे लोकभाषा में तिल कहते हैं ॥ ४० ॥

अथ न्यच्छमाह—महद्वा यदि वा चाल्पं श्यावं वा यदि वा सितम्।
नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्याभिधीयते ॥ ४१ ॥

बड़ा वा छोटा, श्याम रंग का वा श्वेत रंग का, पीड़ारहित मण्डल अंगों पर होजाता है उसे न्यच्छ या लहसन कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ मुखव्यङ्गस्य लक्षणमाह—

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः।
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ॥ ४२ ॥

क्रोध तथा परिश्रम से प्रकुपित हुआ २ वायु पित्त से युक्त होकर मुख पर एकदम आकर मण्डल या घेरा बना डालती है ॥ ४२ ॥

नीरुजं तनुकं श्यावं मुखव्यङ्गं तमादिशेत्।

वह घेरा पीड़ारहित होता है, पतला होता है तथा श्याम रंग का होता है उसे मुखव्यङ्ग या झांई कहते हैं ॥ ४३ ॥

अथ नीलिकामाह—कृष्णमेवंगुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४३ ॥

उपरोक्त गुणोंवाले व्यङ्ग को यदि वह काला हो और गात्र पर हो या मुख पर हो तो इसे नीलिका या नीली झांई कहते हैं ॥ ४३ ॥

अथ परिवर्तिकालक्षणमाह—मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि तथैवाप्यभिघाततः।
मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ ४४ ॥

लिंग को मर्दन करने या मलने से या पीड़न करने अर्थात् दबाने से अथवा चोट लगने से सर्वत्र विचरन करनेवाला व्यान वायु जब लिंग के चमड़े को अर्थात् मणि के नीचे लटकनेवाले चमड़े को प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

तदा वातोपसृष्टत्वाच्चर्म तत्परिवर्तते।
सवेदनं सदाहं च पाकं च व्रजति क्वचित् ॥ ४५ ॥

तब वातसे युक्त होने पर वह चमड़े को परिवर्तित अर्थात् लौटा देता अर्थात् उलटा देता है। तब वहां वेदना होती है, दाह होती है, तथा कहीं २ से वह स्थान पक भी जाता है॥

मणेरधस्तत्कोशस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते।

सरुजां वातसंभूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम् ॥
सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ ४६ ॥

लिंग की मणि के नीचे कोश गांठ को तरह लटकता रहता है, उस में पीड़ा होती है वह वातज परिवर्तिका रोग कहाता है ॥ यदि वह कफ से हुआ २ हो तो उस में खुजली होती है तथा वह कठिन होता है ॥ ४३ ॥

अथावपाटिकालक्षणमाह—अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः।
हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्वर्तिते बलात्‌४७

जिस स्त्री की योनि का मुंह छोटा हो उस के पास जब हर्ष से या बलात्कार से पुरुष मैथुन करने जावे। तब बल लगाने से, अथवा हाथ की ही चोट लगे तब बल से लिंग का अगला चमड़ा उलटा होजाता है ॥ ४७ ॥

मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविघाततः।
यत्रावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४८ ॥

फिर मर्दन करने वा पीड़न करने से अथवा वीर्य के वेग के रोक लेने से वह चमड़ा जहां फट जाये उसे अवपाटिका समझो ॥ ४८ ॥

अथ निरुद्धप्रकशस्य लक्षणमाह—

वातोपसृष्टे मेढ्रे वै चर्म संश्रयते मणिम्।
मणिश्चर्मावनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥ ४६ ॥

वात से युक्त लिंग के होने पर लिंग का अगला चमड़ा मणि पर चढ़ जाता है। और चमड़े से ढकी हुई मणि मूत्र के स्रोत को रोक देती है ॥ ४६ ॥

निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम्।
मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च।
निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ॥ ५० ॥

उसे निरुद्धप्रकष रोग कहते हैं। उस निरुद्धप्रकषरोग में मन्द २ धारवाला वेदनारहित मूत्र निकलता है, और मणि खुलती नहीं है। उस में यदि पीड़ा भी हो तो उसे वातज निरुद्धप्रकष समझना चाहिये ॥ ५० ॥

अथ संनिरुद्धगुदस्य लक्षणमाह—

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंस्थितः।
निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५१ ॥

मल के वेग को रोकने से गुदास्थित वायु टकरा कर गुदा के महानस्रोत को रोककर सूक्ष्म द्वार वाला कर डालता है ॥ ५१ ॥

मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति।
संनिरुद्धगुदं व्याधिमेवं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥ ५२ ॥

उस गुदामार्ग के सूक्ष्म हो जाने से बड़ी कठिनता से मल बाहर निकलता

है । इस भयंकर व्याधि को संनिरुद्धगुद कहते हैं ॥ ५२ ॥

अथाहिपूतनस्य लक्षणमाह—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ।
स्विन्ने वाऽस्नाप्यमानेऽस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ ५३ ॥

बच्चों की मलमूत्र से युक्त गुदा के न धोने से, अथवा स्वेद आया हो और फिर बच्चे को स्नान न कराया जाये, ऐसी दशा में रक्त तथा कफ से उत्पन्न हुई २ कंडू अर्थात् खुजली गुदा में उत्पन्न होती है ॥ ५३ ॥

कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५४ ॥

उसे खुजलाने से शीघ्र ही फाड़े फुंसियां गुदा में उत्पन्न होजाती हैं और वे बहने लगती हैं । वे सब फुंसियां फोड़े मिलकर एक बड़ा व्रण होजाता है वह घोर व्रण ही अहिपूतन कहाता है ॥ ५४ ॥

अथ वृषणकच्छूलक्षणमाह—**स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः ।**
यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कण्डूं जनयते तदा ॥५५॥

स्नान न करने से तथा उत्सादन अर्थात् कपड़ेसे शरीर को न पोंछनेसे अण्डकोषों में मैल लगा रहता है, वही मैल जब पसीना आने से भीगता है तब वहां खुजली उत्पन्न होजाती है ॥ ५५ ॥

कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५६ ॥

खाज करने से फिर शीघ्र ही वहां फुंसियें उत्पन्न होजाती हैं उन में से कुछ स्राव निकलता रहता है । उसे ही वृषणकच्छु कहते हैं । वे फुंसियें कफ तथा रक्त के प्रकोप से उत्पन्न होती है ॥ ५६ ॥

अथ गुदभ्रंशस्य लक्षणमाह—**प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ।**
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥५७॥

रूखे तथा निर्बल शरीरवाले मनुष्यों के प्रवाहण करने से अर्थात् जोर लगाकर मल बाहर निकालने से तथा अतिसार रोग के होने से गुदा शरीर के बाहर निकल जाती है । उसे गुदभ्रंश रोग कहते हैं ॥ ५७ ॥

अथ सूकरदंष्ट्रस्य लक्षणमाह—**सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ।**
कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्यात्सूकरदंष्ट्रकः ॥५८

बराह या सूअर की दाढ़ के समान आकारवाला, दाहयुक्त, किनारों से लाल रंग का, त्वचा को पकानेवाला, तीव्र वेदना वाला, खुजलीवाला तथा ज्वर करनेवाला जो व्रण होता है उसे सूकरदंष्ट्रक या वराहदाढ़ कहते हैं ॥ ५८ ॥

इति क्षुद्ररोगनिदानम् ॥

अथातः क्षुद्ररोगचिकित्सा।

अथाजगल्लिकाचिकित्सा—तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत्।
शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चाऽऽलेपयेन्मुहुः॥१॥

अजगल्लिका जब आमावस्था में हो तब जोंकें लगवाकर खून निकलवा देवे। और सांप सोरठ मिट्टी तथा यवक्षार इनको समभाग लेकर कल्क करके बार २ व्रण पर लगावे॥१॥

कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम्।
श्यामालाङ्गलिकामूर्वाकल्कैरपि विलेपयेत्।
पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत्॥२॥

यदि यह कठिन हो तो क्षार के प्रयोगों से उसे द्रवित करे। तथा श्यामा, लांगली विष, मूर्वामूल इन सबके कल्कों से लेप करता रहे। जब अजगल्लिका पक जाये तो व्रण प्रकरण में कही हुई विधि के अनुसार ही इसकी चिकित्सा करे॥२॥

अथ यवप्रख्यान्धालजीचिकित्सा—

अन्धालजीं यवप्रख्यां पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत्।
मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत्॥
पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत्॥१॥

अन्धालजी तथा यवप्रख्या को पहले स्वेद देवें। फिर मनसिल, देवदारु तथा कूठ इन सबको समभाग लेकर कल्क करके प्रलेप करे। पक जाने पर व्रण में कही हुई विधि से चिकित्सा करे॥१॥

अथ विवृत्तेन्द्रवृद्धागर्दभिकाजालगर्दभानां चिकित्सा—

विवृत्तामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम्।
पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक्॥१॥

विवृत्ता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभी तथा जाल गर्दभ रोगों की पित्तज विसर्प रोग के समान चिकित्सा करे॥१॥

पाके तु रोपयेदाज्यैः पक्वैर्मधुरभेषजैः।
नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम्॥
जालगर्दभरूपं तु सद्यो हन्ति सवेदनम्॥२॥

जब ये पक जायें तो फोड़कर मधुरवर्ग की औषधों से पकाये हुए घी से उन व्रणों को रोपण करे। नील की जड़ तथा पटोल की जड़ इन दोनों को पीसकर घी से मिलाकर लेप करे तो लाभ होता है। इससे जालगर्दभ रोग पीड़ा सहित भी हो तो भी शीघ्र नष्ट हो जाता है॥२॥

अथ कच्छपिकाचिकित्सा—कच्छपीं स्वेदयेत्पूर्वं तत एभिः प्रलेपयेत्।
कल्कीकृतैर्निशाकुष्ठशिलातालकदारुभिः॥

तां पक्कां साधयेच्छीघ्रं भिषग्व्रणचिकित्सया ॥ १ ॥

पहले कच्छपिका को स्वेदन देवे। फिर हल्दी, कूठ, मनसिल, हड़ताल, देवदारु इनको समभाग लेकर कल्क करके लेप करदे। जब पक जाये तो वैद्य व्रण चिकित्सा के प्रकार से इसकी भी चिकित्सा करे ॥ १ ॥

अथ वल्मीकचिकित्सा—शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत्।
विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ १ ॥

शस्त्र से बल्मीक को छीलकर क्षार तथा अग्नि से प्रसाधन करे। अर्बुद में कही हुई विधि से शोधन करके व्रण को रोपण कर देवे ॥ १ ॥

वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मणि।
तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ २ ॥

जिस मनुष्य के बल्मीक रोग बहुत न बढ गया हो और नांही मर्मस्थानों में हो उसका पहले वमन विरेचनादि से संशोधन करना चाहिये फिर रक्त निकलवा देना चाहिये ॥ २ ॥

कुलत्थकानां मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च।
आरग्वधस्य मूलैश्च दन्तिमूलैस्तथैव च ॥ ३ ॥

फिर कुलथी की जड़ से, गिलोय तथा लवण से। अम्लतास की जड़ से, वा दन्तीमूल से ॥ ३ ॥

श्यामामूलैः सपललैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत्।
सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक्कुमुपनाहयेत् ॥ ४ ॥

श्यामालता की जड़ से, सत्तुओं से युक्त तिल के कल्क से, सुस्निग्ध अर्थात् घी या तेल से चिकना करके तथा सुखोष्ण अर्थात् कोसा २ उपनाह या टकोर करे ॥ ४ ॥

अथ मनःशिलादितैलम्—मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः।
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥१॥

मनसिल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर, लालचन्दन, चमेली के कोमल पत्ते इन सबको समभाग लेकर कल्क करके विधिपूर्वक नीम का तेल पकावे ॥१॥

वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम्।
पाणिपादोपरिष्टाच्च च्छिद्रैर्बहुभिरावृतम् ॥
वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तद्धि विजानता ॥ २ ॥

यह तेल बल्मीकरोग का नाश करता है चाहे उसमें बहुत से छिद्र हों और बहुत से व्रण हों। जो बल्मीक हाथ पैरों के ऊपर हों, जिसमें बहुत से छिद्र हों, जिसमें सूजन हो गई हो उसको असाध्य समझकर वैद्य चिकित्सा करे ॥ २ ॥

अथ पाषाणगर्दभचिकित्सा—सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत्।
कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ १ ॥

पाषाणगर्दभ रोग में पहले स्वेद देवें फिर देवदारु, मनसिल तथा कूठ इनको पीसकर लेप कर देवें। इससे पाषाणगर्दभ में हुआ २ कफ तथा वात का शोथ नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ पनसिकाचिकित्सामाह–भिषक्पनसिकां पूर्वं स्वेदनैरपतर्पणैः।
जयेद्विदारिवल्लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ १ ॥

पनसिका को वैद्य पहले स्वेद देवे फिर अपतर्पण करे। फिर सुहांजना, देवदारु इनके कल्क से लेप करे। इस प्रकार विदारी के समान चिकित्सा करके इसे नष्ट करे ॥ १ ॥

अथेरिवेल्लिकाचिकित्सा—

पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता।
तथैव भिषगेतां च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम् ॥ १ ॥

जो चिकित्सा पैत्तिक विसर्प की कही गई है उसीसे इरिवेल्लिका की चिकित्सा करे ॥ १ ॥

अथ कक्षागन्धनयोश्चिकित्सा—

कक्षां च गन्धनां तां च चिकित्सेत चिकित्सकः।
पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया ॥ १ ॥

पैत्तिक विसर्प की चिकित्सा के समान कक्षा तथा गन्धा की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथाग्निरोहिणीचिकित्सा–पित्तवीसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम्।
रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरूक्षणम् ॥१॥

पित्तज विसर्प के समान ही अग्निरोहिणी की चिकित्सा करे। अग्निरोहिणी में लंघन करे, रक्तमोक्षण करे तथा रूक्षण क्रिया करे ॥ १ ॥

शरीरस्य च संशुद्धिं तां तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ २ ॥

तथा शरीर की शुद्धि करे। परन्तु जब वह बढ़ जाये तो इसे असाध्य समझ कर त्याग देवे ॥ २ ॥

अथ चिप्यकुनख्योश्चिकित्सा–चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत्।
गतोष्माणमथैनं तु सेचयेदुष्णवारिणा ॥१॥

चिप्यरोग में खून निकलवा देवे तथा शोधन करावे। जब इस में से गरमी निकल जाय तो गरम पानी से इसे सिंचन करे ॥ १ ॥

शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्रावयेत्ततः।
व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तु विचक्षणः ॥ २ ॥

शस्त्र से भी यथायोग्य छेदन कर के दोषों का स्राव करा देवे। फिर व्रण प्रकरण में कहे हुए बिधान से इसके व्रण का रोपण करे ॥ २ ॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वाऽऽयसेऽभयाम्।
घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः ॥ ३ ॥

लोहे के पात्र में हल्दी का स्वरस डालकर हरड़ को घिसे, इस कल्क से बार २ चिप्य को लीपे ॥ ३ ॥

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः।
अङ्गुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति ॥ ४ ॥

गंभारी के कोमल २ सात पत्तों से अंगुलीवेष्टक या चिप्य को लपेट दें तो शीघ्र ही रोग का निश्चित नाश होता है ॥ ४ ॥

कुनखचिकित्सा—श्लेष्मविद्रधिकल्पेन कुनखं समुपाचरेत्।
नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन न शाम्यति।
कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च ॥ ५ ॥

कफविद्रधि चिकित्सा के अनुसार ही कुनख की चिकित्सा करे। नख के कोने में प्रविष्ट हुए २ सुहागे से भी यदि कुनखरोग शान्त न हो तो मानों पत्थर भी जल पर तैरने लगें। अर्थात् यह असंभव है कि सुहागे से कुनखरोग अच्छा न हो ॥ ५ ॥

दाडिमकुसुमयवासैरभया सुश्लक्ष्णचूर्णिता लेपात्।
नखकोटिपूतिभावं शमयति शूलं च तत्क्षणादेव ॥ ६ ॥

अनार के फूल, जवासा, हरड़ इन सब को बारीक चूर्ण कर के लेप करें तो नखकोटि का दुर्गन्धित सड़ा हुआ भाग नष्ट होजाता है तथा शूल तत्क्षण दूर हो जाता है ॥ ६ ॥

अथानुशयीचिकित्सा—हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया श्लेष्मविद्रधेः ॥१॥

श्लेष्मविद्रधि की चिकित्सा से ही अनुशयी की चिकित्सा करे ॥ १ ॥

अथ विदारिकाचिकित्सा—विदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम्।
पाटनं च विपक्वायां ततो व्रणविधिः स्मृत।
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥१॥

विदारिकारोग में पहले जौंके लगवानी चाहियें। पक जाने पर पाटन अर्थात् फाड़ देना चाहिये फिर व्रण के समान शोधन रोपण करना चाहिये। सुहांजना तथा देवदारु दोनों को पीसकर विदारिका पर लेप करे तो लाभ होता है ॥ १ ॥ इति वृन्दात् ॥

अथ शर्करार्बुदस्य चिकित्सा—मेदोर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम् ॥१॥

मेदोऽर्बुद की विधि के अनुसार ही शर्करार्बुद की चिकित्सा करे ॥ १ ॥

अथ पाददार्याश्चिकित्सा—पाददार्यां शिरां प्राज्ञो मोक्षयेत्तलशोधनीम्।
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः ॥१॥

पाददारीरोग में विद्वान् मनुष्य तल को शोधन करनेवाली शिरा को खोले। स्नेह तथा स्वेद से पैरों को युक्त कर के ॥ १ ॥

मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः।
सर्जार्थसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृतप्लुतम्।
निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जने ॥ २ ॥

मोम, वसा, मज्जा, घी, यवक्षार, इन से मिलाकर पैरों को बार २ लगावे। तथा राल, सेंधानमक का चूर्ण, मधु तथा घी से मिलाकर सरसों के तेल से मिलाकर पैरों को बार २ लगावे ॥ २ ॥

मधुसिक्थकसैन्धवघृतगुडमहिषाक्षशालनिर्यासैः।
गैरिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥ ३ ॥

शहद, मोम, सेंधानमक, घी, गुड, गूगल, शाल का गोंद, गेरू इन सबको पीसकर मिलावें और पैरों में लेप करें तो पैरों के फटने में यह लाभदायक सिद्ध योग है ॥ ३ ॥

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचककर्कारुकैर्वारुकभस्मतोयैः।
तैलं विपक्वं लवणेन युक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥४॥

बड़ी पोईशाक, सरसों, नीम, केला, छोटा पेठा, ककड़ी इन सब की भस्म कर के उसे पानी में घोले। उस क्षारोदक से तैल पकाया हुआ लवण से मिलाकर लगाया जाये तो लेप करने से पाददारी रोग का नाश होता है ॥ ४ ॥
इत्युपोदिकाद्यं तैलम् ॥

अथ मदनफलादिलेपः—मदनं च तथा सिक्थं सामुद्रलवणं तथा।
महिषीनवनीतेन सततं लेपनं हितम् ॥ १ ॥

मैनफल, मोम, सामुद्रलवण इन दोनों को पीसकर भैंस के मक्खन से मिलाकर लगातार लेप करें तो पाददारी या बिवाई का नाश होता है ॥ १ ॥

सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ।

इस के लेप से एक सप्ताह में फूटे हुए पैर कमल के समान सुन्दर निर्दोष हो जाते हैं ॥

अथ सैन्धवादिलेपः—सैन्धवं चन्दनं रालं मधु सर्पिः पुरो गुडः।
गैरिका स्फुटितौ पादौ लिप्तौ स्तः पङ्कजोपमौ ॥२॥

सेंधानमक, लाल चन्दन, राल, शहद, घी, गूगल तथा गुड, गेरू इन सब को पीसकर मिलाकर पैरों पर लेप करें तो फटे हुए पैर कमल पत्र के समान स्वच्छ निर्दोष और सुन्दर होजाते हैं ॥ २ ॥

अथ मदनयोगः—

मदनसैन्धवगुग्गुलुगैरिकाज्यमधुरालगुडांघ्रिविलेपनात्।
स्फुटितमप्यखिलं चरणद्वयं विकचतामरसप्रतिमं भवेत् ॥ ३ ॥